आनंद सभा

सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर

पाठ्य पुस्तक (कक्षा १०)

राज्य आनंद संस्थान, आनंद विभाग, मध्य प्रदेश शासन

आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर
पाठ्य पुस्तक (कक्षा १०)

पहला संस्करण मई २०२२

राज्य आनंद संस्थान
आनंद विभाग, मध्य प्रदेश शासन
माध्यमिक शिक्षा मण्डल परिसर
शिवाजी नगर, भोपाल – ४६२०११

www.anandsansthanmp/in
anandsansthan@gmail.com
+91 755 255 3434

संदर्भ
- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (पाठ्यपुस्तकें)
- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (अभ्यास पुस्तिकाएं)
- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (शिक्षक मार्गदर्शिकाएं)
- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (शिक्षकों, अभिभावकों के लिए तैयारी हेतु शिविर) – ऑनलाइन एवम् प्रत्यक्ष

हमारे अन्य कार्यक्रम
- अल्पविराम
- आनंद क्लब
- आनंद सभा
- आनंद उत्सव (ख़ुशी का त्यौहार)
- आनंदम केंद्र
- आनंद कैलेंडर
- आनंद शिविर
- ऑनलाइन आनंद कोर्स (अलोहा)
- आनंद फ़ेलोशिप

ज्ञान के सार्वभौमीकरण की भावना से हम यह पाठ्य सामग्री सभी को सर्वशुभ हेतु बिना शर्त उपलब्ध कराने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकाशन की विषयवस्तु यू एच वी टीम (uhv.org.in) के सहयोग के साथ विकसित की गई है। यह सामग्री औपचारिक (मुख्य धारा एवम वैकल्पिक) और अनौपचारिक, दोनो शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए उपयोग की जा सकती है।

अतएव यह कार्य CCO 1.0 के अंतर्गत लाइसेंस प्राप्त है।
लाइसेंस की प्रति देखने हेतु, कृपया देखें - https://creativecommons.org/publicdomain/zero/1.0

राष्ट्रगान

जन-गण-मन-अधिनायक जय हे
भारत-भाग्य-विधाता
पंजाब-सिन्धु-गुजरात-मराठा
द्राविड़-उत्कल-बंग
विंध्य-हिमाचल-यमुना-गंगा
उच्छल-जलधि-तरंग
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिष मागे,
गाहे तव जय-गाथा।
जन-गण-मंगल-दायक जय हे
भारत-भाग्य-विधाता
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय जय हे।

(हर देश का अपना एक विशिष्ट झंडा और राष्ट्रगान होता है। ''तिरंगा झंडा'' भारतवर्ष का राष्ट्रध्वज है और ''जनगणमन'' राष्ट्रगान। राष्ट्रध्वज में ऊपर की पट्टी केसरिया रंग की और नीचे की हरे रंग की होती है। बीच की सफेद पट्टी के बीचों बीच २४ शलाकाओं का नीले रंग में गोल-चक्र होता है। केसरिया रंग त्याग का, सफेद शांति का और हरा रंग प्रकृति की सुन्दरता का प्रतीक है। चक्र का स्वरूप अशोक की सारनाथ-स्थित सिंहमुद्रा में अंकित चक्र की भाँति है यह चक्र सत्य और सब धर्मों का प्रतीक है।

राष्ट्रगान की रचना गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने की थी। इसमें संपूर्ण देश के लिए मंगल-कामना है। राष्ट्रगान और राष्ट्रध्वज का सम्मान करना हमारा कर्तव्य है। जब राष्ट्रगान गाया जाये या उसकी धुन बजाई जाये अथवा राष्ट्रध्वज फहराया जाये, तब हमें सावधान की स्थिति में खड़े होकर इसे सम्मान देना चाहिए।)

विषयसूची

अध्याय-1 14
मूल्य शिक्षा को समझना 14
तृप्ति-पूर्वक जीना 14
तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये शिक्षा 14
मूल्य शिक्षा 15
कौशल शिक्षा 15
मूल्य एवं कौशल की पूरकता 15
कौशल से अधिक, मूल्य की वरीयता 15
मूल्य-शिक्षा की आवश्यकता और उसके प्रमुख आशय का महत्व 16
हमारे लक्ष्य की सही पहचान 16
समग्र- दृष्टि का विकास 16
समग्र दृष्टि के साथ जीने के लिये कार्यक्रम की स्पष्टता 17
हमारी मान्यताओं का मूल्यांकन 18
वर्तमान समस्याओं का समाधान 19
नैतिक-योग्यता का विकास 19
मूल्य-शिक्षा के लिये दिशानिर्देश 20
मूल्य-शिक्षा की विषय-वस्तु 20
मूल्य-शिक्षा की प्रक्रिया- स्व-अन्वेषण 20
मुख्य बिंदु 21
अपनी समझ को जाँचे 21
अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 21
अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 21
अनुभाग 3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 22
अनुभाग 4: आपके प्रश्न 22
अध्याय-2 23
स्व-अन्वेषण - मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया 23
स्व-अन्वेषण : स्वयं में संवाद 23
स्वयं में संवाद 23
स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु 24
स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया 25
सहज-स्वीकृति को समझना - सही समझ का आधार 26
वर्तमान स्थिति का अवलोकन 27
आगे का मार्ग 27
स्व-अन्वेषण के प्रमुख आशय 28
अध्याय-3 31
मानव की मूल चाहना एवं उसकी पूर्ति 31
मूल चाहना का क्या अर्थ है? 31
मानव की मूल चाहना- सुख समृद्धि और उसकी निरंतरता 31
मानव की मूल चाहना की पूर्ति के लिये आधारभूत आवश्यकतायें 31
वरीयता- सही समझ, संबंध और सुविधा 32
मानव चेतना का विकास 33
समग्र विकास 33
शिक्षा-संस्कार की भूमिका 34
अध्याय-4 36
सुख और समृद्धि को समझना- इनकी निरंतरता एवं पूर्ति के लिये कार्यक्रम 36
पुनरावृत्ति 36
सुख के अर्थ को समझना 36
निरंतर सुख के लिये कार्यक्रम 36

समृद्धि के अर्थ को समझना 37
सुख की प्रचलित मान्यताओं पर एक दृष्टि 38
सुख की निरंतरता, भौतिक सुविधाओं से ? 38
सुख की निरंतरता दूसरों के द्वारा मिलने वाले अनुकूल भाव से ? 39
सुख,आवेश के जैसा नहीं है 40
सुख के अन्य प्रचलित अभिप्राय 41
सुख के लिये किये गये विभिन्न प्रयासों का मूल्यांकन 42
कार्यक्रम का सहज निष्कर्ष 46
मुख्य बिंदु 46
अपनी समझ को जाँचे 47
अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 47
अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 47
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 49
अनुभाग-4 आपके प्रश्न 49
अध्याय-5 50
मानव को स्वयं और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में समझना 50
पुनरावृत्ति 51
स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकतायें 51
'स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति 51
स्वयं(मैं)' और शरीर की क्रियायें 52
'स्वयं(मैं)' और शरीर की अनुक्रिया 52
स्वयं(मैं)', चैतन्य इकाई और शरीर, जड़ इकाई के रूप में 53
मुख्य भ्रम - मानव को केवल शरीर मानना 54
मानव के केंद्र में 'स्वयं(मैं)' है 55
मुख्य बिंदु 55
अपनी समझ को जाँचे 55
अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 56
अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 56
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 56
अनुभाग-4 आपके प्रश्न 56
अध्याय-6 57
स्वयं में व्यवस्था- 'स्वयं(मैं)' को समझना 57
पुनरावृत्ति 57
'स्वयं(मैं)' की क्रियायें 57
'स्वयं(मैं)' की क्रियायें निरंतर हैं 57
क्रियाओं का संयुक्त रूप - कल्पनाशीलता 58
कल्पनाशीलता की अभिव्यक्ति व्यवहार और कार्य में 58
कल्पनाशीलता की स्थिति 58
कल्पनाशीलता के संभावित स्रोत- मान्यता, संवेदना और सहज-स्वीकृति 58
कल्पनाशीलता के प्रेरणा-स्रोत के रूप में मान्यतायें 59
कल्पनाशीलता के प्रेरणा-स्रोत के रूप में संवेदना 59
कल्पनाशीलता के सर्वाधिक प्रामाणिक प्रेरणा-स्रोत के रूप में सहज-स्वीकृति 59
तीनों स्रोतों से प्रेरित कल्पनाशीलता के परिणाम – स्वतंत्रता या परतंत्रता? 60
आगे का मार्ग - स्व-अन्वेषण के माध्यम से 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था सुनिश्चित करना 60
'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था को विस्तार से समझना 61
मुख्य बिंदु 67
अभ्यास 1 69
स्वयं के द्वारा स्वयं को देखना 69
अपनी समझ को जाँचे 76
अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 76
अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 76
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 77

अनुभाग-4: आपके प्रश्न 77
अध्याय-7 78
'शरीर' के साथ 'स्वयं(मैं)' की व्यवस्था - संयम और स्वास्थ्य को समझना 78
पुनरावृत्ति 78
'स्वयं(मैं)' दृष्टा-कर्ता-भोक्ता के रूप में ('शरीर' एक साधन के रूप में) 79
मैं दृष्टा हूँ 81
मैं कर्ता हूँ 81
मैं भोक्ता हूँ (भोगने वाला) 82
'स्वयं(मैं)' दृष्टा, कर्ता, भोक्ता है 82
'शरीर' एक स्व-व्यवस्थित प्रणाली और 'स्वयं(मैं)' के एक यंत्र के रूप में 82
'स्वयं(मैं)' की 'शरीर' के साथ व्यवस्था 83
वर्तमान स्थिति का अवलोकन 84
आगे का मार्ग 85
स्वास्थ्य एवं संयम के लिये कार्यक्रम 85
'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के बीच व्यवस्था के प्रकाश में समृद्धि की पुनरावृत्ति 89
मेरे 'स्वयं(मै)' और मेरे 'शरीर' के प्रति मेरी भागीदारी (मूल्य) 92
मुख्य बिंदु 93
अभ्यास 2 94
मैं (चैतन्य) के द्वारा मैं (चैतन्य) को देखना 94
शरीर को देखना मैं (चैतन्य) और शरीर के बीच होने वाले आदान-प्रदान को देखना 94
अपनी समझ को जाँचे 101
अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 101
अनुभाग- 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 102
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 103
अनुभाग-4: आपके प्रश्न 104
अध्याय 8(अ) 105
मानव-मानव सम्बंध मे मूल्य- ममता और वात्सल्य 105
ममता और वात्सल्य 105
श्रद्धा 108
गौरव और कृतज्ञता 110
सम्मान, श्रद्धा, कृतज्ञता और गौरव का पुनरावलोकन 111
ममता, वात्सल्य, श्रद्धा, गौरव और कृतज्ञता से संबंधित मुख्य बिंदु 113
अपनी समझ को जाँचे 113
अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 113
अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 114
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 115
अनुभाग-4: आपके प्रश्न 116
अध्याय 8(ब) 117
मानव-मानव सम्बंध मे पूर्ण मूल्य-प्रेम 117
प्रेम- पूर्ण मूल्य 117
प्रेम और आसक्ति के बीच अंतर 118
सही भाव- स्वयं के आधार पर या दूसरे से? 120
संबंध के निर्वाह में भौतिक-सुविधाओं की भूमिका 120
व्यवहार में प्रतिक्रिया एवं अनुक्रिया 121
न्याय की समझ 121
मेरे परिवार में मेरी भागीदारी (मूल्य) 124
प्रेम से संबंधित मुख्य बिंदु 124
अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 125
अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 125
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 126
अनुभाग-4: आपके प्रश्न 126

अध्याय-9 127
समाज में व्यवस्था - सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था को समझना 127
पुनरावृत्ति 128
मानव लक्ष्य को समझना 128
वर्तमान स्थिति का अवलोकन 129
आगे का मार्ग 133
मानवीय व्यवस्था: मानव लक्ष्य और इनकी पूर्ति के आयाम 133
अपनी समझ को जाँचे 134
अनुभाग-1 स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 134
अनुभाग- 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 134
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 135
अनुभाग-4 आपके प्रश्न 135
अध्याय-10 136
प्रकृति में व्यवस्था–अंर्तसंबंध, स्व-नियंत्रण और परस्पर-पूरकता को समझना 136
पुनरावृत्ति 137
इकाइयों के समूह के रूप में प्रकृति 137
इकाइयों का चार अवस्थाओं में वर्गीकरण 138
चारों अवस्थाओं के बीच अंर्तसंबंध और परस्पर-पूरकता 139
प्रकृति में स्व-नियंत्रण 143
मुख्य बिंदु 144
अपनी समझ को जाँचे 144
अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 144
अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 144
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 145
अनुभाग-4: आपके प्रश्न 145
अध्याय-11 146
अस्तित्व में व्यवस्था - विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व को समझना 146
आगे की कक्षा में: 146
परिशिष्ट A3-1: मूल चाहना क्या है? 147
मानव की मूल चाहना- निरंतर सुख और समृद्धि 148
परिशिष्ट A6-1: 'स्वयं(मैं)' की क्रियायें 152
शब्दकोष 154
संदर्भ 158

पुस्तक का एक परिचयात्मक अवलोकन एवं पाठक के लिये एक संदेश

स्नेही विद्यार्थीगण, हम इस अभिनव और महत्वपूर्ण प्रयास: "आनंद सभा– सार्वभौमिक मानवीय मूल्य से आनंद की ओर" के पाठ्यक्रम को पढ़ने व समझने के लिए आपकी रुचि और प्रतिबद्धता की सराहना करते हैं।

हम बच्चे, बड़े, बूढ़े सभी मानव सुखी रहना चाहते हैं; निरंतर सुखी रहना चाहते हैं| इसे हममे में से हर एक अपने में जांच कर देख सकते हैं| इस निरतर सुख को ही आनंद कहा है| नन्द शब्द का अर्थ है प्रसन्न रहना, सुखी रहना, आनंद का अर्थ है- सुख के अभाव का अभाव अर्थात निरंतर सुख

आनंद = अ + अ + नंद
= अभाव + अभाव + सुख
= सुख के अभाव का अभाव = निरंतर सुख

हम आनंद पूर्वक, निरंतर सुख पूर्वक रहना चाहते हैं| इसी के लिए हमारे जिन्दगी के सारे प्रयास हैं|

सुख के बारे आज की प्रचलित सोच यह है कि सुख मिलता है

- अनुकूल संवेदना के आस्वादन से
- दूसरे से भाव पाकर
- सुविधा से, उसके भोग से

इसलिए प्रचलित कार्यक्रम सुविधा-संग्रह (असीमित, किसी भी तरह) के रूप में दिखाई देता है! परन्तु, इन आधार पर कितना भी प्रयास किया जाय, कितनी भी उपलब्धि हो, इससे आनंद, सुख की निरंतरता, को सुनिश्चित नहीं किया जा पाता |

इस सोच के में मूल में मान्यता है कि मनाव केवल शरीर है तथा सुख शरीर से, बाहर से पायी जाने वाली कोई वस्तु |

जबकि वास्तविकता को सीधा सीधा देखने का प्रयास करें तो यह दिख पाता है कि

- मानव केवल शरीर ही नहीं है, परंतु मैं (चैतन्य) और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में है
- सुख = व्यवस्था में होना, व्यवस्था में जीना – स्वयं में, परिवार में, समाज में, प्रकृति में
- आनंद = निरंतर सुख = निरंतर व्यवस्था में होना, व्यवस्था में जीना – जीने के हर स्तर पर

अतः आनंद पूर्वक जीने का आधार

- व्यवस्थित मन – स्वयं में सही समझ, भाव-विचार – व्यवस्था का
- व्यवस्थित शरीर – शरीर में स्वास्थ्य, न केवल रोग का निवारण
- व्यवस्थित वातावरण
    - व्यवस्थित परिवार- संबंध व समृद्धि पूर्वक जीना
    - व्यवस्थित समाज – न्याय व व्यवस्था संपन्न, "सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय"
    - व्यवस्थित प्रकृति – परस्परपूरकता आधारित, समृद्ध प्रकृति

'सार्वभौमिक मानव मूल्य' के आधारभूत पाठ्यक्रम के माध्यम से हम सभी, शिक्षक, विद्यार्थी और अभिभावक आनंद पूर्वक जीने की सही समझ (उपरोक्त वर्णित) पर मनन-चिंतन व् अभ्यास करने का प्रयास करेंगे। इस महत्वपूर्ण कार्य में हम सबकी प्रमुख भागीदारी है, जिम्मेदारी है।

यह पुस्तक, लंबे प्रयोग, परामर्श और चिंतन के परिणामों पर आधारित है। जिसका उद्देश्य शिक्षा को मूल्य शिक्षा की एक ऐसी पद्धति से जोड़ना है, जो कि सार्वभौम रूप से सभी को स्वीकार्य हो। इस दिशा में पहला और महत्वपूर्ण कदम "आनंद सभा– सार्वभौमिक मानवीय मूल्य से आनंद की ओर" के पाठ्यक्रम को शुरू करना है, जिसके लिये यह विषय वस्तु तैयार की गई है।

इस पुस्तक में, मानव के साथ-साथ शेष-प्रकृति और अस्तित्व को समझने के लिये एक सुव्यवस्थित स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को प्रस्तावित किया गया है, जिसके स्वाभाविक परिणामके रूप में सार्वभौमिक मानवीय मूल्य और निश्चित मानवीय आचरण की समझ सुनिश्चित हो पाती है। स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया, एक ओर मानव को स्वयं के आधार पर अपने में सही समझ सुनिश्चित करने के योग्य बनाती है, और दूसरी ओर यह प्रक्रिया,मानव को 'स्वयं' के विकास के साथ-साथ जीने में आवश्यक व्यवहार, कार्य को सीखने में सहयोग करती है। स्व-अन्वेषण की इस प्रक्रिया को, मूल्य शिक्षा की एक प्रभावी प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।

इस पुस्तक को इस प्रकार लिखा गया है कि, पाठक के भीतर एक संवाद की प्रक्रिया शुरु हो सके। जिसके लिये एक सुव्यवस्थित तरीके से प्रस्तावों को एक-एक करके पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, ताकि वह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से इन प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन कर सकें। पूरी चर्चा इस विषय पर केन्द्रित है, कि मानव का तृप्ति पूर्वक जीना कैसे हो पाये? यह अध्ययन, मानव के जीने के सभी स्तरों पर अंतर्निहित व्यवस्था को समझने और जीने के अर्थ में है, जो कि मानव के तृप्ति पूर्वक जीने का आधार है।

पाठकों के ध्यान देने के लिये महत्वपूर्ण टिप्पणी (A Note to the Readers)

इस पुस्तक की विषय-वस्तु को,प्रस्तावों के एक समूह के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिन्हें याद करने या याद करके सुनाने या वाह्यरूप से इन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के बजाय,धीरे-धीरे इन्हें अपनीसहज स्वीकृति के आधार पर जाँचना है। इससे आपके भीतर एक संवाद शुरु होगा– 'जैसे आप है' और 'जैसा होना आपको सहज स्वीकार्य है' के बीच। जैसे-जैसे आप इस पुस्तक को पढ़ते जातेहैं, आप इस प्रस्तावित विधिसे अध्ययन कर पाते हैं। और जैसे-जैसे आप इस अध्ययन की प्रक्रिया में आगे बढ़ते हैं, आपके अंदर कई प्रश्न बन सकते हैं, जिनमें से अधिकांश प्रश्न धीरे-धीरे इस स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के दौरान स्वतः ही हल हो जायेंगे;जो कि एक महत्वपूर्ण बात है,क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी भी उत्तर से तभी आश्वस्त हो पाता है, जब वह स्वयं में उत्तर देख पाये बजाय इसके कि बाहर से उस पर उत्तर थोपे जायें।

हमारी भूमिका,इन प्रस्तावों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने और आप में स्व-अन्वेषण एवं स्व-सत्यापन की प्रक्रिया को शुरू करने में सहयोग करने की है। स्व-अन्वेषण की इस प्रक्रिया से आप उन मूल्यों को स्वयं में देख सकेंगे,जो कि प्राकृतिक रूप सेआप में अंतर्निहित हैं ही।यह आपको स्व-विकास,अर्थात् 'स्वयं' के विकास की ओर ले जायेगा,जिसके परिणामस्वरूप,आपकी मूल चाहना की पूर्ति हो पायेगी। यहाँआपकी ओर सेएक ईमानदार एवं निष्ठापूर्ण प्रयास की अपेक्षा है। इसके लिये, इस पुस्तक को पढ़ते समय निम्नलिखित सुझावों को ध्यान में रखा जा सकता है-

जागरूकता के साथ पढ़ें

(Read with Awareness)

इस पुस्तक को समझने की दृष्टि से, जागरूकता के साथ पढ़ना आवश्यक है। किसी बात को केवल याद करलेना, वास्तव में,उसे समझना नहीं है। हमने कुछ वास्तविकता देखी है; उस वास्तविकता से जुड़े कुछ अर्थ

हैं,और इन अर्थों के लिये हमने कुछ शब्दों का प्रयोग किया है। हमारी तरफ से,इन शब्दों को प्रस्ताव के रूप में,इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। जब आप कोई शब्द पढ़ते हैं,तो आप उसे किसी न किसी अर्थ से जोड़ते हैं। क्या आपके द्वारा जोड़ा गया अर्थऔर हमारे द्वारा इंगित किया गया अर्थ, अनुरूप हैं? इसके अलावा, आप स्वयं में उस शब्द अथवा उसके अर्थ से इंगित वास्तविकता को देखने की कोशिश करते हैं। यदि आप उसी वास्तविकता को स्वयं में देखने में सक्षम हो पाते हैं, जिसे हमारे द्वारा इंगित किया गया है,तो वास्तव में यह संवाद सफल होता है। वास्तव में,हम वास्तविकता के विभिन्न पहलुओं के अर्थ को जोड़ते हैं। हम आने वाले अध्यायों में,व्यवस्थाके विभिन्न पहलुओं (अर्थों) का वर्णन करेंगे, जिन्हें आप स्वयं में देख सकते हैं और वास्तविकता को स्वयं में समझ सकते हैं। हम सभी में समझने और जानने की प्राकृतिक क्षमता है ही।

अध्याय 5-7 'मानव मेंव्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है, अध्याय-8 'परिवार में व्यवस्था'के अर्थ को स्पष्ट करता है, अध्याय-9 'समाज में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है, अध्याय-10 'प्रकृति में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता हैऔर अंततः अध्याय-11 'अस्तित्व में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है। हमारा सुझाव यह है कि आप प्रस्तावों द्वारा इंगित किये जाने वाले अर्थ को समझने के लिये, इन प्रस्तावों को जागरूकता के साथ पढ़ेऔर इन्हें,इंगित वास्तविकता (अस्तित्व सहज व्यवस्था) से जोड़ने का प्रयास करें।यदि आप अस्तित्व सहज वास्तविकता को समझने में सक्षम हो पाते हैं, तो इस पुस्तक के माध्यम से उस वास्तविकता को संप्रेषित करने का हमारा यह संयुक्त प्रयास सफल है।

पूर्व-निर्मित समाधान खोजने के प्रयास से बचें

(Avoid Jumps to Readymade Solutions)

हम कभी-कभी विभिन्न परिस्थितियों में तुरंत पूर्व-निर्मित (पहले से तैयार) समाधान प्राप्त करने की कोशिश करते हैं, कुछ सूत्रों में पिरोने की कोशिश करते हैं जिससे समाधान मिल सके। इस पुस्तक में,मूल समझ के बारे में प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा रहा है,जो कि किसी भी स्थिति/परिस्थिति के लिये आपमें समग्र समाधान का एक आधार बन सकता है। यदि व्यक्ति इस मूल समझ से युक्त होता है,तो वह समस्याओं से मुक्त होकर जी सकता है। चूंकि, समस्यायें समय, स्थान, और व्यक्ति केसाथबदलती रहती हैं; इसलिये यह एक व्यक्तिगत जिम्मेदारी है कि हम अपने लिये इस मूल समझ के आधार पर समाधान सुनिश्चित करने का प्रयास स्वयं करें।मूल्यों की समझ से हमें ऐसे समाधानों को विकसित करने में मदद मिलेगी, जो निरंतरता में हमारे लिये परस्परपूरक होंगे। इसे सुविधाजनक बनाने के लिये, उपयुक्त स्थानों पर कुछ उदाहरण भी दिये गये हैं, ताकि आप इन प्रस्तावों को अपने जीने के साथ जोड़कर देख सकें।

मौजूदा मान्यताओं/पूर्वाग्रहों के साथ तुलना से बचें

(Avoid Comparing with Existing Beliefs/Notions)

वैसे, हम सभी के पास लंबे समय से चले आ रहे पूर्वाग्रह अथवा मान्यतायें हैं ही।वे सही या गलत दोनों ही हो सकते हैं, लेकिन हम उन्हें बिना जाँचे ही स्वीकारे रहते हैं। यदि हम सावधान नहीं हैं, जागरूक नहीं हैं, तो जो कुछ भी इस पुस्तक में बताया जा रहा है, उसकी तुलना हम अपने मौजूदा पूर्वाग्रहों या मान्यताओं से करने लगते हैं। ऐसा हो सकता है,कि किसी वास्तविकता के बारे में यहाँ कुछ और कहा जा रहा हो,और आपकी मान्यता उसके संदर्भ में कुछ और हो। फिर आप कैसे तयकरेंगे कि सहीक्या है? क्या आप इस बात पर जोर देंगे कि केवल आपकी वर्तमान मान्यता ही सही है? या यहाँ जो प्रस्तावित किया जा रहा हैं,आप उसे समझने और जाँचने का प्रयास करेंगे,और साथ ही साथ अपनी वर्तमान मान्यता की भी जाँच करेंगे? यहाँ पर हम आपको,इन दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण करने के साथ-साथ,अपनी मान्यताओं का स्व-अन्वेषण करने का भी सुझाव दे रहे हैं। इससे आपको अपनी मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों को स्व-सत्यापित करने में सहयोग मिलेगा।

प्रस्तावों की जाँच करें (सहमत या असहमत होने के बजाय)

Verify the Proposals (rather than agreeing or disagreeing)

हम अपनी वर्तमान मान्यताओं से तुलना के आधार पर प्रस्ताव से सहमत या असहमत हो सकते हैं, लेकिन, इस प्रक्रिया में हम वास्तविकता को देख नहीं पाते,अतःतुलना करने से बचना होगा। सहमतयाअसहमत होने के बजाय, हम आपको इन प्रस्तावों को सत्यापित करने / जाँचने काआग्रह कर रहे हैं।
हमने इस पुस्तक में कई महत्वपूर्ण बिंदुओं पर,'रुकें और सोचें'नामक प्रतीक का प्रयोग किया है। आपसे अपेक्षा है कि आप इन विशेष बिंदुओं परकुछ समय रुककर, स्वयं में देखने की कोशिश करें।

प्रत्येक अध्याय में,'अपनी समझ को जाँचे' नामकएक अनुभाग भी दिया गया है। जिसमें,तीन उप-अनुभाग हैं। अनुभाग-1,प्रश्नों का एक समूह है, जो आपको यह जाँचने में मदद करेगा कि आपने अध्याय में प्रस्तुत प्रस्तावों को कितना समझाहै। अनुभाग-2 में,इन प्रस्तावों को आपके दैनिक जीने से जोड़ने में सहयोग के लियेकुछ अभ्यास दिये गये हैं। अनुभाग-3 में, प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग से संदर्भित कुछ अभ्यासों का उल्लेख किया गया है, जिसमें आप अपनी समझ की एक रचनात्मक अभिव्यक्ति कर सकते हैं। अगले अध्याय में जाने से पहले यह महत्वपूर्ण होगा, कि आप इन दिये गये अभ्यासों को करने की कोशिश अवश्य करें। यदि आपके कुछ प्रश्न होंतो उन्हें लिख लें। यह संभव है कि,जैसे-जैसे आप स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया में आगे बढेंगेतो आप स्वयं ही उन प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर प्राप्त कर पायेंगे। उस स्थिति में, जिन भी प्रश्नों का उत्तर आपको मिल जाता है, उन्हें चिह्नित कर लें।शेष बचे हुये प्रश्नों के उत्तर के लिये,स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया स्वयं में जारी रखना आवश्यक है,साथ ही आप अपने प्रश्न से संबंधित शीर्षकों को पुनः पढ़ सकते हैं, अपने शिक्षक के साथ चर्चा कर सकते हैं, वेबसाइट देखे सकते हैं अथवा वेबिनार या कार्यशाला में प्रतिभाग कर सकते हैं। निश्चित रूप से जब हमारे मूलभूत प्रश्नों के उत्तर स्वयं से प्राप्त होते हैं,तब वह अधिक तृप्ति दायक होते हैं।

इस पुस्तक में आप यह देखेंगे कि कुछ वक्तव्यों, अवधारणाओं और चित्रों कोकई बार दोहराया गया है।ऐसाआपका ध्यानबार-बार उनकी ओर आकर्षित करने के लिये किया गयाहै, या पहले होचुकी बातों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने के अर्थ में किया गया हैया जिन मुद्दों पर आपकी मान्यतायें बहुत मजबूत हैं उनका मूल्यांकन करने में आपका सहयोग करने के अर्थ में किया गया है;क्योंकि आपकी ये मान्यतायें आपको वास्तविकता जैसी है, उसे वैसा समझने में बाधा उत्पन्न करती हैं।

यहाँ हमने कुछ समस्याओं का उल्लेख किया है,जिससे आपका ध्यान उन समस्याओं के सार्थक विश्लेषण की ओर जा पाये।जैसे परिवार और समाज में शासन की समस्या का विश्लेषण करना,यह परिवार या समाज में विघटनको बढ़ावा देने के लिये नहीं किया गया हैऔर न ही यह आपकी अथवा दूसरों की निराशाजनक आलोचना करने के लिये ही किया गया,बल्कि ऐसा समस्याओं के मूल कारणों की ओरआपका ध्यान आकर्षित करने के लिये किया गया है; क्योंकि सामान्यतः वास्तविकता के कुछ हिस्से के बारे हम जागरूक ही नहीं रह पाते हैं, जिससे हम समस्या के मूल कारण को ठीक से नहीं देख पाते।

प्रस्तावों को समझने के लिये, हमने कुछ उदाहरणों और कहानियों का भी प्रयोग किया है। ये आपके जीने के साथ प्रस्तावों को जोड़ने में आपकी मदद करने के अर्थ में है। ये बने बनाये समाधान प्रस्तुत करने अथवा 'क्या

करें या क्या न करें'के अर्थ में नहीं हैं। पढ़ते समय आप इस बात के लिये जागरूक रहें कि कहीं इन उदाहरणों में ही आप लिप्तनहों जायें और मूल बिन्दु ही छूट जाये।

इस पुस्तक में, सभी प्रस्तावों को एक क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया गया है। इन्हें इसी क्रम में पढ़ना अपेक्षित है, क्योंकि प्रस्तावों के एक समूह की समझ, आने वाले अगले प्रस्तावों को समझने में सहयोग करता है। एक प्रकार से, यह पूरी पुस्तक पहले पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक एक ही 'वाक्य' है। अतः यह कहने की आवश्यकता नहीं है किएक निश्चित क्रम में पूरे वाक्य को पढ़ने से हीइसके अर्थ को सही ढंग से समझा जा सकता है।

प्रस्तावों का प्रयोगात्मक सत्यापन करें

(Experientially Validate the Proposals)

यह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया,एक सतत प्रक्रिया है। कार्यशालाओं में, हम आमतौर पर ऐसा कहते हैं कि "यह कार्यशाला शुरू तो होती है, लेकिन कभी समाप्त नहीं होती", क्योंकि एक बार जब आप अपने में,स्वयं के अधिकार पर जाँच शुरू कर देते हैं, तो यह जाँच सतत जारी रहतीहै। यह प्रक्रिया, स्व-विकास की प्रक्रिया के रूप में सतत चलती रहती है। यह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया, मात्र कक्षा तक ही सीमित नहीं रहती,बल्कि प्रस्तावों का विश्लेषण करने, इनको स्वयं के अधिकार पर जाँचने, और जीने में इनका स्व-सत्यापन करने इत्यादि के रूप में यह प्रक्रिया हमारे दैनिक जीने का एक अंग बन जाती है। मूल्य-शिक्षा के बारे में अच्छी बात यह है कि, आपको इसके लिये किसी विशेष प्रयोगशाला की आवश्यकता नहीं है - हमारा संपूर्ण जीना हीएक प्रयोगशाला है!

यह अध्ययन, समझने के लिये है;और समझना, तृप्ति पूर्वक जीने के लिये है। अतः यह स्पष्ट रहना अनिवार्य है कि हमारा अंतिम लक्ष्य भी यही है 'परस्पर तृप्ति पूर्वक जीना',स्वयं की तृप्ति, दूसरों कीतृप्तिऔर अंततः सभी कीतृप्ति। मूलतः हमारा जीना इस बात का प्रमाण है कि वास्तव में हमने कितना समझ लिया है!

अब, हम अध्ययन के लिये तैयार हैं।

अध्याय-1

मूल्य शिक्षा को समझना

(Understanding Value Education)

कक्षा 9 में आप सभी ने तृप्ति पूर्वक जीने के लिए मूल्य शिक्षा के महत्व को जानना आरंभ किया था । मूल्य शिक्षा व कौशल शिक्षा दोनों ही आवश्यक है। कौशल शिक्षा का सही उपयोग मूल्य शिक्षा के आधार पर ही किया जा सकता है। इन बिंदुओं पर चर्चा हमने कक्षा 9 में विस्तार में की। आइए एक बार पुनः सारांश में इन बिंदुओं को जाने।

तृप्ति-पूर्वक जीना[1]
(Living a Fulfilling Life)

हम सभी तृप्ति-पूर्ण जीना ही चाहते जिसमें हर क्षण सुख हो आनंद हो।

हमारे तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये हमें जो भी आवश्यक लगता है उसकी एक सूची बना कर हमने कक्षा 9 में समझने का प्रयास आरंभ किया है।
कक्षा 9 में आप सभी ने तृप्ति पूर्वक जीने का अर्थ समझना आरंभ किया जैसे हर समय आपके अंदर सुख का भाव बना रहे ,आपका शरीर स्वस्थ बना रहे ,आप इस योग्य रहे कि अपनी सुविधा की आवश्यकता को पूरा कर सकें और आप में समृद्धि का भाव बना रहे । आप अच्छे संबंध में जी पाए ,आपके आसपास समाज में शांति और व्यवस्था बनी रहे ,प्रकृति के साथ सह अस्तित्व में रहे और प्रयास करते रहे कि प्रदूषण मुक्त वातावरण हो और शेष प्रकृति में संसाधनों का अभाव ना हो ।

तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये शिक्षा
(Education for a Fulfilling Life)

तृप्ति-पूर्वक जीने की समझ और इसे सुनिश्चित करने के लिये कार्यक्रम की समझ हेतु उपयुक्त शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा वह प्रक्रिया है, जिससे यह अपेक्षा है की हमें ऐसा जीने के लिये हमें तैयार करे। अब इस शिक्षा व्यवस्था में मुख्य रुप से जो ध्यान देने की आवश्यकता है वह है, मानव में तृप्ति।

मानव के लिये ये दो महत्वपूर्ण प्रश्न हैं:-

1. क्या करना है (What to do)?

2. कैसे करना है (How to do it)?

एक समग्र शिक्षा (holistic education) के लिये इन दोनों पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक होगा। शिक्षा का वह क्षेत्र जो 'क्या करना है', से जुड़ा है उसे मूल्य-शिक्षा कहते हैं। इस शिक्षा से हमारे लक्ष्य, उद्देश्य, मूल-चाहना एवं इसकी पूर्ति के कार्यक्रम की स्पष्टता होती हैं।

---

[1] *तृप्ति पूर्वक: सुख एवं समृद्धि पूर्वक*

मूल्य शिक्षा
(Value Education)

किसी वस्तु का मूल्य उसकी बड़ी व्यवस्था में भागीदारी है जिसका कि वह हिस्सा है।

> *उदाहरण -एक कलम (Pen) का मूल्य यह है कि उससे लिखा जा सकता है। यहाँ पर लिखना पेन की बड़ी व्यवस्था में भागीदारी है।*

इसी प्रकार मनुष्य का मूल्य, बड़ी व्यवस्था (मानव, परिवार, समाज और अंततः प्रकृति/ अस्तित्व के स्तर पर) में स्वाभाविक या अपेक्षित भागीदारी (natural or expected participation) है। यहाँ पर यह ध्यान देना भी महत्वपूर्ण है कि बड़ी व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करने की प्रक्रिया में हम सुखी महसूस करते हैं।
शिक्षा का वह भाग, जो मानव की बड़ी व्यवस्था में भागीदारी को समझने और वैसा जीने को सुनिश्चित करता है, उसे मूल्य शिक्षा कहते हैं। यह बाकी शिक्षा के लिये आधार प्रदान करती है। अंततः तो पूरी शिक्षा को ही मूल्य आधारित होने की आवश्यकता है।

कौशल शिक्षा
(Skill Education)

कौशल (तकनीकी, प्रबंधन, औषधि आदि) हमारे जीवन में आवश्यक है। कौशल का हर क्षेत्र में समुचित विकास हुआ है। निश्चित रूप से कौशल की आवश्यकता है लेकिन यह भी समझना उतना ही महत्वपूर्ण है कि इसे किस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयोग किया जा रहा है।

मूल्य एवं कौशल की पूरकता
(Complementarity of Value and Skills)

हम यह देख सकते हैं कि कौशल मात्र एक साधन (means) है, जिसके द्वारा किसी निश्चित उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। किसी विशेष उद्देश्य को प्रभावी एवं कुशल तरीके से प्राप्त करने के लिये कौशल की आवश्यकता तो है लेकिन कौन सा लक्ष्य, उद्देश्य हमारे लिये सही है, यह तय करना तकनीकी, प्रबंधन या चिकित्सा विज्ञान जैसे कौशल क्षेत्र के बाहर की बात है। अत:, यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि मानव के रूप में हम अपने उद्देश्य को पहचान सकें। इस निर्णय के बिना कौशल उद्देश्य विहीन, दिशाहीन हो जाता है, और इसका प्रयोग किसी भी उद्देश्य के लिये किया जा सकता है– रचनात्मक या विध्वंसात्मक (constructive or destructive)।

मूल्य और कौशल दोनों की आवश्यकता साथ-साथ है, दोनों में पूरकता है। तृप्ति-पूर्वक जीने के लक्ष्य के प्रति किसी भी मानवीय प्रयास की सफलता के लिये दोनों के बीच पूरकता आवश्यक हैं।

कौशल से अधिक, मूल्य की वरीयता[2]
(Priority of Values over Skills)

जैसा कि ऊपर बताया गया है, 'क्या करना है' को निर्धारित करने के लिये मूल्य की समझ आवश्यक है जबकि 'कैसे करना है' को निर्धारित करने के लिये कौशल आवश्यक है। अब, यदि हम अपने आप से पूछें कि इनमें वरीयता क्रम क्या होगा, तो 'क्या करना है' यह पहले निर्धारित किया जायेगा उसके बाद ही हम 'कैसे करना है' के बारे में सोच सकते हैं। आप ये देख पा रहे हैं कि कौशल से अधिक, मूल्य की वरीयता है हालांकि मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये ये दोनों ही आवश्यक हैं।

[2] *वरीयता: प्राथमिकता*

मूल्य शिक्षा और कौशल शिक्षा की परस्पर पूरकता और उनके वरीयता क्रम को समझने के उपरांत अब आप मूल्य शिक्षा की आवश्यकता को विस्तार में जानेंगे ।

मूल्य-शिक्षा की आवश्यकता और उसके प्रमुख आशय का महत्व
(**Appreciating the Need and Important Implication of Value Education)**

मूल्य-शिक्षा एवं कौशल-पूरक शिक्षा की परस्पर-पूरकता और इनके वरीयता क्रम को समझने के उपरांत, अब हम मूल्य-शिक्षा की आवश्यकता और उसके प्रमुख आशय को समझते हैं। जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

हमारे लक्ष्य की सही पहचान
(Correct Identification of Our Goals)

मूल्य-शिक्षा हमें अपने लक्ष्य को ठीक-ठीक पहचानने में सहायक है। ऐसे प्रश्न जो नीचे लिखे गये है, उनका प्रामाणिक उत्तर केवल मूल्य-शिक्षा के ही द्वारा दिया जाना संभव है।

क्या मानव का लक्ष्य अधिक से अधिक धन संग्रह करना है या समृद्ध जीवन (prosperous life) को सुनिश्चित करना है? क्या सुविधाओं का संग्रह करना और समृद्धि दोनों एक ही हैं या अलग-अलग हैं? क्या मानव का लक्ष्य केवल भोग अर्थात् इन्द्रिय संवेदनाओं को भोगना (sensual pleasure) है और वह भी निरंतरता में? क्या भोग और सुख दोनों वास्तविकतायें एक ही है या दोनों अलग-अलग हैं? क्या हम अपना लक्ष्य तय करते समय स्वयं में देखते हैं या दूसरे को देखते है?

ऐसे ही अनेक मुद्दे हैं जिनके साथ हम संघर्षरत हैं, जहाँ असमंजस की स्थिति उत्पन्न होती है और अपने लक्ष्य को निश्चितता के साथ तय कर पाना कठिन हो जाता है। आने वाले अध्यायों में, हम इनके बारे में एक-एक करके विस्तार से, क्रमबद्ध ढंग से अध्ययन करेंगे। जिससे अपना लक्ष्य तय करने का आधार स्वयं में विकसित होगा, न कि दूसरे के प्रभाव में तय करना पड़ेगा। थोड़ा सोचिये कि यदि आपने अपना लक्ष्य स्वयं के आधार पर न तय करके दूसरे के प्रभाव में तय किया है तो क्या इससे आपकी तृप्ति हो सकती है? अतः जीवन की इस अवस्था पर आपके लिये यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि आप अपना लक्ष्य, आत्मविश्वास के साथ, स्वयं के आधार पर निर्धारित कर सकें।

आगे और बढ़ने पर हम देखेंगे कि मानव, प्रकृति, संबंध और व्यवस्था को समझने के उपरांत जीने के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी भागीदारी को समझना संभव है, इसलिये अपना लक्ष्य, अपना उद्देश्य भी ठीक-ठीक समझ सकते हैं। इसी को समग्रता की दृष्टि (holistic perspective) का विकास कहा।

समग्र- दृष्टि का विकास
(Development of Holistic Perspective)

मूल्य-शिक्षा से समग्र दृष्टि बनती है, जो मानव (वह जो समझने वाला है), प्रकृति/ अस्तित्व (जिसका कि हम अभिन्न अंग है) और प्रकृति/अस्तित्व में हमारी भागीदारी की स्पष्टता से होता है। यह भागीदारी ही हमारी भूमिका है, यह हमारा उद्देश्य या लक्ष्य है, यह हमारा अधिकार है, यह हमारी जिम्मेदारी है और यही हमारा मूल्य है। हमारे रोजमर्रा के जीने में इसका आशय यह हुआ कि हम इस योग्य हैं कि हम अपनी भागीदारी को स्वयं, परिवार, समाज और प्रकृति/अस्तित्व के संदर्भ में देख पाते हैं (चित्र. 1-1. देखिये)। हम यह भी देख सकते हैं कि जब हम किसी भी स्तर पर अपनी भागीदारी का निर्वाह करते हैं तो हम सुख का अनुभव करते हैं।

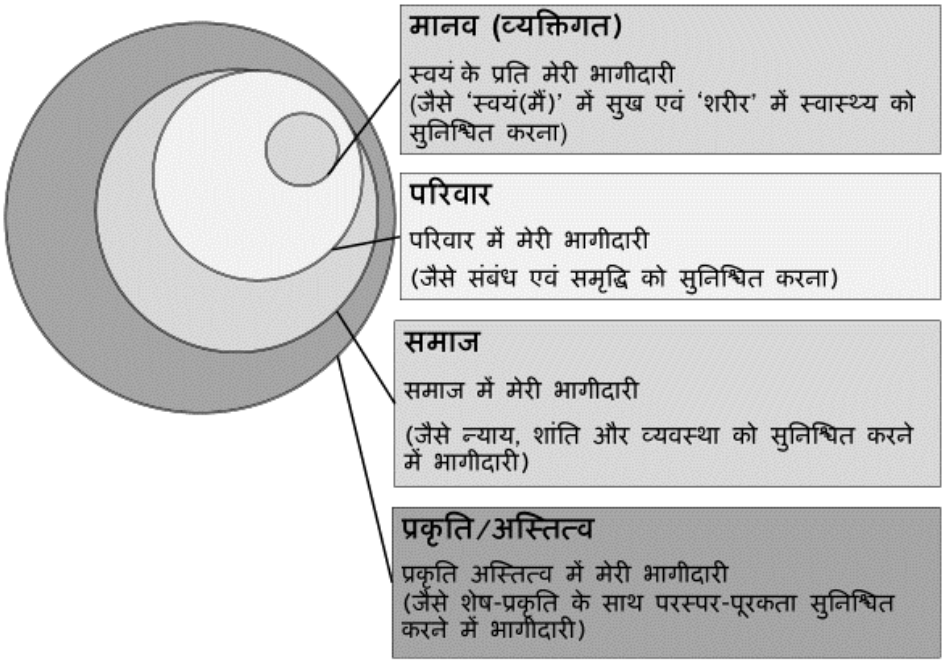

चित्र. 1-1. बड़ी व्यवस्था में भागीदारी और अंतर्संबंध

हम इस अस्तित्व में सबसे छोटे स्तर से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्मांड (whole cosmos) तक परस्पर-जुड़े (interconnected) हुये है तथा परस्पर-संबंधित (interrelated) हैं। एक श्रृंखला है जो प्रत्येक स्तर पर परस्पर-पूरकता के साथ आपस में जुडी हुई है। इस समग्र दृष्टि के साथ हम इसके प्रत्येक छोटे से छोटे हिस्से को समझाने के योग्य हो पाते हैं। हम यह देख पाते हैं कि मेरा होना भी इसी परस्पर-पूरकता के कारण संभव है। दूसरे मानव और शेष-प्रकृति की अन्य इकाइयों जैसे हवा, पानी, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि के लिये भी ऐसा ही है। समृद्ध जैव-विविधता (rich bio-diversity) हमारे लिये पूरक है, बिना हमारे कोई प्रयास किये भी ये हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उपलब्ध रहती हैं; परस्पर-पूरकता के उपहार की तरह। एक लम्बी मानव परम्परा के द्वारा विकसित किया गया ज्ञान, सूचनायें और कौशल भी हमें उसी तरह उपलब्ध रहता है, हमारे बिना किसी प्रयास के, इससे हमारे अंदर समाज और अंततः समग्र अस्तित्व के लिये एक गहरी कृतज्ञता का भाव विकसित होता है।

समग्र दृष्टि के प्रकाश में, हम यह समझ सकते हैं कि प्रकृति या अस्तित्व व्यवस्था में है एवं प्रकृति की प्रत्येक इकाई के बीच पारस्परिक संबंध है, इसमें मानव भी सम्मिलित है। अब हम यह स्वीकार सकते हैं कि प्रकृति की सभी इकाइयाँ जो अस्तित्व में है, उनमें व्यवस्था और संबंध एक सूत्र की तरह उपलब्ध है। अब हम यह देख सकते हैं कि ये सभी इकाइयाँ जो छोटे परमाणु से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्मांड तक हैं, ये प्रत्येक स्तर पर इस व्यवस्था और संबंध की ही अभिव्यक्ति (expressions) हैं।

समग्र दृष्टि के साथ जीने के लिये कार्यक्रम की स्पष्टता
(Clarity of Programme to Live with Holistic Perspective)

हम अपने जीने में अनेक तरह के प्रश्नों से जूझते रहते हैं, जैसे कि ऐसा कौन सा विचार है जो मुझे सहज स्वीकार्य है, जिसकी मैं निरंतरता चाहता हूँ, ऐसा कौन सा भोजन है, जो मेरे शरीर को स्वस्थ रख सकता है, किस वस्त्र के द्वारा मेरे शरीर की आवश्यकता की पूर्ति बेहतर हो सकती है, किस प्रकार के व्यवहार के द्वारा मैं अपने मित्रों के साथ संबंध बनाये रख सकता हूँ, मैं अपने परिवार के दूसरे व्यक्तियों की किस प्रकार से सहायता कर सकता हूँ, मैं विद्यालय, अपने आस-पड़ोस या समाज में किस प्रकार की भागीदारी निभा सकता हूँ जिससे परस्पर-पूरकता सुनिश्चित हो सके, या वातावरण जिसमें पेड़-पौधे, जल, वायु इत्यादि सम्मिलित हैं, में व्यवस्था को बनाये रखने के लिये मेरी क्या भागीदारी हो सकती है। इस प्रकार के अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर हम सोचते ही रहते हैं तथा अलग-अलग लोगों का इन मुद्दों पर

मानना बदलते रहने के कारण जो भ्रम की स्थिति बनती है उससे संघर्ष भी करते रहते हैं। क्या हम एक ऐसा दृष्टि और कार्यक्रम विकसित कर सकते हैं जिसमें समग्रता हो और वह सार्वभौम भी हो? अगर ऐसा हो पाता है तो हमें अपने दैनिक कार्यक्रमों को तय करने में स्पष्टता हो जायेगी।

मूल्य-शिक्षा ऐसी दृष्टि (vision) प्रदान करती है, जिससे कि हम इस तरह के सभी प्रश्नों के उत्तर पा सकते हैं। हम यह भी देख सकते हैं कि इस तरह कार्यक्रम की स्पष्टता हमारे स्वयं के सुख के लिये भी आवश्यक है।

हमारी मान्यताओं का मूल्यांकन
(Evaluation of Our Beliefs)

हमारा आचरण इस बात पर निर्भर करता है कि हम अपने बारे में, परिवार के बारे में, समाज के बारे में तथा प्रकृति के बारे में क्या मानते हैं या समझते हैं। मूल्य-शिक्षा हमारी अपनी मान्यताओं (precondition) के बारे में जागरूक होने में सहायक है। हमारा अधिकांश व्यवहार या क्रियाकलाप इन्हीं मान्यताओं पर आधारित होता है जिसके बारे में सामान्यतः हम अनभिज्ञ रहते हैं। यह हमारे जीवन में निर्णय लेते समय मार्गदर्शन करती रहती हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम अपनी मान्यताओं का भलीभांति मूल्यांकन करें। निःसंदेह हमारी सभी मान्यतायें गलत नहीं होती हैं, लेकिन कुछ हो भी सकती हैं।

> *उदाहरण के लिये यदि हमारा यह मानना है कि जीवन का अंतिम लक्ष्य धन कमाना ही है, तथा सुख का स्रोत केवल इन्द्रिय संवेदना का भोग (sensual pleasures) ही है, तो हम धन संग्रह करने एवं जितना हो सके उतना इंद्रिय संवेदनाओं को भोगने में लगे रहते हैं। इसी प्रकार से अनेक अन्य मान्यतायें भी हो सकती हैं, और उन मान्यताओं के आधार पर तृप्ति के कार्यक्रम भी अलग-अलग हो सकते हैं।*

इनमें से एक मान्यता यह भी है कि प्रकृति इस प्रकार से बनी है जिसमें *"जीवन संघर्ष है" और "ताकतवर का ही अस्तित्व बना रह पाता है"* (struggle for survival and the 'survival of the fittest'); अतः मनुष्य को जीवन पर्यंत संघर्ष करते ही रहना पड़ेगा इस मान्यता के कारण ही हम दूसरे मानव के साथ परस्पर-पूरकता की जगह प्रतिस्पर्धा (competition**)** की सोचते हैं। यहाँ तक कि हम उस पर शासन (domination**)** का भी सोच लेते हैं जो अंततः हमें लड़ाई और युद्ध की तरफ ले जाता है। हम सुविधाओं के अधिकाधिक संग्रह के बारे में सोचते हैं, जिसकी पूर्ति के लिये हम शेष-प्रकृति पर शासन और शोषण (exploitation and mastery) के लिये भी तत्पर रहते हैं बजाय इसके कि हम परस्पर-पूरकता सुनिश्चित करें। इससे अंततः प्रकृति में संसाधनों का अभाव (resource depletion**)** और प्रदूषण होता है। इस प्रकार से हम देख सकते हैं कि वर्तमान समय की जो मुख्य समस्यायें हैं, उनके बीज हमारे में, गलत मान्यताओं के रूप में है, चाहे वो स्वयं के बारे में हों अथवा शेष-प्रकृति के बारे में।

क्या आप निश्चित तौर पर मानव और शेष-प्रकृति से संबंधित अपनी मान्यताओं के बारे में जानते हैं? क्या प्रकृति में *"जीवन संघर्ष है" और "ताकतवर का ही अस्तित्व बना रह पाता है"* (Is there struggle for survival and the survival of the fittest in nature?) ? क्या ब्रह्मांड (cosmos), व्यवस्था में है या उसमें किसी तरह की अफरा-तफरी (chaos) है? 'मान्यता' हमारे में एक तरह की गहरी स्वीकृति होती है, जिसके बारे में हम आश्वस्त (convinced) नहीं होते हैं, लेकिन यह फिर भी हमारे अंदर बार-बार हावी होती रहती है, जिसे हम स्वयं में पकड़े रहते हैं, और बार-बार अपने में दोहराते भी रहते हैं। अपने में न तो हम उसे जान रहे होते हैं, न ही उसके बारे में आश्वस्त रहते हैं। जबकि 'जानने' का अर्थ होता है, कि बिना किसी भ्रम के जो वास्तविकता जैसी है उसे वैसा समझना।

सामूहिक स्तर पर, संस्कृति और सभ्यता (culture and civilization) की विशेषता दो वास्तविकताओं की समझ या मान्यता पर निर्भर करती है: पहला मानव के बारे में और दूसरा प्रकृति/अस्तित्व के बारे

में। समाज में ये समझ या मान्यतायें, शिक्षा के माध्यम से अगली पीढ़ी में पहुँचती हैं। निःसंदेह यहाँ पर शिक्षा का अर्थ यह है कि मानव आस-पास के वातावरण जैसे परिवार, विद्यालय, समाज के विभिन्न व्यक्तियों, उत्सवों, मीडिया आदि से क्या ग्रहण करता है।

यह देखिये की क्या इसी प्रकार से आप भी सूचनायें ग्रहण करते हैं। यह भी देखिये की इस तरह के सूचनाओं से आप क्या निष्कर्ष निकालते हैं। यह भी देखिये कि क्या इन सूचनाओं के आधार पर आप भी अपने लक्ष्यों को तय करते हैं।

वर्तमान समस्याओं का समाधान
(Solution of Existing Problems)

यदि हम अपनी भागीदारी (मानवीय मूल्य) को समझकर, उसके अनुसार अपने जीने के सभी आयामों (स्वयं से लेकर, परिवार, समाज और संपूर्ण प्रकृति तक) में जीते हैं, तो यह हमारे लिये भी तृप्ति दायक होगा और आस-पास के लिये भी। समस्यायें और गलत मान्यतायें मुख्यतः इसलिये हैं क्योंकि, हमने इसे समझा नहीं है और समझने का पर्याप्त प्रयास भी नहीं कर रहे हैं।

एक बार अगर हमारे पास समग्र दृष्टि (holistic perspective) और वैसा जीने के कार्यक्रम की स्पष्टता हो जाये, तो हम ये समझ पायेंगे की अधिकांश समस्यायें हमारी गलत मान्यताओं के लक्षण और परिणाम हैं, तब कुछ समय में हम उनको जड़ से उखाड़ने के योग्य हो जायेंगे, न सिर्फ व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि परिवार के स्तर पर, अपने कार्यस्थल पर, समाज के स्तर पर और शेष-प्रकृति के साथ कार्य में भी। वास्तविकताओं के सही-समझ के साथ हम अपने जीने के विभिन्न आयामों में अपनी भागीदारी को ठीक तरह से परिभाषित कर सकेंगे एवं उसके अनुसार कार्य कर सकेंगे। इस प्रकार की जानकारी से पहला तो यह होगा कि न तो हम स्वयं के लिये समस्याओं को उत्पन्न करेंगे और न ही दूसरों के लिये, दूसरा अपने जीने के विभिन्न स्तरों पर हम वर्तमान समस्याओं को सुलझा पायेंगे और तीसरा हम एक कार्यक्रम बना सकेंगे जो सभी की तृप्ति को सुनिश्चित कर सकेगा चाहे इसका स्तर छोटा हो या बड़ा। अंततः हम अपने समाज तथा आस-पास सभी की तृप्ति हेतु भागीदारी सुनिश्चित करने के योग्य हो पायेंगे।

नैतिक-योग्यता का विकास
(Development of Ethical Competence)

किसी व्यक्ति का व्यवहार, कार्य और बड़ी व्यवस्था में उसकी भागीदारी, जो निश्चित मानवीय आचरण के रूप में अभिव्यक्त होती है, वही नैतिकता (Ethics) है। यह सहज ही समझ सकते हैं कि मूल्य-शिक्षा का मुख्य उद्देश्य नैतिक योग्यता (ethical competence) को विकसित करना है जो मानव के सभी प्रकार के क्रियाकलापों में परिलक्षित हो। विभिन्न व्यवसायों में अनैतिक आचरण लगभग सभी जगह एक बहुत बड़ी समस्या बनती जा रही है, मूल्य-शिक्षा के माध्यम से नैतिक-योग्यता को विकसित करके इस समस्या को प्रभावशाली ढंग से हल किया जा सकता है। इस पुस्तक के तीसरे खंड में हम व्यावसायिक नैतिकता (professional ethics) के संदर्भ में मूल्य-शिक्षा की प्रमुख विशेषताओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

पिछली कक्षा में हमने मूल्य शिक्षा के लिए दिशा निर्देश विस्तार में जाने थे एक बार पुनः मूल्य शिक्षा के सभी स्वीकार्य दिशा निर्देश को जान लेते हैं।

मूल्य-शिक्षा के लिये दिशानिर्देश
(Guidelines for Value Education)

सार्वभौम
(Universal)
मूल्य-शिक्षा के अंतर्गत हम जो कुछ भी पढ़ते हैं वह सार्वभौम रूप से स्वीकार हो अर्थात् हर व्यक्ति को, सभी स्थानों पर और हर समय एक जैसा स्वीकार हो।

तर्कसंगत
(Rational)
मूल्य-शिक्षा तर्कसंगत हो न कि मान्यताओं या रूढ़ियों पर आधारित हो, एवं उससे जुड़े प्रश्नोत्तर के लिये अवसर हो।

स्वाभाविक और जाँचने योग्य
(Natural and Verifiable)
मूल्य-शिक्षा में हम जिन बातों का अध्ययन करना चाहते हैं वह हमारे लिये स्वाभाविक हो और उसको जाँचा जा सके। स्वाभाविक (natural) का अर्थ है कि यह हमें सहज स्वीकार्य हो और जब हम ऐसे मूल्यों के आधार पर जीये तो यह परस्पर-पूरक भी हो।

सर्व सम्मिलित
(All Encompassing)
मूल्य-शिक्षा की विषय-वस्तु में हमारे जीने के सभी आयाम (dimensions) (विचार, व्यवहार, कार्य, और समझ) और जीने के सभी स्तर (मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/अस्तित्व) शामिल हों।

व्यवस्था को सुनिश्चित करने वाला
(Leading to Harmony)
अंततः, मूल्य-शिक्षा हमें स्वयं में व्यवस्था(harmony) तथा दूसरों के साथ भी व्यवस्था की स्थिति की ओर ले जाने में सहायक हो।

मूल्य-शिक्षा की विषय-वस्तु
(Content of Value Education)

हमने यह देख लिया है कि मानव का मूल्य सम्पूर्ण अस्तित्व रुपी बड़ी व्यवस्था में उसकी भागीदारी है। अतः मानव मूल्यों को समझने के लिये अस्तित्व में जो भी है उन सभी का अध्ययन करने की आवश्यकता है। मानव की भागीदारी अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ उसका संबंध है। इसका अर्थ यह हुआ कि अध्ययन की विषय-वस्तु में सब कुछ सम्मिलित हो अर्थात्-

- इसमें मानव के जीने के सभी आयाम सम्मिलित हों - विचार, व्यवहार, कार्य और अनुभव (realization)।
- इसमें मानव के जीने के सभी स्तर सम्मिलित हों - मानव, परिवार, समाज, प्रकृति और अस्तित्व।

मूल्य-शिक्षा की प्रक्रिया- स्व-अन्वेषण
(Process of Value Education- Self-exploration)

मानवीय मूल्य को समझने के लिये स्व-अन्वेषण एक उचित प्रक्रिया है, क्योंकि ये क्षमता के रूप में हर मानव में विद्यमान है। मानव में पहले से ही मानवीय मूल्यों के लिये सहज स्वीकृति है। हमें तो सिर्फ उनको स्वयं में देखना है या उनके प्रति जागरूक होना है।

मानवीय-मूल्य के अध्ययन के लिये एक ऐसी प्रक्रिया हो जिसके द्वारा आप में स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया का विकास हो। सभी वक्तव्यों को एक प्रस्ताव के रूप में लेते हुये आप स्वयं में वास्तविकताओं की जाँच करने के योग्य हो।

मुख्य बिंदु
(Salient Points)

- हम सभी तृप्ति-पूर्ण, व्यवस्थित जीवन जीना चाहते हैं और उसी के लिये कार्य कर रहे हैं।
- किसी वस्तु का मूल्य बड़ी व्यवस्था में उसकी भागीदारी है, जिसका कि वह हिस्सा है।
- मूल्य-शिक्षा, शिक्षा का वह हिस्सा है जो मानव की बड़ी व्यवस्था में भागीदारी की समझ और वैसा ही जीने को सुनिश्चित करता है।
- मूल्य-शिक्षा की विषय-वस्तु के लिये आवश्यक है कि वह सार्वभौम, तार्किक, स्वाभाविक और जाँचने योग्य, सर्व-सम्मिलित एवं व्यवस्था को सुनिश्चित करने वाली हो।
- मूल्य-शिक्षा की विषय-वस्तु में मानव के जीने के सभी स्तर एवं मानव के जीने के सभी आयाम सम्मिलित हों।
- मूल्य-शिक्षा की प्रक्रिया के लिये स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया आवश्यक है। स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया में सहज-स्वीकृति के आधार पर स्वयं में जाँच और उसको जीने में प्रयोग करके आने वाले परिणामों को जाँचना सम्मिलित है।
- नैतिकता, निश्चित मानवीय आचरण की अभिव्यक्ति है, मानव के व्यवहार, कार्य, और बड़ी व्यवस्था में उसकी भागीदारी के रूप में, जो स्वयं और शेष-प्रकृति के बारे में हमारी समझ का परिणाम है।
- मानव में नैतिक योग्यता के विकास से व्यावसायिक नैतिकता सुनिश्चित होती है।

अपनी समझ को जाँचे
(Test your Understanding)

अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न
(Questions for Self-evaluation)

क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?

1. मूल्य-शिक्षा के कोई तीन आशयों (implications) की सूची बनाइये? ये आपके जीवन से कैसे संबंधित हैं बताइये?
2. नैतिकता को परिभाषित कीजिये। मूल्य एवं नैतिकता किस प्रकार से संबंधित हैं?

अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास
(Practice Exercises for Self-exploration)

(दी गई विषय-वस्तु को अपने जीने से जोड़ने के क्रम में, कम से कम वैचारिक स्तर पर, इस अभ्यास को व्यक्तिगत या सामूहिक स्तर पर अपने मित्रों या परिवार के सदस्यों के साथ अवश्य करें।)

यह अभ्यास हमने कक्षा 9 में भी किया था आइए इसको जारी रखते हैं:

1. आप जिन्हें मानवीय-मूल्य मानते हैं ऐसी पाँच बातों का चयन करें। अब सभी मूल दिशानिर्देशों को लिखिये एवं ये देखिये कि क्या ये सभी आपके मूल दिशानिर्देशों को संतुष्ट करती हैं।(संकेत:

कोई कह सकता है कि विश्वास मानवीय-मूल्य है। अब जाँचें कि क्या यह मूल दिशानिर्देशों को संतुष्ट करता है)

2. अपनी इच्छाओं की सूची बनाइये- हम आगे इनका संदर्भ लेते रहेंगे।

अनुभाग 3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (creative expressions) करने के लिये दिया गया है। निःसंदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

'जब मैं छोटे से छोटे रूप में भी अपनी भागीदारी करता हूँ तो मैं सुखी होता हूँ। यह एक बहुत ही साधारण सी बात है। मुझे जीने के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी स्वाभाविक भागीदारी (natural participation) को समझने की जरूरत है, अपनी भागीदारी का निर्वाह करने की योग्यता विकसित करने की आवश्यकता है और इसके बाद सिर्फ इसे करना है। यही स्वतंत्रता और सुख है!

अनुभाग 4: आपके प्रश्न
(Your Questions)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। अब तक के दिये गये प्रस्तावों के स्व-अन्वेषण से यदि आपके कुछ पुराने प्रश्न उत्तरित हुये हैं तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-2

स्व-अन्वेषण - मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया

(Self-exploration as the Process for Value Education)

कक्षा 9 के अध्याय 2 में हमने स्व-अन्वेषण - मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया को समझना शुरू किया था।इस क्रम में हमने स्वयं में संवाद की प्रक्रिया को विस्तार में जानने का प्रयास किया था। अब हम एक बार सारांश रूप में स्व-अन्वेषण प्रक्रिया को समझते हैं।

स्व-अन्वेषण : स्वयं में संवाद

(Self-exploration: The Dialogue Within)

स्व-अन्वेषण , स्वयं के अधिकार पर, स्वयं में निरीक्षण, परीक्षण तथा विश्लेषण के द्वारा वास्तविकताओं को देखने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के द्वारा अस्तित्व में जो वास्तविकतायें हैं, और उसके साथ हमारी जो भागीदारी है, उसको समझने की कोशिश करते हैं, जिसे हमने मूल्य (value) के रूप में पहचाना है।

स्वयं में संवाद

(The Dialogue Within)

आप स्वयं में चल रहे संवाद को देखें, यह संवाद 'जैसा मैं हूँ' (What I am?) और 'जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है' इसके बीच हो रहा है। (चित्र. 2-1. देखें)

चित्र. 2-1. स्वयं में संवाद

अपनी वर्तमान स्थिति को देखने का प्रयास करें:

- आपको अपनी सहज-स्वीकृति के प्रति स्पष्टता हैं, और यही आपका मार्गदर्शन कर रही है या,
-
- आपको अपनी सहज-स्वीकृति के प्रति पूरी तरह से स्पष्टता नहीं हैं, और आप किसी अन्य आधार पर निर्णय ले रहे हैं।

'जैसा मैं हूँ' (What I am?) इसका तात्पर्य है, मेरी इच्छा, विचार, आशा, मेरी कल्पनाशीलता और वह सभी कुछ जो मेरे अंदर ही चल रहा होता हैं। (चित्र. 2-2. देखें) इसमें यह भी सम्मिलित है कि मैं कैसा भाव रखता हूँ या मैं कैसा महसूस करता हूँ; जैसे मैं क्या सोचता हूँ, मैं अपने निर्णय कैसे लेता हूँ और मैं दूसरों से क्या अपेक्षा रखता हूँ। यह मेरी वर्तमान योग्यता (competence) है जिसके आधार पर मैं जीता हूँ।

'जैसा मुझे सहज स्वीकार्य है' ('What is naturally acceptable to me') यही मेरी सहज-स्वीकृति है, यही मेरी चाहना है। यह 'वास्तव में मैं जैसा होना चाहता हूँ' वही है ('What I really want to be')। यह मूल वास्तविकता हर मानव में स्वाभाविक रूप से है। हम इसका सन्दर्भ ले या न ले लेकिन ये हममें हमेशा रहता ही है। मैं अपनी सहज-स्वीकृति के अनुसार जी पाऊँ या न जी पाऊँ लेकिन मैं यह देख सकता हूँ कि "वास्तव में मैं क्या होना चाहता हूँ"। उदाहरण के लिये हम यह आसानी से देख पाते हैं कि हम संबंध पूर्वक जीना चाहते हैं, हम अपने शरीर को स्वस्थ रखना चाहते हैं, यही हमारी सहज-स्वीकृति है।

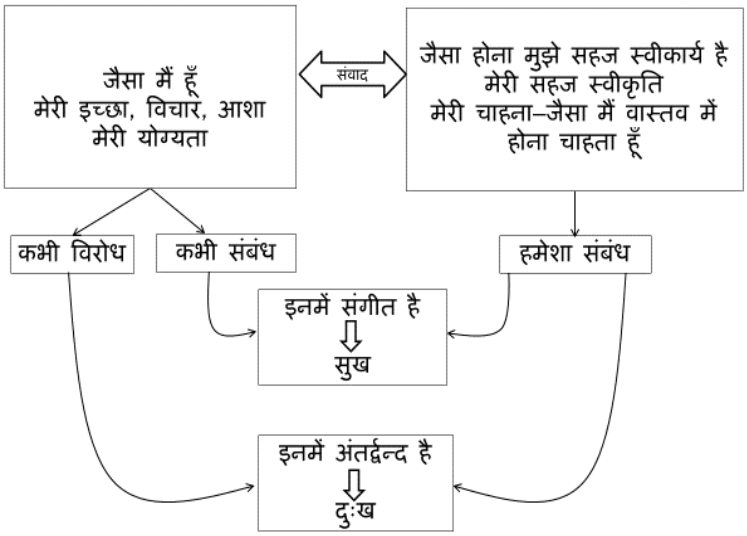

चित्र. 2-2. 'जैसा मैं हूँ' और 'जैसा मैं वास्तव में होना चाहता हूँ'

स्वयं में संगीत की स्थिति ही सुख है।

(Happiness is to be in a state of harmony)

स्वयं में अंतर्विरोध की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना ही दुःख है।

(Unhappiness is to be forced to be in a state of contradiction)

स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु
(The content for self-exploration)

कक्षा 9 में हमने जाना स्वयं में तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये जो कुछ भी समझाना आवश्यक है, वह स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु होगा

स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु मूलतः दो भाग में है:

a) चाहना - आपकी मूल चाहना क्या है? (What is your basic aspiration?)
b) कार्यक्रम - आपकी मूल चाहना को पूरा करने के लिये क्या करना है?

क्या यह दोनों प्रश्न आपके लिये महत्वपूर्ण है? क्या आपके लिये आपकी मूल चाहना (basic aspiration) को जानना महत्वपूर्ण है? आपके लिये आपकी मूल चाहना की पूर्ति के लिये कार्यक्रम को जानना महत्वपूर्ण है?

यदि हम इन दो प्रश्नों के उत्तर पा जाते हैं, तो व्यवहारिक रूप से हमें सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं! वास्तव में, हमारे में जो भी प्रश्न बने हैं, वह इन दोनों की स्पष्टता की कमी के कारण हैं। यदि हमारे पास इन दोनों प्रश्नों का उत्तर है, तो अब सिर्फ इसके अनुसार कार्य करना शेष है!

स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया
(The process of self-exploration)

हमने स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को पहले ही पहचानना शुरू कर दिया है। आइये अब हम इसे और विस्तार से देखते हैं।जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कि जब हम यह कहते हैं कि यह एक प्रस्ताव है, तो इसे सच या झूठ, सही या गलत नहीं मानना है, इसे जाँचना है- अपने अधिकार पर, अपनी सहज-स्वीकृति के आधार पर। यद्यपि, सहज-स्वीकृति के आधार पर जाँचना, इस प्रक्रिया का केवल एक भाग है। इससे अधिक और क्या है आगे देखेंगे। चित्र. 2-3. को देखिये, यह स्व-अन्वेषण की पूरी प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है।

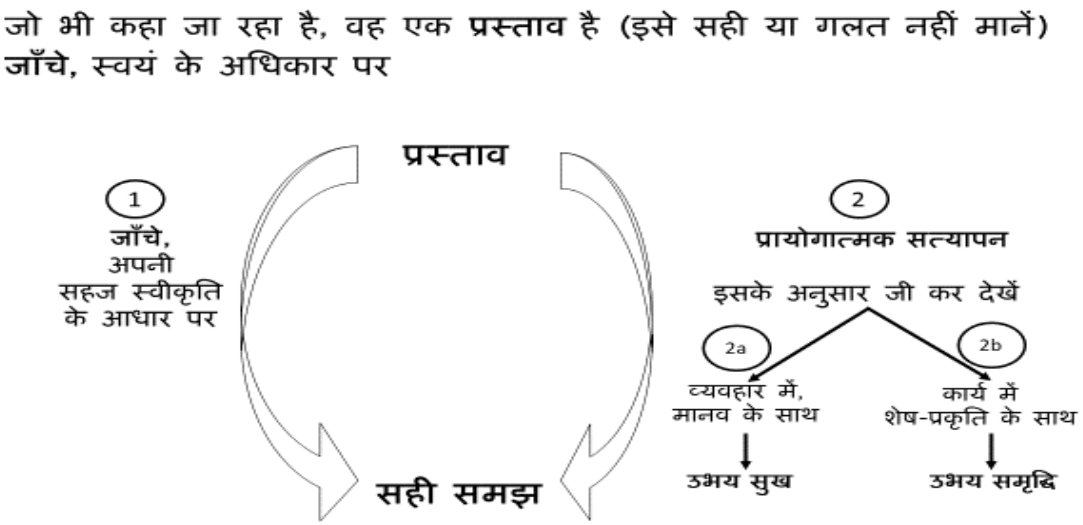

चित्र. 2-3. स्वान्वेषण की प्रक्रिया

स्व-अन्वेषण के पहले भाग में हम, प्रस्ताव को अपनी सहज-स्वीकृति के आधार पर जाँचते है। एक बार जब हम यह जाँच लेते है, कि प्रस्ताव हमको सहज स्वीकार्य हैं, तब हम आश्वस्त हो पाते हैं कि यह प्रस्ताव कुछ ऐसा ही है, जैसा हम जीना चाहते हैं।

स्व-अन्वेषण के दूसरे भाग में हम इसे जीने के स्तर पर सत्यापित (experiential validity) करके देखते हैं अर्थात् इस प्रस्ताव के आधार पर जी कर देखते हैं। जीने में भी दो भाग हैं- पहला मानव के साथ 'व्यवहार' और दूसरा शेष-प्रकृति के साथ 'कार्य'। जब हम दूसरे मानव के साथ इस प्रस्ताव के अनुसार व्यवहार करते हैं, तो हम यह जाँचते है कि उभय-सुख (mutual happiness) हो रहा है या

नहीं। यदि उभय-सुख हो रहा है तो यह प्रस्ताव सही है अन्यथा नहीं। इसी प्रकार जब हम इस प्रस्ताव के आधार पर, शेष-प्रकृति के साथ कार्य करते हैं, तो यह जाँचते हैं कि इससे उभय-समृद्धि हो रही है या नहीं। यदि हम उभय-समृद्धि की तरफ बढ़ रहे हैं तो यह प्रस्ताव सही है अन्यथा नहीं।जब हम प्रस्ताव को दोनों तरह से जाँच कर देखते हैं, स्वयं में सहज-स्वीकृति के आधार पर और परस्परता में जीने के आधार पर, तो अंततः जो निष्कर्ष निकलता है, वह "सही-समझ" होती है।

सहज-स्वीकृति को समझना - सही समझ का आधार
(Understanding Natural Acceptance- the Basis for Right Understanding)

जब आप इन प्रश्नों के उत्तर ढूंढने का प्रयत्न करते हैं कि 'आप को क्या सहज स्वीकार्य है - सुखी होना या दुःखी रहना', इस प्रश्न का उत्तर आप क्षण भर में ही पा जाते हैं, ऐसा है, की नहीं? यह उत्तर कहाँ से आया है, इसका स्रोत क्या है? आइये इन संभावनाओं को तलाशने का प्रयत्न करते हैं:

1. यह आपकी पसंद-नापसंद, मान्यताओं, पूर्वाग्रहों आदि के आधार पर आता है।
2. यह आपकी सहज-स्वीकृति से आता है।

सहज-स्वीकृति मौलिक होती है, यह हमारे लक्ष्य, हमारी मूल चाहना से संबंधित है। जब हम इनसे जुड़े हुये प्रश्न पूछते हैं तो हम अपनी सहज-स्वीकृति के आधार पर निश्चित उत्तर पाते हैं। उदाहरण के लिये

- सुखी होना सहज-स्वीकार्य है या दुखी होना सहज-स्वीकार्य है?
- आपको संबंध के भाव में जीना सहज-स्वीकार्य है या विरोध के भाव में जीना सहज-स्वीकार्य है?

इन सभी प्रश्नों के उत्तर के लिये हम अपनी सहज-स्वीकृति का सन्दर्भ लेते हैं तो एक निश्चित उत्तर मिलता हैं।

दूसरी तरफ, अगर हम इन मूल चाहनाओं की पूर्ति कैसे करना है, के विवरण से जुड़े हुये सवाल पूछें या हम अपनी आशाओं के बारे में प्रश्न पूछें जो कि बाहर से पूरी होती हैं; तो आपके उत्तर निश्चित नहीं होंगे। उदाहरण के लिये आपको चावल खाना सहज स्वीकार्य है या गेहूँ खाना सहज स्वीकार्य है? इस प्रश्न का उत्तर आपकी सहज-स्वीकृति का संदर्भ लेकर नहीं ढूंढा जा सकता।

सहज-स्वीकृति की कुछ विशेषताओं को संक्षेप में देखते हैं:

(a) **सहज-स्वीकृति समय के साथ नहीं बदलती (Natural Acceptance Does not Change with Time)** जो आपको आज सहज-स्वीकार्य है बिल्कुल वैसे ही पहले भी आपको सहज-स्वीकार्य था और यही आपको कल भी सहज स्वीकार्य होगा।

(b) **सहज-स्वीकृति स्थान के साथ नहीं बदलती (Natural Acceptance Does not Change with Place)** सहज स्वीकार्य भाव जैसे विश्वास, सम्मान, स्नेह इत्यादि, स्थान के साथ भी अपरिवर्तनीय हैं। ये भाव मुझे सहज-स्वीकार्य ही रहते हैं चाहे मैं भारत में हूँ अमेरिका में, या अन्य किसी स्थान पर।

(c) **सहज-स्वीकृति व्यक्ति के आधार पर नहीं बदलती (Natural Acceptance Does not Change with the Individual)** सहज-स्वीकृति हम सबके लिये एक जैसी होती है; यह प्रत्येक मनुष्य में स्वाभाविक रूप से है ही। यह हमारी मानवीयता का हिस्सा है। हम यह देख पाते हैं कि सहज स्वीकृति हर मनुष्य के लिए सामान्य है।

(d) **सहज-स्वीकृति पसंद-नापसंद, मान्यताओं या पूर्वाग्रहों के आधार पर नहीं बदलती (Natural Acceptance is Uncorrupted by Likes and Dislikes or assumptions**

or Believe) सहज-स्वीकृति हमारी पसंद-नापसंद, मान्यताओं या पूर्वाग्रहों से प्रभावित नहीं होती, चाहे ये सब हमारे विचारों में रात-दिन, बहुत गहराई तक प्रभाव डालते रहते हों।

(e) **सहज-स्वीकृति स्वाभाविक है; कृत्रिम तौर पर इसे उत्पन्न करने की आवश्यकता नहीं है (Natural Acceptance is Innate; We don't Need to Create it):** मनुष्य की सहज-स्वीकृति उसमें स्वाभाविक रूप से होती ही है। सहज-स्वीकृति स्वभावतः एक आंतरिक शक्ति के रूप में हमारे भीतर रहती ही है, और यह हमको संकेत देती रहती है कि जो हमारा भाव है, या जो हम सोच रहे हैं, या कर रहे हैं, वह हमारी सहज-स्वीकृति के साथ संगीत/ व्यवस्था में है या नहीं। हम इसका संदर्भ किसी भी समय ले सकते हैं, यह हमेशा हममें उपलब्ध रहती ही है।

(f) **सहज-स्वीकृति निश्चित है (Natural Acceptance is Definite)** सहज-स्वीकृति संबंध, व्यवस्था, और सह-अस्तित्व के लिये है, जो कि सार्वभौमिक है।

वर्तमान स्थिति का अवलोकन
(Appraisal of the Current Status)

कक्षा 9 में हमने वर्तमान स्थिति का अवलोकन विस्तार में किया था एक बार पुनः सारांश में वर्तमान स्थिति को समझते हैं। स्वयं में जाँच अर्थात् स्व-अन्वेषण के माध्यम से हम वास्तविकताओं को और भी अधिक स्पष्टता से देख सकते हैं और यदि बार-बार इसका परीक्षण और अभ्यास (observation and practice) किया जाये तो यह हमारे समझ का भाग बन जाता है। एक बार यदि हमने कुछ समझ लिया तो हम आश्वस्त हो जाते हैं, स्वयं में आश्वस्ति और विश्वास होता है कि ऐसा जीने से परस्पर सुख और समृद्धि होगी ही। जीने में, जब हम इस समझ को सत्यापित (validate) कर पाते हैं तो यह समझ और पुष्ट होती है। इस प्रकार की स्थिति को "स्वयं में व्यवस्था" (self-organised) कहते हैं।
आइये देखें कि विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों में जहाँ हम युवाओं के साथ कार्य कर रहे हैं, आजकल वहाँ पर किस प्रकार से जानकारियां दी जा रही हैं:

1. **स्व-अन्वेषण (self-exploration):** सूचनायें, प्रस्तावों के रूप में हो, जहाँ इनको स्वयं में जाँचने का, प्रश्न पूछने का, चर्चा करने का अवसर हो, और स्वयं अपना निष्कर्ष निकलने की स्वतंत्रता हो या
2. **मान्यताओं को स्वीकारना (Accepting assumptions):** सूचनायें, 'क्या करना है', 'क्या नहीं करना है' के रूप में हों, जैसा वक्तव्य दे दिया गया है, वैसा ही हमको करना हो।

स्वयं में विचार कर के बताएं कि आपको ऊपर दी हुई विधियों में से कौन सी विधि सहज स्वीकार्य है।

आगे का मार्ग
(The Way Ahead)

किसी भी बालक में समझ की प्रारंभिक प्रक्रिया अनुकरण (imitation) से आरम्भ होती है। वह भाषा सीखता है, बोलना तथा दूसरी चीजें भी सीखता है। इसके साथ ही जो भी कहा जाता है, उसका पालन करता है, तथा दी गयी आज्ञा के अनुसार कार्य करता है और इस रूप में 'वह आज्ञाकारी एवं अनुशासित होता है'। परंतु जैसे-जैसे वह बड़ा होता है चीजों को अपने अधिकार पर जाँच कर निर्णय लेना चाहता है, यही समय होता है, जब उसे सही प्रस्ताव और उसको जाँचने की सही प्रक्रिया दोनों की आवश्यकता होती है। साथ ही उसे स्वयं में जाँच अर्थात् स्व-अन्वेषण करने के लिये प्रोत्साहन की भी आवश्यकता होती है। जिससे कि वह मानव के होने (जैसा कि अध्याय एक में चर्चा की गई थी) के बारे में समग्र दृष्टि विकसित कर सके।

स्व-अन्वेषण के प्रमुख आशय
(Important Implications of Self-exploration)

स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के निम्नलिखित प्रमुख निहितार्थ सामने आते है जिससे तृप्ति-पूर्वक जीने में अनुकूलता होती है।

1. **यह प्रक्रिया स्वयं को जानने और उसके द्वारा, समग्र अस्तित्व को जानने की है (It is a Process of Knowing Oneself and through that, Knowing the Entire Existence)** जब आप स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से गुजरते हैं, तो स्वयं के बारे में जान पाते हैं; अपनी सहज-स्वीकृति को देख पाते हैं; यह भी देख पाते हैं कि 'हम क्या हैं' अर्थात् हम अपनी इच्छा, विचार एवं आशा को देख पाते हैं; यह भी देख पाते हैं कि हमारे अन्दर संगीत/ व्यवस्था है या अंतर्विरोध है। यह प्रक्रिया स्वयं को जानने की है।

2. **यह प्रक्रिया अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ संबंध को पहचानने और निर्वाह करने की है (It is a Process Recognising One Relationship With Every Unit in Existence and Fulfilling That Relationship)** स्व-अन्वेषण के द्वारा जब मैं 'स्वयं' को जान लेता हूँ, दूसरों को जान लेता हूँ और प्रकृति एवं समग्र अस्तित्व को भी जान लेता हूँ, तब मैं अस्तित्व की अन्य सभी इकाइयों के साथ संबंध को पहचान पाता हूँ और मैं यह भी देख पाता हूँ कि इस संबंध का निर्वाह कैसे होगा।

3. **यह प्रक्रिया मानवीय आचरण को जानने और उसके अनुसार जीने की है (It is a Process of knowing human conduct and Living Accordingly)** निश्चित मानवीय आचरण का तात्पर्य प्रकृति/ अस्तित्व की अन्य इकाइयों के साथ निश्चित संबंध का निर्वाह करना है। जब हम निश्चित मानवीय आचरण को जान पाते हैं, तो हम इसे अपने जीने में व्यक्त करते हैं। यह मानवीय आचरण, परस्पर-पूरक होता है।

4. **यह प्रक्रिया 'स्वयं' में व्यवस्था और समग्र अस्तित्व के साथ व्यवस्था में जीने की है (It is a Process of Being in the Harmony- Within and with the Entire Existence)** जब हम यह जान लेते हैं कि निश्चित मानवीय आचरण क्या है, तो हम उसी के अनुसार जीते है, स्वयं में तथा दूसरों के साथ। अंततोगत्वा, हम समग्र अस्तित्व के साथ व्यवस्था पूर्वक जीने के योग्य हो पाते हैं, यह आवश्यक भी है, और सभी को सहज स्वीकार्य भी।

5. **यह प्रक्रिया अपने स्वत्व को पहचान कर स्वतंत्रता और स्वराज्य पूर्वक जीने की है (It as a Process of Identifying your Innateness and Moving Towards Self-organisation and Self-expression)।** अब हम स्व-अन्वेषण के द्वारा इसे देख सकते हैं- कि हमारी सहज-स्वीकृति क्या है, हम वास्तव में क्या होना चाहते हैं, हमारा सत् क्या है, हमारा स्वत्व क्या है? जब हम यह जान लेते हैं कि हमें क्या सहज स्वीकार्य है, और उसके अनुसार जीते हैं, तो हम स्वयं में व्यवस्थित हो पाते हैं। जब हम स्वयं में व्यवस्थित हो पाते हैं, तो हमारा व्यवहार और कार्य दूसरे व्यक्तियों को भी सहज-स्वीकार होता है, तो हम दूसरों के साथ भी व्यवस्था पूर्वक जी पाते हैं। और जब हम इसका विस्तार प्रकृति/ अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ करते हैं तो हम समग्र अस्तित्व के साथ व्यवस्था में जीने के योग्य हो पाते हैं।

6. **यह प्रक्रिया 'स्व-अन्वेषण ' के द्वारा 'स्वयं' में विकास (एक मानव के रूप में विकसित होना) की है (It is a process of self-evolution (evolving as a human being) through self-exploration)।** जब हम स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से गुजरते हैं, तो हम यह जान पाते हैं कि हमें क्या सहज-स्वीकार्य है और हम यह भी जान पाते हैं कि हम क्या हैं? स्वयं में होने वाला यह संवाद, 'स्वयं' के विकास में सहायक है। वास्तव में हम इस प्रक्रिया से "जैसा हम हैं" को "जैसा होना हमें सहज स्वीकार्य है" के अनुरूप करना चाहते हैं। अर्थात् हम अपनी इच्छा, विचार और आशा को अपनी सहज-स्वीकृति के अनुसार करना चाहते हैं।

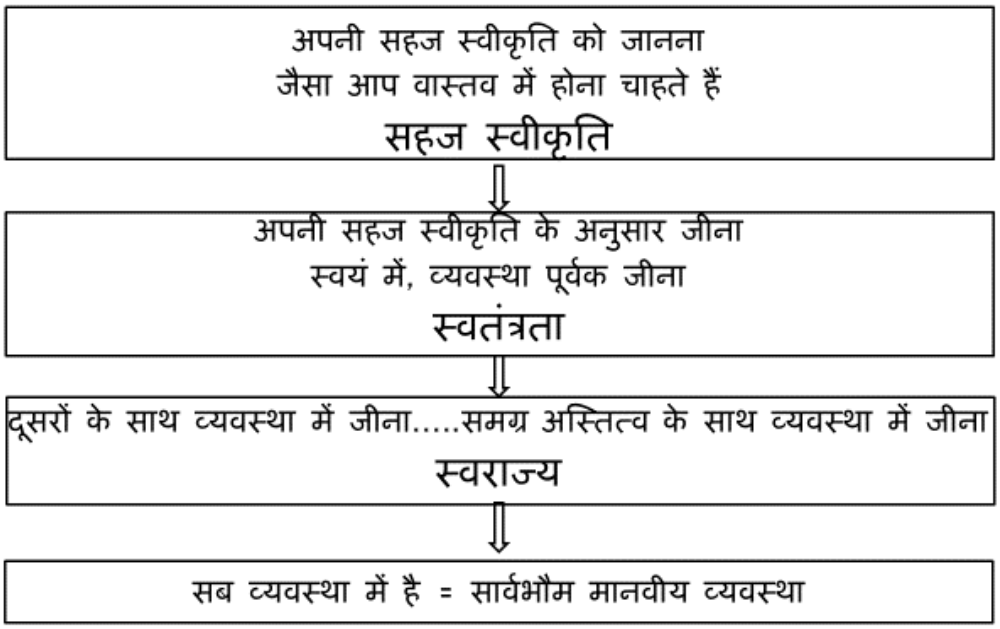

चित्र. 2-4. स्व–विकास और स्वराज्य

सही-समझ की पहचान के लिये निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देते हैं:

a. **इससे आश्वस्ति होती है (It is Assuring)**

b. **इससे तृप्ति होती है (It is Satisfying)**

c. **इसमें सार्वभौमिकता है (It is Universal):** निम्नलिखित सन्दर्भों से, हम यह देख सकते हैं कि सही-समझ निश्चित और अपरिवर्तनीय है:
   - **i. समय**: यह हर समय एक जैसी रहती है- भूत, भविष्य एवं वर्तमान।
   - **ii. स्थान**: यह सभी स्थानों अथवा जगहों पर एक जैसी रहती है।
   - **iii. वैयक्तिक**: यह सभी व्यक्तियों के लिये एक समान रहती है।

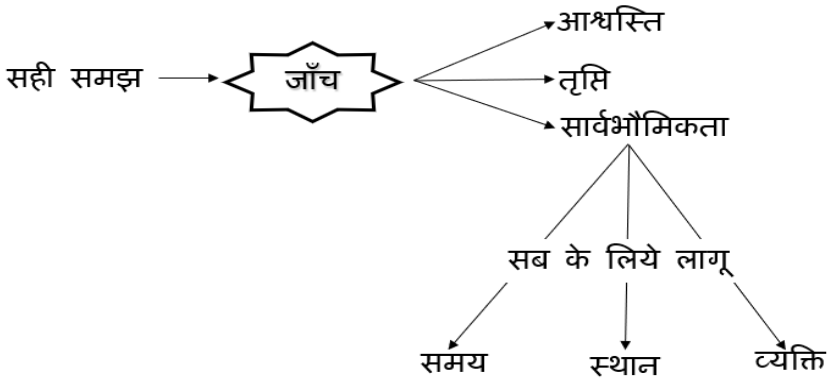

चित्र. 2-5. सही समझ की विशेषतायें

अंततः, स्व-अन्वेषण के द्वारा समग्र अस्तित्व के बारे में सही-समझ हो पाती है, अर्थात् "सह-अस्तित्व में अनुभव (realisation)", "व्यवस्था की समझ" और "संबंधों" में भागीदारी का चिंतन (contemplation)"। एक बार जब हममें सही-समझ हो पाती है, और हमारी कल्पनाशीलता पूर्णतः इससे निर्देशित होने लगती है, तो हम निरंतर सुख की स्थिति में पहुँच पाते हैं। यही सही-समझ प्रकृति की प्रत्येक इकाई के साथ हमारे व्यवहार, कार्य और भागीदारी में व्यवस्थापूर्ण ढंग से अभिव्यक्त होती है। अंततः यह, अखंड समाज (undivided society) और सार्वभौम मानवीय व्यवस्था (universal human order) के लिये आधार बनता है। इससे भी आगे जब यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचता है और फिर पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतर आगे बढ़ता रहता है, तो इसके द्वारा प्रत्येक मानव के लिये निरंतर सुख और समृद्धि पूर्वक जीने की मानवीय परम्परा (human tradition) का उद्भव होता है, मूल्य-शिक्षा का यही प्रतिष्ठित परिणाम है।

अध्याय-3
मानव की मूल चाहना एवं उसकी पूर्ति

Basic Human Aspirations and their Fulfilment

कक्षा 9 के अध्याय 3 में हमने मानव की मूल चाहना और उसकी पूर्ति को समझना आरंभ किया था। मानव की मूल चाहना सुख व समृद्धि की निरंतरता है ।सुख और समृद्धि की निरंतरता के लिए सही समझ, संबंध और सुविधा तीनों ही आवश्यक है। सही समझ, संबंध और सुविधा का वरीयता क्रम समझने का प्रयास भी किया था । एक बार पुनः सारांश में मानव की मूल चाहना को समझते हैं।

मूल चाहना का क्या अर्थ है?
(What is Meant by Basic Aspiration?)

हमारी मूल चाहना एक ऐसा मूल उद्देश्य (end goal) है, जिसे हम सभी कार्य के द्वारा पूरा करना चाहते हैं। यह एक ऐसा अंतिम लक्ष्य (बिंदु) है जहाँ पर हम पहुंचना चाहते हैं और उसी स्थिति में निरंतर बने रहना चाहते हैं ।यह अंतिम लक्ष्य या स्थिति (end state) ही हमारी मूल चाहना (Basic Aspiration) है।

मानव की मूल चाहना- सुख समृद्धि और उसकी निरंतरता
(Continuous Happiness and Prosperity as Basic Human Aspirations)

सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता मानव की मूल चाहना है। सुख और समृद्धि के हमारे लिये अलग-अलग अर्थ हो सकते हैं, लेकिन हम सुखी और समृद्ध होना चाहते ही हैं। ऐसा कोई भी क्षण नहीं होता, जब हम स्वयं को दुखी या दरिद्र करना चाहते हैं। अतः अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर यह देख सकते हैं कि हमारी मूल चाहना सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता है, यहाँ पहुँचने के लिये ही हम सब कुछ कर रहे हैं। यहाँ पहुँचने के बाद इसे बदलना नहीं चाहते हैं, बल्कि इसकी निरंतरता को बनाये रखना चाहते हैं।

मानव की मूल चाहना की पूर्ति के लिये आधारभूत आवश्यकतायें
(Basic Requirements for Fulfilment of Human Aspirations)

हम सरलता से यह देख पाते हैं कि सामान्य तौर पर हम जो भी कर रहे हैं, वह भौतिक सुविधाओं के संग्रह के लिये कर रहे हैं। हम सुख और समृद्धि की निरंतरता की आशा तो रखते हैं लेकिन प्रयास भौतिक वस्तुओं के संग्रह के लिये ही कर रहे हैं। यहाँ तक कि हम यह भी नहीं जान पाते कि हमारे पास पर्याप्त भौतिक सुविधा है या नहीं, और वास्तव में ये हमारी सुख और समृद्धि को सुनिश्चित करेगी भी या नहीं, लेकिन इसके बावजूद भी हम अधिक से अधिक सुविधा संग्रह करने में लगे रहते हैं।

सही-समझ, संबंध और सुविधा - यह तीनों ही मानव की तृप्ति के लिये आवश्यक हैं
भौतिक सुविधा, संबंध और सही-समझ तीनों अलग-अलग तरह की वास्तविकतायें हैं, जब इन्हें और विस्तार से समझते हैं तो हम देख सकते हैं कि:

- सही-समझ (स्वयं में) से तात्पर्य, अपने आप को समझना है, उन सभी (समग्र अस्तित्व) को समझना है, जिनके साथ मैं जीता हूँ, और उनके साथ अपनी भागीदारी को समझना है अर्थात् स्वयं, परिवार, समाज, प्रकृति/अस्तित्व को समझना है।
- संबंध अर्थात् आवश्यक भाव जो अन्य व्यक्तियों के लिये मुझ में हैं (परिवार में, समाज में)।
- सुविधाओं में सभी भौतिक वस्तुयें सम्मिलित हैं।

मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये इन तीनों की ही आवश्यकता होती है। किसी एक को दूसरे की जगह नहीं रख सकते हैं। अतः इन तीनों को अलग-अलग सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है (किसी एक का विकल्प कोई दूसरा नहीं हो सकता है)।

वरीयता- सही समझ, संबंध और सुविधा
(Priority- Right Understanding, Relationship and Physical Facility)

पिछली कक्षा में हमने जाना स्वयं में सही-समझ प्रथम वरीयता पर है, क्योंकि हम सही-समझ के साथ ही सम्बंध में ठीक से निर्वाह को सुनिश्चित कर सकते हैं; और हम यह भी पता कर सकते हैं कि कितनी भौतिक सुविधा की मूलतः आवश्यकता है। इसलिये सही-समझ को प्रथम वरीयता पर रखा गया है। परिवार में ज्यादातर समस्यायेंसम्बंध के ठीक-ठीक निर्वाह न हो पाने के कारण हैं, न कि सुविधाओं की कमी के कारण। यह दर्शाता है कि भौतिक सुविधा से संबंध अधिक महत्वपूर्ण है। यदि आप इस पूरे वरीयता क्रम को देखें, तो सही-समझ पहली वरीयता पर है, मानव के साथसम्बंध का निर्वाह दूसरी वरीयता पर और शेष-प्रकृति के साथ भौतिक सुविधा सुनिश्चित करना तीसरी वरीयता पर है।

अब, यदि हम बताये गये वरीयता क्रम के अनुसार सही-समझ, संबंध और सुविधा तीनों को सुनिश्चित कर लें तो देखते हैं कि यह परिणाम आयेगा (चित्र. 3-5. देखे)

- संबंधों में सही-समझ पर आधारित सही भाव के द्वारा, हम उभय सुख सुनिश्चित कर सकते हैं- स्वयं के लिये सुख, साथ ही साथ दूसरों के लिये भी सुख।
- सही-समझ के साथ, हम भौतिक सुविधाओं की आवश्यकता को पहचान सकते हैं। हम यह भी सीख सकते हैं कि कैसे आवर्तन शील (mutually enriching) विधि से उत्पादन करें। एक बार जब हम आवश्यकता से अधिक भौतिक सुविधाओं की उपलब्धता को सुनिश्चित कर लेते हैं तो हम समृद्धि का भाव महसूस करते हैं।

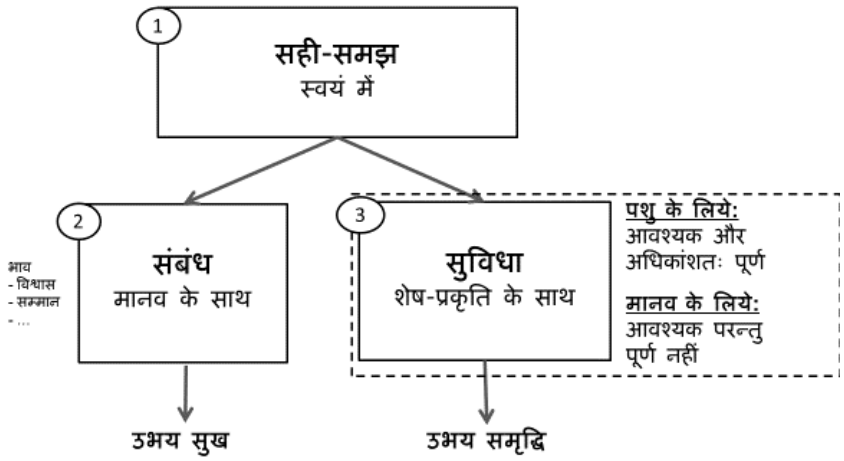

चित्र. 3-5. सही-समझ, संबंध और सुविधा के वरीयता क्रम में जीता हुआ मानव

सही समझ + संबंध → उभय सुख

सही समझ + सुविधा → उभय समृद्धि

इस तरह से, सही-समझ औरसम्बंध के ठीक-ठीक निर्वाह से हम उभय-सुख सुनिश्चित कर सकते हैं। सही-समझ और शेष-प्रकृति के साथ कार्य से प्राप्त पर्याप्त भौतिक सुविधाओं के द्वारा हम उभय-समृद्धि सुनिश्चित कर सकते हैं एवं प्रकृति के साथ परस्पर-संवर्धन (mutual enrichment) भी सुनिश्चित कर सकते हैं। इसलिये सही-समझ, संबंध और सुविधा के द्वारा, हम स्वयं में सुख और समृद्धि सुनिश्चित कर सकते हैं तथा दूसरों के सुख और समृद्धि के लिये भी कार्य कर सकते हैं।

मानव चेतना का विकास
(Development of Human Consciousness)

मानव की मूल-चाहना अर्थात् सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता की पूर्ति सही-समझ, संबंध और भौतिक सुविधाओं को सही वरीयता क्रम में रखते हुये की जा सकती है।

कोई भी मानव जो इन तीनों के लिये कार्य कर रहा है, वह तृप्त हो सकता है। अत: जो व्यक्ति इन तीनों के साथ जी रहा है वह **मानव चेतना (Human Consciousnesses)** में जी रहा है।

दूसरी तरफ, यदि कोई व्यक्ति केवल भौतिक सुविधा संग्रह के लिये जी रहा है तो वह **जीव चेतना (Animal Consciousness)** में जी रहा है। क्योंकि केवल सुविधा पशुओं के लिये तो पर्याप्त हो सकती है, लेकिन मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये पर्याप्त नहीं है।

समग्र विकास
(Holistic Development)

विकास के संबंध में गहरी मान्यता यह है कि सफलता और समृद्धि को ज्यादातर भौतिक सुविधाओं के संग्रह के साथ ही जोड़कर देखा जाता है अर्थात् अधिक से अधिक भौतिक सुविधा संग्रह कर पाने को ही सफलता माना जाता है। यही मान्यता समाज में है, शिक्षा व्यवस्था में है, यहाँ तक कि परिवारों में भी है। यह भी अवश्य देखें कि कहीं आप भी सफलता और समृद्धि के नाम पर इस सुविधा के दायरे को ही बड़ा, और बड़ा करने की कोशिश में तो नहीं लगे हैं?

सही-समझ के साथ, हम स्पष्ट रूप से समग्र विकास की परिकल्पना चेतना के संक्रमण के रूप में कर सकते हैं- पशु-चेतना से मानव-चेतना के संक्रमण के रूप में। निःसंदेह तीनों पर कार्य करना होगा- सही-समझ,सम्बंध का निर्वाह और भौतिक सुविधा; वह भी इसी वरीयता क्रम में।

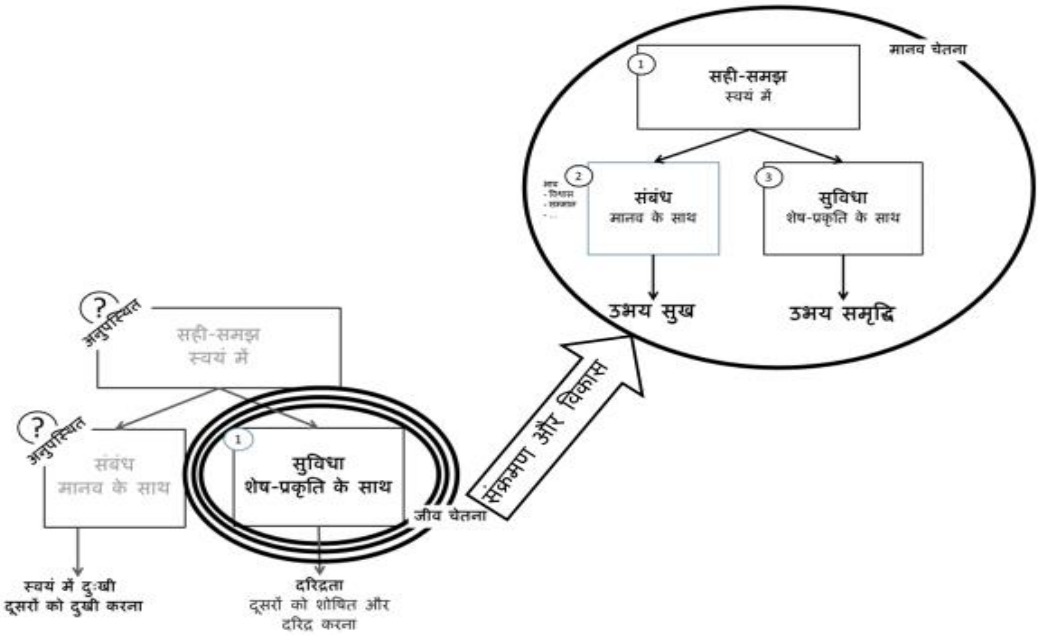

चित्र. 3-6. संक्रमण, विकास-क्रम, विकास

शिक्षा-संस्कार की भूमिका
(**Role of Education-Sanskar**)

शिक्षा की भूमिका, निश्चित मानवीय आचरण से जीने की योग्यता का विकास अर्थात् मानव-चेतना का विकास करना है। इसके लिये, शिक्षा-संस्कार से निम्न को सुनिश्चित करना होगा:

1. प्रत्येक बच्चे में सही-समझ
2. दूसरे मानव के साथ संबंध पूर्वक जीने की योग्यता तथा
3. भौतिक सुविधाओं की आवश्यकता की पहचान करने की योग्यता, जितनी आवश्यकता है उससे अधिक उत्पादन करने के लिये आवर्तन शील विधि का अभ्यास एवं कौशल, जिससे समृद्धि का भाव सुनिश्चित हो सके।

शिक्षा, व्यक्ति निर्माण के माध्यम से समाज को वैचारिक नेतृत्व व दिशा देती है। मानवीय शिक्षा-संस्कार की दीर्घकालिक क्षमतायें (long-term potential) निम्न हैं:

1. सही-समझ हर बच्चे में- सही समझ में विकास की सहायता से मानव-चेतना से जीने की योग्यता में विकास होगा।

2. संबंध पूर्वक जीने की योग्यता- दूसरे व्यक्तियों के साथ संबंध में उभय-सुख या न्याय से जीने की योग्यता विकसित करना, इससे परिवार में व्यवस्था सुनिश्चित होगी; और यह व्यवस्था, बड़े परिवार तक भी फैलेगी; अंततः विश्व परिवार तक फैलेगी, जो अखण्ड समाज (undivided society) की ओर बढ़ता है।

3. भौतिक सुविधा की आवश्यकता की पहचान करने की योग्यता विकसित करना, आवर्तन शील विधि के द्वारा आवश्यकता से अधिक सुविधा के उत्पादन के लिये कौशल एवं अभ्यास को विकसित करना, भौतिक सुविधाओं के सदुपयोग एवं श्रम के माध्यम से उत्पादन करने की मानसिकता का विकास करना, जिससे समृद्धि का भाव सुनिश्चित होगा। इससे परिवार व्यवस्था सुनिश्चित होगी; और इसका फैलाव परिवार के सदस्यों की भागीदारी के द्वारा बड़े समाज

व्यवस्था तक होगा; अंततः यह सार्वभौम मानवीय व्यवस्था (universal human order) तक होगा।

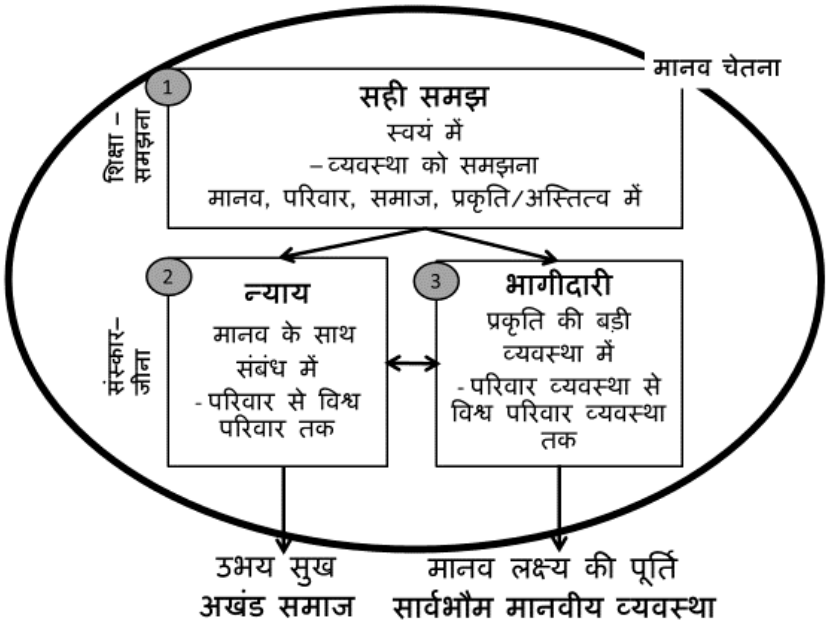

चित्र. 3-7. मानव चेतना में जीना

मानव का मानव-चेतना में जीने के परिणामों को चित्र. 3-7. में दर्शाया गया है।

इसअध्याय में हमने देखा कि मानव की मूल चाहना (aspiration) सुख और समृद्धि की निरंतरता है। हमने यह भी देखा कि इस चाहना की पूर्ति के लिये तीन मूलभूत आवश्यकतायें हैं- सही-समझ, संबंध और सुविधा, इसी वरीयता क्रम में।

अध्याय-4

सुख और समृद्धि को समझना- इनकी निरंतरता एवं पूर्ति के लिये कार्यक्रम

(Understanding Happiness and Prosperity - Their Continuity and Programme for Fulfilment)

पुनरावृत्ति
(Recap)

हमने कक्षा 9 में सुख और समृद्धि के अर्थ को समझने का प्रयास किया और निरंतर सुख के लिए कार्यक्रम को भी समझा। इस अध्याय में हम सुख और समृद्धि के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे। इन मूल चाहनाओं के लिये सामान्यतः हमारी क्या दृष्टि है? इसे भी समझेंगे। स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के माध्यम से हम इनका मूल्यांकन करते हुये, इनके बारे में सही-समझ सुनिश्चित करने का प्रयास करेंगे। हम यह भी अध्ययन करेंगे कि इन मूल चाहनाओं की पूर्ति कैसे हो सकती है, इसकी विधि और प्रक्रिया क्या होगी?

सुख के अर्थ को समझना
(Exploring The Meaning of Happiness)

पिछली कक्षा में हमने सुख के अर्थ को विस्तृत रूप से समझने का प्रयास किया था ।

"जिस स्थिति/परिस्थिति में मैं हूँ, यदि उसमें संगीत/व्यवस्था है, तो उस स्थिति/परिस्थिति में जीना मुझे सहज स्वीकार्य होता है"। इस संगीत/व्यवस्था की स्थिति में होना ही सुख है।

सुख= व्यवस्था में जीना

"ऐसी स्थिति/परिस्थिति जिसमें मैं जीता हूँ यदि उसमें अंतर्विरोध/अव्यवस्था है, तो उस स्थिति/परिस्थिति में जीना मुझे सहज स्वीकार्य नहीं होता है"। इस अंतर्विरोध/अव्यवस्था की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना ही दुख है।

दुःख = अव्यवस्था की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना

निरंतर सुख के लिये कार्यक्रम
(Programme for Continuity of Happiness)

सुख की निरंतरता के लिये हमें अपने जीने के पूरे फैलाव को देखना होगा। स्वयं में जीने के साथ-साथ हम कई स्तरों पर जीते हैं, जैसे दूसरे व्यक्तियों के साथ परिवार में, समाज में, और प्रकृति के साथ भी

हमारा जुड़ाव है ही। भले ही हम इन सब पर ध्यान दें या न दें, हमारा जीना निम्नलिखित चार स्तरों पर होता ही है:

1. मानव के रूप में
2. परिवार के एक सदस्य के रूप में
3. समाज के एक सदस्य के रूप में
4. प्रकृति/अस्तित्व की एक इकाई के रूप में

हमने यह अध्ययन किया है कि संगीत/व्यवस्था में जीना ही सुख है। और हमने यह भी देखा है कि हमारे जीने का फैलाव चारों स्तरों पर है। अब हम यह भी देख सकते हैं कि सुख की निरंतरता के लिये सभी स्तरों पर व्यवस्था को सुनिश्चित करना आवश्यक है।

निरंतर सुख को सुनिश्चित करने के लिये कार्यक्रम यह है:

व्यवस्था को समझना

और

व्यवस्था में जीना

अपने जीने के सभी स्तरों पर

1. **व्यक्तिगत (मानव) के स्तर पर**
2. **परिवार के स्तर पर**
3. **समाज के स्तर पर**
4. **प्रकृति/अस्तित्व के स्तर पर**

व्यवस्था को समझने का विस्तार, मानव में व्यवस्था को समझने से लेकर, परिवार में व्यवस्था, समाज में व्यवस्था और प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था को समझने तक फैली हुई है। जीने का फैलाव भी इन्हीं चारों स्तरों पर ही है अर्थात् व्यक्तिगत स्तर पर व्यवस्था में जीने से लेकर, परिवार में व्यवस्था, समाज में व्यवस्था और प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था में जीने तक। यदि हमारे जीने में कहीं भी, किसी भी समय अंतर्विरोध या अव्यवस्था हो तो, यह हमें दुख की तरफ ही ले जायेगा, यह हमारी सुख की निरंतरता को बाधित कर देगा।

समृद्धि के अर्थ को समझना

(**Exploring The Meaning of Prosperity**)

आवश्यकता से अधिक भौतिक सुविधाओं के उत्पादन या उपलब्धता का भाव समृद्धि है।

समृद्धि के लिये दो मूलभूत आवश्यकतायें हैं:

1. भौतिक-सुविधा की आवश्यकता की सही-सही पहचान।
2. आवश्यकता से अधिक सुविधा की उपलब्धता या उत्पादन को सुनिश्चित करना।

जब आप में समृद्धि का भाव होता है तो आप स्वाभाविक रूप से दूसरों के पोषण और संवर्धन के बारे में ही सोचते हैं , दूसरी तरफ यदि आप में दरिद्रता का भाव हो तो आप दूसरों के शोषण और उन्हें दरिद्र बनाने के बारे में ही सोचते हैं।

कक्षा 9 में सुख और समृद्धि की परिभाषा को जानने के बाद आइए सुख की प्रचलित मान्यताओं को विस्तार में जांच लेते हैं।

सुख की प्रचलित मान्यताओं पर एक दृष्टि
(**A Look at the Prevailing Notions of Happiness**)

सुख के बारे में अब तक के किये गये विचार विमर्शों के प्रकाश में, आइये अब सुख की कुछ प्रचलित मान्यताओं पर भी एक दृष्टि डालते हैं। इनमें से एक मान्यता यह है कि सुख की निरंतरता भौतिक सुविधा के उपभोग एवं इंद्रिय भोग से ही संभव है। लोग अपनी मनपसंद संवेदनाओं का स्वाद चखने के लिये किसी भी स्तर तक चले जाते हैं। संवेदनायें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, या गंध किसी भी प्रकार की हो सकती हैं।

सुख की निरंतरता, भौतिक सुविधाओं से ?
(**Continuity of Happiness from Physical Facility?)**

क्या सुख की निरंतरता को भौतिक सुविधा से मिलने वाली अनुकूल संवेदना के भोग से सुनिश्चित किया जाना संभव है? आइये इस मान्यता का अध्ययन करते हैं और देखते हैं कि क्या हो रहा है-

भौतिक वस्तु → 'शरीर' के साथ संपर्क → संवेदना('शरीर' के द्वारा) → 'स्वयं' के द्वारा आस्वादन

- यदि स्वाद अनुकूल है → सुख(सामयिक)
- यदि स्वाद अनुकूल नहीं है → दुख(सामयिक)

जब आप अपनी मनपसंद मिठाई खाते हैं तो सुखी होते हैं, या ऐसा कहें कि सुख जैसा प्रतीत होता है। उस समय वास्तव में जो हो रहा है वह है कि भौतिक वस्तु यानी मिठाई आप की जिह्वा के संपर्क में आ रही है जिससे आप उस मिठाई का स्वाद ले पा रहे हैं। स्वाद एक संवेदना है, और यदि यह संवेदना अनुकूल है तो आप सुखी महसूस करते हैं और यदि यह संवेदना अनुकूल नहीं है, तो दुखी। आप इसे अपनी किसी भी संवेदना, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, या गंध के लिये स्वयं जाँच सकते हैं। लेकिन अब देखना यह है कि क्या इससे सुख की निरंतरता सुनिश्चित हो सकती है?

आइये मिठाई का ही एक और उदाहरण लेते हैं, माना कि एक विशेष प्रकार की चॉकलेट आपकी मनपसंद मिठाई है और आप इसका स्वाद अत्यधिक पसंद करते हैं। मान लीजिये कि आपको यह बहुत अधिक मात्रा में मिल जाती है और आप इसे खाना शुरु करते हैं। आप पहली चॉकलेट को अपने मुंह में रखते हैं। चूंकि आपको इसका स्वाद पसंद है इसलिये आप सुखी महसूस करते हैं, लेकिन यदि आपको इसका स्वाद पसंद नहीं आता तो आप दुःखी महसूस करते। माना कि आपको इसका स्वाद पसंद आता है और आप इसे खाना जारी रखते हैं। अब आप उसमें से 10 चॉकलेट खा चुकें है और आपका पेट पूरा भर गया है तो क्या अब भी वह चॉकलेट आपको रुचिकर लगेगी? एक-एक चॉकलेट खाते हुये यदि आप सावधानीपूर्वक स्वयं में देखेंगे तो यह स्पष्ट होगा कि:

- जब आपने मिठाई खाना शुरू किया था तो यह (आपके लिये) रुचिकर और (शरीर के लिये) आवश्यक लग रही थी। आप इसे स्वयं के लिये सुख तथा शरीर के लिये पोषण के अर्थ में खा रहे थे।
- जब आपका पेट भर गया तो यह आपके लिये रुचिकर तो रही लेकिन अब आपके शरीर के लिये अनावश्यक हो गयी। अब आप इसे केवल स्वाद से मिलने वाले सुख के लिये खा

रहे हैं, लेकिन आप यह नहीं ध्यान दे पाते कि ये अब यह आपके शरीर के पोषण के लिये ठीक नहीं है।

- यदि गले तक भर जाने के बाद भी आपने इसे खाना जारी रखा तो आप की स्थिति क्या होगी? यह मिठाई आपके लिये सुख का स्रोत भी नहीं रहेगी और आपके शरीर का पोषण करने के लिये भी अनावश्यक हो जायेगी। यद्यपि यह आपकी वही मनपसंद मिठाई है, परंतु अब ना तो यह रुचिकर है और न आपके शरीर के लिये आवश्यक। और आप इसे खाना बंद कर देंगे।
- यदि कोई आपको और खाने के लिये विवश करता है, तो और मिठाई खाना आपके लिये असहनीय हो जाता है। अब यही मिठाई आपके लिये दुख के एक स्रोत के रूप में परिवर्तित हो जाती है और आपको पेट में दर्द की समस्या अलग से झेलनी पड़ती है।

निष्कर्ष यह है कि आप संवेदना से जो थोड़ा बहुत सुख पाते भी हैं, वह सुख क्षणिक होता है अर्थात् बहुत कम समय के लिये होता है, और यह निम्नलिखित स्थितियों से होकर गुजरता है:

रुचिकर-आवश्यक → रुचिकर-अनावश्यक → अरुचिकर-अनावश्यक → असहनीय

(Tasty-Necessary → Tasty-Unnecessary → Tasteless-Unnecessary → Intolerable)

पहली बात तो यह है कि सुख की निरंतरता चॉकलेट खाने से संभव नहीं, न ही किसी अन्य प्रकार के भोजन से या किसी भी दूसरी प्रकार की अन्य संवेदनाओं से जैसे कि कोई शब्द, स्पर्श, रूप, रस या गंध। दूसरा यह कि आप कुछ समय पश्चात इस स्वाद से ऊबने लगते हैं। यदि किसी व्यक्ति को स्वाद से ही सुख लेना है तो उसे एक प्रकार की संवेदना को दूसरे प्रकार की संवेदना से बदलते रहना होता है। तीसरा जो थोड़ा बहुत क्षणिक सुख आपको स्वाद से मिल भी रहा है, वह किसी बाह्य-वस्तु पर निर्भर है। जैसे की इस उदाहरण में चॉकलेट से। पर इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि आपको यह चॉकलेट मिलती ही रहेगी, जिससे आप सुखी होने का प्रयास कर रहे हैं। यह उस हर संवेदना पर लागू होता है, जिससे आप सुखी होने की कोशिश कर रहे हैं।

[सावधानी: यहाँ पर यह नहीं कह रहे हैं कि भौतिक सुविधा आवश्यक नहीं है। भौतिक सुविधा, 'शरीर' के लिये आवश्यक है, परंतु यह सुख की निरंतरता को सुनिश्चित नहीं कर सकती है। इसी प्रकार से 'शरीर' के लिये संवेदना की भी निश्चित भूमिका है, पर यह निरंतर सुख को सुनिश्चित नहीं कर सकती है]

सुख की निरंतरता दूसरों के द्वारा मिलने वाले अनुकूल भाव से ?
(Continuity of Happiness from Favourable Feeling from Others?)

दूसरी प्रचलित मान्यता यह है कि हम दूसरों से मिलने वाले अनुकूल भाव के माध्यम से सुखी हो सकते हैं। जब दूसरे लोग हम पर ध्यान देते हैं, हमारी प्रशंसा करते हैं, हमारा सम्मान करते हैं, हमारी देखभाल करते हैं या हमारे अनुकूल भाव को व्यक्त करते हैं तो हम सुखी महसूस करते हैं।

इसके लिये हम अनेक प्रकार से प्रयास करते रहते हैं जैसे नये-नये फैशन के कपड़े पहनते हैं, उधार मांगी हुई मोटरसाइकिल पर कॉलेज जाते हैं या इसी तरह के अन्य क्रियाकलाप करते हैं। इन सबसे हम वह दिखाने की कोशिश करते हैं, जो वास्तव में हम नहीं होते हैं। दूसरे व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित करने के लिये या उनकी नजर में अच्छा बना रहने के लिये हम उनकी हाँ में हाँ मिलाते रहते हैं। ये सब वे उदाहरण हैं, जो दूसरों से भाव पाने के लिये हमारे प्रयासों में दिखते हैं। इस प्रकार से सुख प्राप्त करने की हमारे अंदर गहरी मान्यता बन गयी है।

क्या दूसरों से मिलने वाले अनुकूल भाव से होने वाले सुख की निरंतरता संभव हो सकती है? आइये इस बात का अध्ययन करते हैं:

दूसरा मानव → भाव की अभिव्यक्ति → प्राप्त होने वाले भाव का 'स्वयं' के द्वारा मूल्यांकन

- यदि भाव अनुकूल है → सुख(सामयिक)
- यदि भाव अनुकूल नहीं है → दुख(सामयिक)

जब कोई व्यक्ति सही भाव व्यक्त कर रहा होता है, जैसे कि सम्मान का, तो यह आपको सहज स्वीकार्य होता है। आप इस तरह का भाव पाना पसंद करते हैं जिससे, आप सुखी होते हैं। निःसंदेह यदि दूसरा व्यक्ति आपको ऐसा भाव व्यक्त कर रहा है जो आपको सहज स्वीकार्य नहीं है, अर्थात् अपमान का भाव तो आप दुःखी महसूस करते हैं।

एक उदाहरण लीजिये, जैसे आप किसी उत्सव में जाने के लिये एक विशेष प्रकार का परिधान पहनते हैं। इससे आपको यह आशा रहती है कि उत्सव में लोग आप पर ध्यान देंगे, लोग आपकी तारीफ करेंगे और आप सुखी होंगे। जैसे ही आप उत्सव स्थल के प्रवेश द्वार पर पहुंचते हैं, मेजबान आपके परिधान की प्रशंसा करते हैं और आप सुखी महसूस करते हैं। अगले ही पल एक दूसरा व्यक्ति इशारा करते हुये कहता है कि इस प्रकार के परिधान का प्रचलन तो अब पुराना हो चुका है, मैंने ऐसा परिधान अपने पड़ोस के ही एक स्टोर में बहुत पहले देखा था, ऐसा सुनते ही आपका सुख, दुख में बदल जाता है।

निष्कर्ष यह है कि यदि आप किसी प्रकार का सुख, दूसरे व्यक्तियों के ध्यान या भाव के द्वारा प्राप्त करते हैं, तो यह सुख क्षणिक होता है अर्थात् बहुत कम समय के लिये रहता है। इसलिये पहले तो यह कि दूसरे से मिलने वाले भाव से निरंतर सुख संभव नहीं है, और दूसरा कि जो भी क्षणिक सुख आपने दूसरे की तारीफ से प्राप्त किया है, उसकी निर्भरता भी आप पर नहीं है अर्थात् आप भाव का निर्धारण नहीं कर रहे हैं, बल्कि यह दूसरे व्यक्ति के द्वारा निर्धारित किया जा रहा है। इसमें कोई भी निश्चितता नहीं है, कि दोबारा मिलते समय वह आप पर फिर से ध्यान देगा या नहीं।

सुख,आवेश के जैसा नहीं है
(**Happiness is Not The Same as Excitement**)

अब यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि हमें जो भाव प्राप्त हुआ है, वह सुख है या कुछ और:

- क्या जो हमें अनुकूल संवेदना से मिला, वह सुख है?
- क्या जो हमें दूसरों के अनुकूल भाव से मिला, वह सुख है?

यदि ध्यान से देखें तो इन दोनों ही स्थितियों में हमें एक प्रकार का क्षणिक सुख ही मिला है, जिसे हम आवेश कह सकते हैं। आवेश एवं सुख (स्वयं के भीतर संगीत की स्थिति) के बीच एक भ्रम की स्थिति है। वास्तविकता यह है कि आवेश बहुत अल्पकालिक होती है, यह सतत नहीं रहती, जबकि सुख अर्थात् स्वयं के अंदर संगीत की स्थिति निरंतर एवं सतत हो सकती है। माना कि आपको एक विशेष प्रकार की मिठाई की अपेक्षा है, और यदि आपकी यह अपेक्षा पूर्ण हो जाती है, तो आप को क्षणिक सुख होता है, लेकिन आप तो क्षणिक सुख के स्थान पर निरंतर सुख ढूंढ रहे हैं। अतः आप और मिठाई खा कर निरंतर सुख के लिये प्रयास करते हैं, लेकिन शीघ्र ही आप यह देख पाते हैं कि मिठाई खाने से प्राप्त हुआ सुख थोड़े समय के लिये ही है, इसकी निरंतरता नहीं हो सकती। यदि आप ध्यान दें, तो इसे देख ही सकते हैं। क्या आप यह देख पाते हैं कि आप में निरंतर सुख की चाहना बहुत गहरी है और यह मिठाई से तो बिल्कुल भी पूरी नहीं हो सकती है।

यह क्षणिक सुख, जो हम रुचिकर संवेदना के द्वारा प्राप्त कर रहे हैं या दूसरे व्यक्तियों से मिलने वाले भावों से प्राप्त कर रहे हैं, वास्तव में यह सुख (संगीत) नहीं है बल्कि आवेश है, जिसकी स्थिति क्षणिक होती है। यदि आप इसे और अधिक गहरी दृष्टि से देखें तो आप यह महसूस करेंगे कि यह आवेश वास्तव में आपके अंदर अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न कर रही है। इसलिये जब भी आप आवेश की स्थिति में होते हैं, तो आप असहज महसूस करते हैं। यहाँ तक कि इसका प्रभाव आपके शरीर पर भी दिखना प्रारम्भ हो जाता है जैसे कि आपकी सांसें तेज चलने लगती हैं या आपका रक्तचाप बढ़ जाता है इत्यादि।

सुख के अन्य प्रचलित अभिप्राय
(Other Prevailing Notions About Happiness)

सुख के बारे में अनेक प्रश्न, मान्यतायें, और भ्रम हैं। आइये इनमें से कुछ को देखते हैं, और उनका अध्ययन करते हैं:

"यदि मैं निरंतर सुखी हो जाऊँगा तो मैं सुख से ऊब जाऊँगा"

निःसंदेह कोई व्यक्ति अनुकूल संवेदना से उत्पन्न आवेश को ही यदि सुख मान लेता है, तो इससे अवश्य ही ऊब जायेगा। लेकिन यदि उसने यह समझ लिया कि संगीत में होना ही सुख है तो वह मूल्यांकन कर पायेगा कि यह मान्यता सही नहीं है।

"सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं" या "सुख और दुख साथ-साथ ही चलते हैं, इन्हें अलग नहीं किया जा सकता" या "सुख और दुख नदी के दो किनारे हैं और हमें इन दोनों किनारों के बीच में भटकते हुये ही यात्रा करनी होती है"।

इनकी जाँच करने के लिये यह ठीक होगा कि हम अपनी सहज स्वीकृति का संदर्भ लें और स्वयं से यह पूछें कि "क्या मैं सुखी या दुखी होते रहना चाहता हूँ"? और इससे आगे यह भी पूछें कि- "क्या मैं सुख की निरंतरता चाहता हूँ"? आप स्वयं से जो उत्तर पायेंगे, वही आपके लिये प्रामाणिक होगा।

"आप मुझे सुख जैसी अस्पष्ट बातों से परेशान न करें, मुझे अपने जीवन में और भी महत्वपूर्ण चीजें देखनी है और उनके साथ जीना है"।

पुनः स्वयं से पूछना ही ठीक होगा कि जो भी प्रयास आप कर रहे हैं, और उससे आप जो आशा रखते हैं वह सुख है या कुछ और है। निःसंदेह सुख की स्पष्टता आवश्यक है।

"यदि हम सुखी हो जायेंगे तो प्रगति रुक जायेगी"।

स्वयं से पूछें कि जो भी प्रगति हो रही है, उसका क्या उद्देश्य है- क्या यह मानव के निरंतर सुख के लिये है या नहीं?

"मेरा दुखी होना जरूरी है, जिससे मैं सुख को पहचान सकूं"।

मानव में जन्म से ही सुख को पहचानने की प्रवृत्ति होती है। अतः सुख को पहचानने के लिये दुःख से तुलना करना आवश्यक नहीं है, जैसे कि स्वास्थ्य के महत्त्व को समझने के लिये, बीमार

होना जरूरी नहीं है। हालांकि यह मान्यता बहुत मजबूत है अतः इसकी जाँच करना जारी रखिये।

"जब हम दुखी होते हैं तभी हम दूसरों के बारे में सोचते हैं, अतः यह आवश्यक है कि हम दुखी हो, जिससे हम एक दूसरे की मदद करने की सोच सकें"।

जब आप दुखी होते हैं तो देखिये कि आप किसे और किन कारणों से याद करते हैं, उन्हें जो आपको दुख से बाहर निकलने में सहायता करते है या किसी और को? इसी तरह से जब आप सुखी होते हैं तो क्या आप अपना सुख दूसरे व्यक्तियों के साथ बाँटना चाहते हैं? यदि हाँ तो उस समय आप किन्हें याद करते हैं? अतः अब आप यह देख सकते है कि जब हम अपने अंदर संगीत(सुख) में होते हैं तो दूसरे व्यक्तियों के साथ और अधिक सार्थक ढंग से जुड़ पाते हैं।

"हां मैं सुखी तो होना चाहता हूँ। लेकिन मेरी ऐसी इच्छा करने मात्र से यह पूरा तो हो नहीं जायेगा तो फिर ऐसी इच्छा के बारे में बात ही क्यों करना"?

मात्र सुख की इच्छा करना ही पर्याप्त नहीं है। इसके लिये हमें प्रयास भी करना होता है। आप स्वयं से ही पूछिये कि आप किस लक्ष्य के लिये प्रयास करना चाहते हैं- सुख के लिये या दुख के लिये?

"मेरा सुख तो दूसरों पर ही आश्रित (निर्भर) है, मैं इसके बारे में कर ही क्या सकता हूँ"?

यदि हम यह देख पाते हैं कि संगीत(harmony) ही सुख है, तो यह स्पष्ट होता है कि यह आपकी संपत्ति है, जो दूसरों पर निर्भर नहीं करती। यदि हम अपने सुख के लिये दूसरों से अनुकूल भाव पाने की आशा रखते हैं तो इसकी निश्चितता की गारंटी नहीं हो सकती और ना ही यह सुख निरंतर हो सकता है।

"हमें अपने लिये सुख की आवश्यकता नहीं है, लेकिन हम दूसरों को सुखी करना चाहते हैं (चाहें इसके लिये हमको दुखी ही क्यों न होना पड़े)" ।

जाँच कर देखें कि जो आपके पास है ही नहीं, वह आप दूसरों को कैसे दे सकते हैं? यदि आप में संगीत (सुख) नहीं है, तो यह आप दूसरों को कैसे दे पायेंगे?

"सुख तो बहुत छोटी बात है, हमारे लक्ष्य तो बहुत बड़े-बड़े हैं जैसे कि शांति, संतोष, आनंद इत्यादि"।

यह सत्य है कि हमारे लक्ष्य बहुत बड़े हैं, लेकिन आप स्वयं से ही पूछिये कि स्वयं में संगीत/ व्यवस्था हुये बिना शांति, संतोष या आनंद हो सकता है क्या?

सुख के लिये किये गये विभिन्न प्रयासों का मूल्यांकन (**Evaluations on Various Efforts for the Happiness**)

बाहर से सुख प्राप्त करने की विधियों से यह आवश्यक नहीं कि स्वयं में संगीत(सुख) सुनिश्चित हो सके। ऐसे प्रयासों में स्वयं में होने वाला अंतर्विरोध बना रहता है, जिससे झुंझलाहट बढ़ती रहती है। और जब दुख लगातार बना रहता है तो हम इससे बचने के लिये विभिन्न प्रकार के प्रयत्न करते रहते हैं। जिनमें से कुछ, नीचे चित्र. 4-2. में दिये गये हैं।

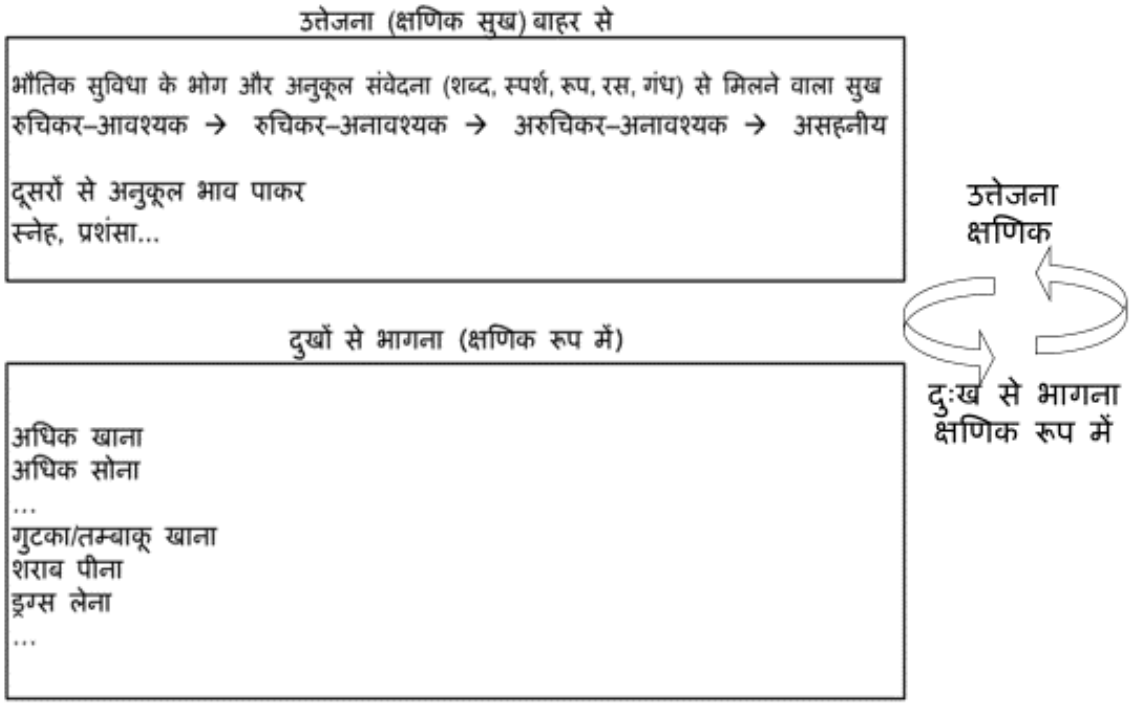

चित्र. 4-2. 'उत्तेजना' और 'दुखों से भागना'

आप यह जाँच सकते हैं कि दुख से बचने के इन तरीकों से काम चल पाता है या नहीं? उदाहरण के लिये धूम्रपान करने वाले व्यक्तियों को ही लें, जब वे तनाव में होते हैं तो उनके सिगरेट पीने की संख्या बढ़ जाती है या कम होती है? सामान्यतः वे जितना अधिक तनाव होता है, उतनी ही अधिक सिगरेट पीते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। क्या यह दुख का स्थायी समाधान है? हम आसानी से यह देख सकते हैं कि सिगरेट पीना या दुःख से भागने का कोई दूसरा तरीका जैसे कि शराब पीना, ड्रग्स लेना, अधिक खाना या जो ऊपर सूची में दिया हुआ है, कोई भी स्थाई समाधान नहीं है।

दूसरा यह देखा गया है कि जिन लोगों में सुख के प्रति इस प्रकार की मान्यता होती है, वे आवेश और दुख से भागने के बीच दोलन करते रहते हैं। यदि हम परीक्षण करके देखें कि व्यक्ति जो प्रतिकूल परिस्थितियों में काम करते हैं, बहुत अधिक दबाव में होते हैं। ये व्यक्ति इन प्रकार की परिस्थितियों से होने वाले दुःख से बचने के लिये कोई न कोई तरीका, जो चित्र. 4-2. में दिये गये हैं, अपना लेते हैं और इसे "रिलैक्स करना" या "चिलिंग आउट" जैसा नाम दे देते हैं। इतना ही नहीं यह एक लत का रूप भी ले लेता है। हम कई नामी-गिरामी लोगों को भी इस प्रकार के चक्कर में फंसा हुआ देख सकते हैं।

निःसंदेह इस प्रकार बाहर से सुख प्राप्त करने के लिये इन तरीकों का इस्तेमाल करना या दुखों से भागने का प्रयास करना व्यर्थ है। इतना ही नहीं कि ये तरीके काम नहीं करते, बल्कि इन तरीकों का शरीर के ऊपर अवांछित दुष्प्रभाव भी पड़ता है। उदाहरण के लिये इसी तरह के भ्रम के कारण मोटापा, अवसाद और आत्महत्या की दर आदि वैश्विक स्तर पर बढ़ रही हैं, विशेषकर उच्च आय वर्ग के लोगों में। इस प्रकार के दुष्प्रभावों को प्रत्येक स्तर पर देखा जा सकता है- मानव का शोषण एवं प्रकृति का शोषण, जैसा कि चित्र. 4-3. में दिखाया गया है।

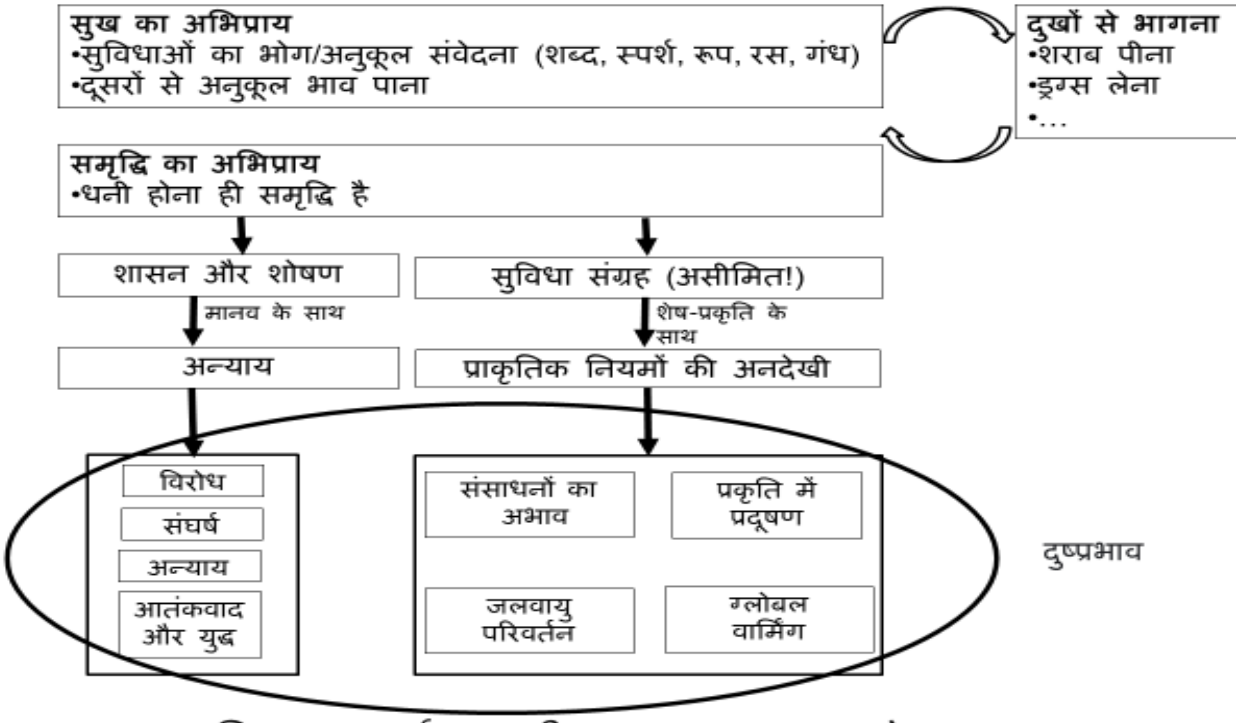

चित्र. 4-3. वर्तमान परिदृश्य का सूक्ष्म अवलोकन

ऊपर बताई गई समस्यायें, सुख के बारे में हमारे मानने और इसकी पूर्ति के लिये बनाये गये कार्यक्रम से संबंधित हैं।

अब तक आप यह भली-भांति समझ चुके हैं, कि तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये सुख और समृद्धि की स्पष्टता बहुत आवश्यक है। उपरोक्त चर्चा के बाद यह आपके लिये लाभदायक होगा कि आप थोड़ी देर ठहरें और जो भी चर्चा की गई है उसे और उससे जुड़ी हुई अपनी वर्तमान मान्यताओं एवं इस मुद्दे से संबंधित अपने साथ घटी घटनाओं के बारे में जाँच कर देखें।

सुख के लिये कार्यक्रम

(The Program for Happiness)

हमने कक्षा 9 में देखा है कि स्वयं में संगीत की स्थिति ही सुख है। और हमारे जीने का फैलाव चारों स्तरों पर है- मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/ अस्तित्व। सुख के लिये अब कार्यक्रम यह हैं कि हम इन चारों स्तरों पर व्यवस्था को समझें और उसके अनुसार सभी चारों स्तरों पर व्यवस्था में जीने को सुनिश्चित करने का प्रयास करें। इसे चित्र. 4-4. और 4-5. में दिखाया गया है।

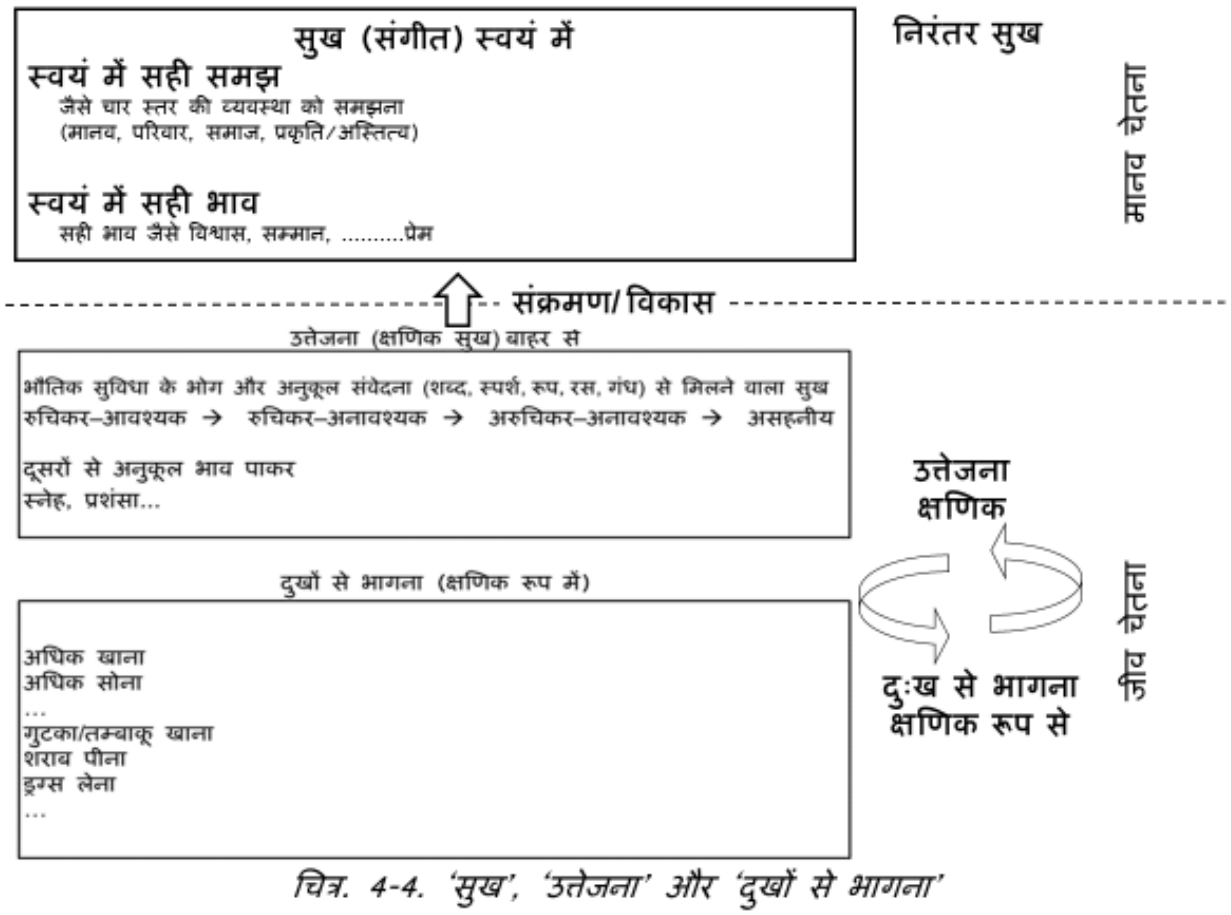

चित्र. 4-4. 'सुख', 'उत्तेजना' और 'दुखों से भागना'

व्यवस्था को समझना ही स्वयं में सही-समझ का होना है। व्यवस्था में जीने के दो भाग हैं, पहला मानव के साथ व्यवस्था में जीना, जिससे उभय-सुख होता है और दूसरा शेष-प्रकृति के साथ व्यवस्था में जीना, जिससे उभय-समृद्धि होती है। भौतिक सुविधा शेष-प्रकृति से ही आती है और जब हम परस्पर-संवर्धन की प्रक्रिया के द्वारा पर्याप्त भौतिक सुविधा को सुनिश्चित कर पाते हैं, तो उभय-समृद्धि होती है।

अब हम इसे सूक्ष्मता से इस प्रकार भी कह सकते हैं कि मानव की मूल चाहना की पूर्ति के लिये कार्यक्रम इस प्रकार है:

व्यवस्था को समझना
और
व्यवस्था में जीना

1. **स्वयं में**
2. **परिवार में**
3. **समाज में**
4. **प्रकृति/अस्तित्व में**

कार्यक्रम का सहज निष्कर्ष
(Natural Outcome of The Program)

हमने सुख और समृद्धि को अपनी मूल चाहना के रूप में पहचाना है और इसको पूरा करने के लिये **सहज** रूप से निम्नलिखित प्रयास करेंगे:-

1. व्यवस्था को समझना
2. व्यवस्था में जीना

हम यह देख पाते हैं कि व्यवस्था में भागीदारी ही सुख है:

- स्वयं में हमारी भागीदारी होगी- मानव के रूप में व्यवस्था में होना।
- परिवार में हमारी भागीदारी होगी- परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवस्था को सुनिश्चित करना।
- समाज में हमारी भागीदारी होगी- समाज में व्यवस्था के लिये प्रयास करना।
- प्रकृति/ अस्तित्व में हमारी भागीदारी होगी- प्रकृति/ अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ व्यवस्था को बनाये रखना।

मुख्य बिंदु
(Salient Points)

- हम व्यक्ति के रूप में, परिवार के एक सदस्य के रूप में, समाज के एक सदस्य के रूप में और प्रकृति/अस्तित्व की एक इकाई के रूप में जीते हैं। यह हमारे जीने का सम्पूर्ण फैलाव है।
- अधिक सुविधा का उपलब्ध होना या उत्पादन होने का भाव ही समृद्धि है।
- समृद्धि के लिये निम्न दोनों आवश्यक हैं-
  - ❖ भौतिक वस्तुओं की आवश्यकता की पहचान उनकी सही मात्रा के साथ और
  - ❖ आवश्यकता से अधिक भौतिक सुविधा की उपलब्धता/उत्पादन को सुनिश्चित करना।

  समृद्ध व्यक्ति सदुपयोग और दूसरे व्यक्तियों के पोषण की सोचता है, जबकि दरिद्र व्यक्ति संग्रह और दूसरे व्यक्तियों के शोषण की ही सोचता है।
- सुख और समृद्धि की प्रचलित मान्यताओं को संक्षेप में निम्न प्रकार से लिख सकते हैं:
  - ❖ सुख को आवेश की तरह मानते हैं- शरीर के द्वारा मिलने वाले अनुकूल संवेदना से और दूसरों के द्वारा मिलने वाले अनुकूल भाव से।
  - ❖ समृद्धि को भौतिक सुविधाओं का संग्रह मानते हैं।
  - ❖ जब इनकी पूर्ति नहीं हो पाती, और दुःख बना ही रहता है, तो लोग इस दुख से भागने का प्रयास शराब, ड्रग्स इत्यादि का सहारा लेकर करते हैं।
- इस प्रकार की मान्यताओं ने मानव और शेष-प्रकृति के शोषण को ही बढ़ावा दिया है। इसके प्रभाव को हम स्पष्ट रूप से मानव में संघर्ष एवं युद्ध के रूप में तथा शेष-प्रकृति में प्राकृतिक संसाधनों के अभाव एवं प्रदूषण के रूप में देख सकते हैं।

अपनी समझ को जाँचे
(Test your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न
(Questions for Self- evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिए गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. धन-संग्रह एवं समृद्धि के बीच क्या अंतर है? कुछ उदाहरणों के साथ इन दोनों को समझाइये, बेहतर हो यदि ये उदाहरण आपके जीने से संबंधित हों।
2. आवेश और सुख दोनों एक ही हैं या अलग-अलग? कुछ उदाहरणों की सहायता से दोनों को स्पष्ट करें, बेहतर हो यदि ये उदाहरण आपके जीने से संबंधित हों।
3. सुख और समृद्धि के बारे में समाज की प्रचलित मान्यताओं की विवेचना भी कीजिये। इस प्रकार की मान्यताओं के क्या परिणाम होते हैं यह भी स्पष्ट कीजिये?

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास
(Practice Exercises for Self- exploration)

(दी गई विषय-वस्तु को अपने जीवन से जोड़ने के लिये, कम से कम वैचारिक स्तर पर, इन अभ्यासों को व्यक्तिगत या सामूहिक रूप में अपने मित्रों या परिवार के सदस्यों के साथ अवश्य करें।)

1. अपनी इच्छाओं की उस सूची को लें, जिसे आपने पिछले अध्यायों में बनाया था, इसका पुनरावलोकन कर लें। यदि इनमें से कोई इच्छा पूर्ण हो गई है, तो इसका क्या परिणाम हुआ है- स्वयं में संगीत(सुख), समृद्धि या कुछ और (नीचे, तालिका देखिये)। यदि परिणाम कुछ और है तो, इसे ठीक-ठीक पहचानने का प्रयत्न करें कि यह वस्तुतः क्या है? यह आवेश हो सकती है या दुख से क्षणिक राहत।

इच्छा	**जब इस इच्छा की पूर्ति हो जायेगी तो मुझे अपेक्षा है कि ये परिणाम आयेंगे**		
	सुख(संगीत), व्यवस्था	**समृद्धि**	**अन्य**
अच्छा स्वास्थ्य			मैं अच्छा दिखूंगा
बहुत से मित्र			मुझे मित्रों के साथ रहना पसंद है
स्वादिष्ट भोजन			मुझे इसका स्वाद पसंद है
बहुत सा धन		यह समृद्धि की तरफ ले जायेगा	पर मुझे यह नहीं पता कि कितना धन
अपनी सहज स्वीकृति की समझ	इससे सुख (संगीत) बढ़ेगा		
यह सूची एक उदाहरण की तरह है, कृपया आप अपनी सूची स्वयं बनायें			

इस अभ्यास से आपने जो निष्कर्ष निकाले हैं, उन्हें स्पष्ट कीजिये।

2. एक दिन पूरे समय स्वयं पर ध्यान दीजिये और देखिये।

   a. ऐसे दो उदाहरण ढूंढिये, जिनमें यह देख पाये हों कि आप- व्यक्ति के रूप में, परिवार के एक सदस्य के रूप में, समाज के एक सदस्य के रूप में, और प्रकृति की इकाई के रूप में जी रहे हैं। इन चारों स्तरों पर आप क्या ले रहे हैं और क्या दें रहे हैं, दिये गये उदाहरणों में यह भी स्पष्ट कीजिये। क्या इनके अलावा कोई और स्तर भी है, जिस पर आप का जीना हो रहा है? इस अध्ययन से आप क्या निष्कर्ष निकल पा रहे हैं?

   b. ऐसी तीन घटनायें लिखिये, जिनमें आप दुखी हुये हों, और ऐसी तीन जिनमें आप सुखी हुये हों? क्या सुख वाली घटना किसी भी स्तर पर संगीत/व्यवस्था से जुड़ी हुई है? क्या दुख वाली घटना किसी भी स्तर पर अंतर्विरोध/ अव्यवस्था से जुड़ी हुई है? इस अंतर्विरोध/ अव्यवस्था की स्थिति में जाने का कारण क्या था (भले ही कुछ क्षणों के लिये) इसे भी लिखिये? और इस अध्ययन से आपने क्या निष्कर्ष निकाला स्पष्ट करें?

   इस अभ्यास को समूह में भी कीजिये और अपने परीक्षणों को एक दूसरे के साथ साझा कीजिये।

3. ऊपर प्रश्न-1 में आपकी इच्छाओं के लिये किये गये विश्लेषण में यह देखें कि आप कौन सी इच्छा को या इच्छा के कौन से हिस्से को निरंतर बनाये रखना चाहते हैं (आप हर क्षण जिसकी निरंतरता चाहते हैं) उदाहरण के लिये आप अपने बहुत से अच्छे मित्रों के साथ मित्रता को निरंतर बनाये रखना चाहते हैं? यदि आप वास्तव में इसे देखें तो, हर क्षण आप उनके साथ मित्रता के भाव की स्वीकृति को बनाये रखना चाहते हैं न कि उनको चौबीसों घंटे भौतिक रूप से अपने आस-पास रखना। अतः बहुत से अच्छे मित्र होने की यह इच्छा अब दो भागों में बंट जाती है:

वास्तविक इच्छा	**नई इच्छा– वास्तविक इच्छा कई उप श्रेणियों में विभक्त हो गई है**
बहुत से अच्छे मित्र	
	मित्रों में मेरी स्वीकृति का भाव– (निरंतर)
	मेरा मित्रों के साथ भौतिक रूप से रहना– (निरंतर नहीं)

इच्छा	**निरंतर**	**सामयिक**
अच्छा स्वास्थ्य	सदैव	
मेरे मित्रों में मेरी स्वीकार्यता	सदैव	
मेरा मित्रों के साथ भौतिक रूप से रहना		जब मैं चाहूँ
स्वादिष्ट भोजन		जब मैं चाहूँ
बहुत सा धन		जब मैं चाहूँ
मेरी सहज स्वीकृति की समझ	निरंतर	

यह सूची संकेत मात्र है (आप अपनी सूची स्वयं बनाइये)		

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। निःसंदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें।

संगीत की स्थिति में होना ही सुख है। अंतर्विरोध/ अव्यवस्था में जीने के लिये बाध्य होना ही दुख है।

1. मेरी स्थिति- आवेश या सुख के लिये प्रयास करने की है?
2. समाज की स्थिति- आवेश और दुःख से भागने के लिये या सुख के लिये प्रयास करने की है?
3. अंततोगत्वा, मैं तो सुखी होना चाहता हूँ, चाहें मेरा व्यवसाय कुछ भी हो।

अनुभाग-4 आपके प्रश्न
(Your Questions)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-5

मानव को स्वयं और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में समझना

(Understanding Human Being as Co-existence of the Self and the Body)

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

☞ **मानव में व्यवस्था**	**अध्याय** 5-7
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9
प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

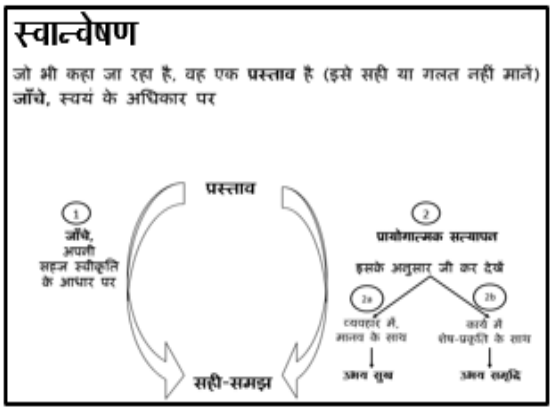

पुनरावृत्ति
Recap

पिछले अध्यायों में हमने मानव की मूल चाहना- सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता के बारे में चर्चा की और यह पाया कि व्यवस्था में जीना सुख है, और निरंतर सुख के लिये सभी स्तरों अर्थात् मानव, परिवार, समाज एवं प्रकृति/अस्तित्व पर व्यवस्था में जीना इसका कार्यक्रम है। व्यवस्था में जीने के लिये या निरंतर सुख के लिये इन सभी स्तरों पर व्यवस्था की समझ आवश्यक है।

कक्षा 9 में हमने जाना मानव, चैतन्य (consciousness) इकाई अर्थात् 'स्वयं(मैं)' और जड़ इकाई अर्थात् 'शरीर' का सह-अस्तित्व है। ये दोनों एक दूसरे के साथ सह-अस्तित्व में हैं।

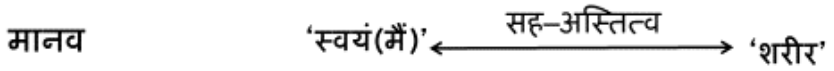

चित्र. 5-1. मानव

स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकतायें
(The Needs of the Self and the Body)

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
आवश्यकता	सुख (जैसे सम्मान...)	भौतिक-सुविधा (जैसे भोजन...)
काल में	निरंतर	सामयिक
मात्रा में	गुणात्मक (भाव है)	मात्रात्मक (सीमित मात्रा में)

चित्र. 5-2. मानव की आवश्यकतायें

'स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकतायें अलग-अलग प्रकार की हैं। किसी एक के पूरा होने से दूसरे की पूर्ति नहीं हो सकती। 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता सुख है, जो गुणात्मक एवं निरंतर है। शरीर की आवश्यकता भौतिक-सुविधा है, जो मात्रात्मक एवं सामयिक (temporary) है।

स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति
(Fulfilment of the Needs of the Self and the Body)

'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता की पूर्ति सही-समझ और सही-भाव से की जा सकती है, जबकि शरीर की आवश्यकता की पूर्ति भौतिक-रासायनिक वस्तुओं से की जा सकती है।

चैतन्य (स्वयं) की आवश्यकता की पूर्ति चैतन्य क्रियाओं से और जड़ (शरीर) की आवश्यकता की पूर्ति जड़ वस्तुओं से करते हैं। चैतन्य की आवश्यकता की पूर्ति जड़ वस्तुओं से और जड़ की आवश्यकता की पूर्ति चैतन्य क्रियाओं से नहीं कर सकते।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
आवश्यकता	सुख (जैसे सम्मान....)	भौतिक-सुविधा (जैसे भोजन....)
पूर्ति	सही-समझ और सही-भाव	भौतिक-रासायनिक वस्तु

चित्र. 5-3. मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति

स्वयं(मैं)' और शरीर की क्रियायें
(The Activities of the Self and the Body)

'स्वयं(मैं)' की क्रियायें जैसे इच्छा, विचार, आशा इत्यादि 'काल में' निरंतर हैं, जबकि शरीर की क्रियायें जैसे खाना, टहलना इत्यादि 'काल में' सामयिक हैं।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
क्रियायें	इच्छा, विचार, आशा...	खाना, टहलना...
काल में	निरंतर	सामयिक

चित्र. 5-5. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' की क्रियायें

'स्वयं(मैं)' और शरीर की अनुक्रिया
(The Response of the Self and the Body)

शरीर की अनुक्रिया (response) निश्चित है, यह पहचानने और निर्वाह-करने के रूप में है। 'स्वयं(मैं)' की अनुक्रिया जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह-करने के रूप में है। वास्तविकता जैसी है उसे वैसा देख पाना ही जानना है। यदि 'स्वयं(मैं)' का निर्वाह सिर्फ मानने, पहचानने और निर्वाह-करने पर ही आधारित है, तो इसमें अनिश्चितता होगी। और यदि यह जानने, मानने, पहचानने एवं निर्वाह-करने पर आधारित है तो स्वयं की अनुक्रिया निश्चित और मानवीय होगी।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह अस्तित्व → 'शरीर'	
अनुक्रिया	जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह-करना	पहचानना, निर्वाह-करना

चित्र. 5-6. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' की अनुक्रिया

अनिश्चित निर्वाह और अनिश्चित आचरण ही समस्याओं का स्रोत है। जानने से निर्वाह में निश्चितता आती है, जिससे निश्चित मानवीय आचरण सुनिश्चित होता है। यही समाधान है। समस्या से समाधान की तरफ गति करने में मानवीय शिक्षा-संस्कार सहायक है।

अनिश्चित निर्वाह और अनिश्चित आचरण ही समस्याओं का स्रोत है। जानने से निर्वाह में निश्चितता आती है, जिससे निश्चित मानवीय आचरण सुनिश्चित होता है। यही समाधान है। समस्या से समाधान की तरफ संक्रमण करने में मानवीय शिक्षा-संस्कार सहायक है।

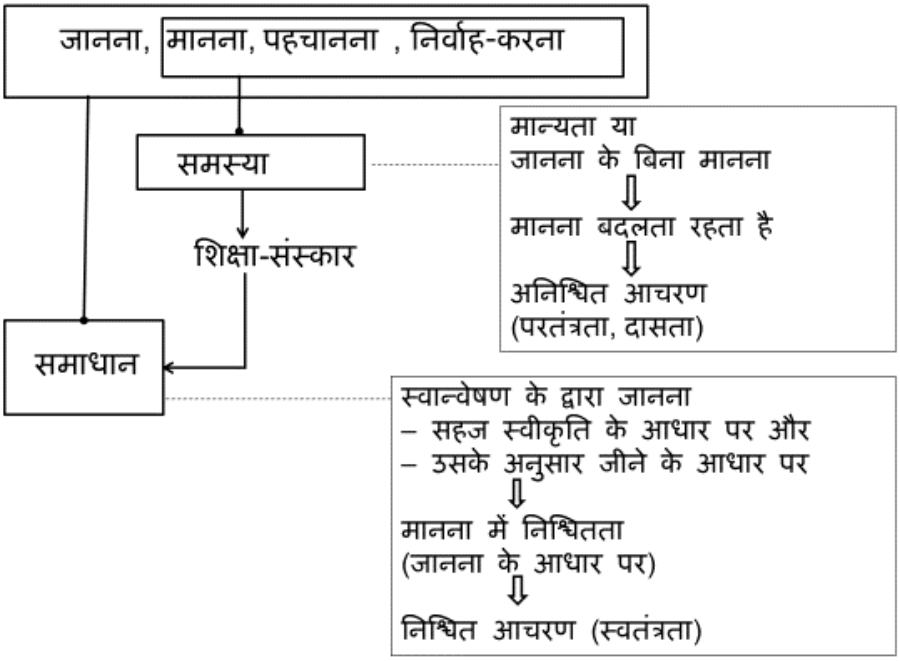

चित्र. 5-7. जानना के आधार पर अनुक्रिया या जानना के बिना मानना के आधार पर अनुक्रिया

स्वयं(मैं)', चैतन्य इकाई और शरीर, जड़ इकाई के रूप में
(**The Self as the Consciousness Entity, the Body as the Material Entity**)

मानव	'स्वयं (मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
आवश्यकता	सुख (जैसे सम्मान...)	भौतिक-सुविधा (जैसे भोजन...)
काल में	निरंतर	सामयिक
मात्रा में	गुणात्मक (भाव है)	मात्रात्मक (सीमित मात्रा में)
पूर्ति	सही समझ और सही भाव	भौतिक-रासायनिक वस्तु
क्रियायें	इच्छा, विचार, आशा...	खाना, टहलना...
काल में	निरंतर	सामयिक
अनुक्रिया	जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह-करना	पहचानना, निर्वाह-करना
	↓ चैतन्य	↓ जड़

चित्र. 5-8. मानव – 'स्वयं' (चैतन्य क्षेत्र) और 'शरीर' (जड़ क्षेत्र) का सह-अस्तित्व

कक्षा 9 में हमने "मैं" और शरीर दोनों की आवश्यकताएं और क्रियाओं को विस्तार में समझा।आइए मानव से संबंधित मुख्य भ्रम (misunderstanding) को विस्तार से जान लेते हैं।

मुख्य भ्रम - मानव को केवल शरीर मानना
(**Gross Misunderstanding – Assuming Human Being to be only the Body**)

एक मुख्य भ्रम मानव को सिर्फ शरीर मानना है।

जहाँ तक मानव की आवश्यकताओं का संबंध है, वह सुख और भौतिक-सुविधा दोनों के रूप में है। सुख की आवश्यकता निरंतर है क्योंकि वास्तव में यह 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता है। "मानव केवल शरीर है" इस मान्यता के साथ मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये किये जाने वाले सभी प्रयास सिर्फ भौतिक-सुविधाओं के माध्यम से ही होते हैं। वास्तव में हम 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकताओं की पूर्ति, शरीर के माध्यम से करने का प्रयत्न करते हैं। निःसंदेह हमें शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति भौतिक-सुविधाओं के माध्यम से करने का प्रयत्न तो करना ही है।

हम निरंतर सुख की आवश्यकता जैसे सम्मान आदि की पूर्ति भौतिक-सुविधाओं से जैसे कपड़े, भोजन आदि के द्वारा करने का प्रयत्न करते हैं। चूंकि सुख की आवश्यकता निरंतर है अतः हम ये सोचते हैं कि इसकी पूर्ति और अधिक कपड़ों, भोजन इत्यादि से हो पायेगी। परिणाम स्वरूप हमें कपड़ों, भोजन आदि की आवश्यकता या अन्य दूसरी भौतिक-सुविधाओं की आवश्यकता अनिश्चित और असीमित (मात्रा में) लगने लगती हैं। जिसे चित्र. 5-9. में दिखाया गया है।

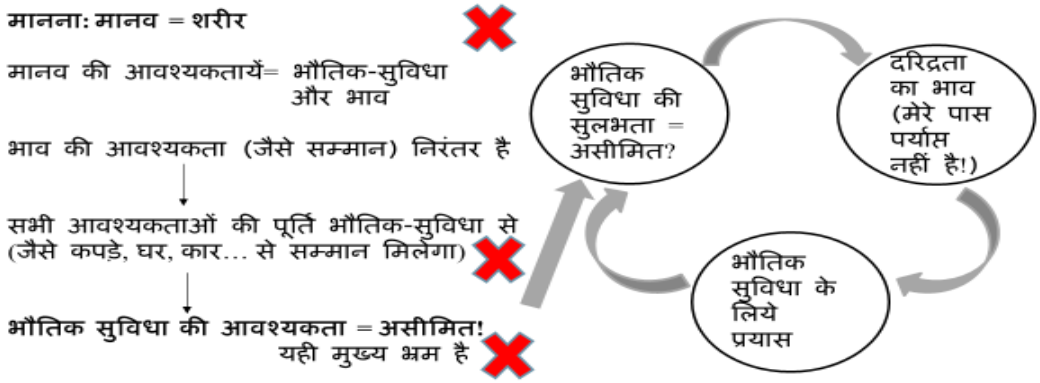

चित्र. 5-9. प्रमुख भ्रम

उदाहरण के लिये आप देख सकते हैं कि कुछ लोग वस्त्रों से सम्मान पाने का प्रयत्न करते हैं। वे नये-नये कपड़े खरीद कर पहनते हैं, जिससे कि लोगों का ध्यान उनकी तरफ आकर्षित हो सके। आपको क्या लगता है, ध्यानाकर्षण और सम्मान एक ही बात है या अलग-अलग? क्या आपके द्वारा पहने हुये वस्त्रों से आपका सम्मान संभव है? क्या इसके आधार पर मिलने वाले सम्मान की निरंतरता हो सकती है? यह तो निश्चित रूप से पूरा नहीं हो पायेगा!

इस मान्यता का परिणाम यह होता है कि बिना यह जाने ही कि 'कितना' पर्याप्त है और 'कितना' हमें निरंतर सुख की तरफ ले जायेगा, हम अधिक से अधिक भौतिक-सुविधाओं का संग्रह करने लगते हैं। हम कभी भी समृद्ध महसूस ही नहीं कर पाते; दरिद्र (deprived) ही महसूस करते रहते हैं इसलिये और अधिक संग्रह में लगे रहते हैं। इस प्रकार से हम एक चक्र में फंस जाते हैं। जाँच कर देखें कि कहीं आप भी ऐसे ही किसी चक्र में तो नहीं फंसे हैं?

मानव को केवल शरीर मानना ही मुख्य भ्रम है और इसी कारण सभी तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास केवल भौतिक-सुविधाओं से करते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इससे मानव के

जीने के विभिन्न स्तरों पर कई प्रकार के दुष्परिणाम आते हैं। जैसे एक तरफ तो अधिक से अधिक भौतिक-सुविधाओं के संग्रह के लिये प्राकृतिक स्रोतों का शोषण होता है, और दूसरी तरफ इस प्रक्रिया में मानव का भी शोषण होता है, क्योंकि उन्हें सीमित भौतिक आवश्यकताओं के लिये प्रतिस्पर्धा (competition) करने हेतु तैयार किया जाता है।

मानव के केंद्र में 'स्वयं(मैं)' है
(The Self is Central to the Human Being)

यदि हम मानव को देखें तो इसमें स्वयं (चैतन्य) है, शरीर (जड़) है और दोनों का सह-अस्तित्व है। आगे:

- यह 'स्वयं(मैं)' ही है जिसमें वास्तविकताओं को जानने की आवश्यकता और संभावना दोनों हैं- यह द्दष्टा (observer/seer) (जानने वाला) है।
- जब भी शरीर को सम्मिलित करने की आवश्यकता होती है तो 'स्वयं(मैं)', शरीर को निर्देश देता है और शरीर से संवेदनाओं को भी पढ़ता है (चित्र. 5-10. देखें)। अतः 'स्वयं(मैं)' ही निर्धारित करता है कि क्या करना है- यह कर्ता (निर्णय लेने वाला) है।
- 'स्वयं(मैं)' ही सुख या दुख भोगता है- यह भोक्ता (enjoyer) है।

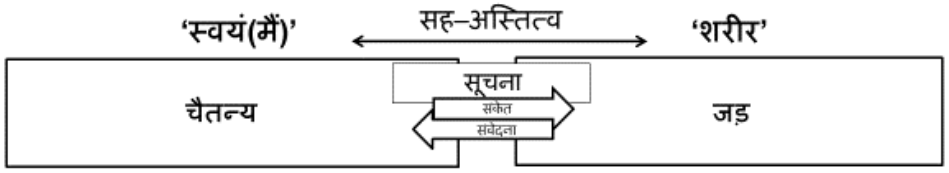

चित्र. 5-10. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान

इस तरह हम यह देख सकते हैं कि मानव के केंद्र में 'स्वयं(मैं)' है। शरीर का उपयोग तो एक यंत्र के रूप में होता है। अध्याय-6 में हम 'स्वयं(मैं)' के और अधिक विवरणों का अध्ययन करेंगे। हम 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकताओं और इनकी पूर्ति की विधियों का अध्ययन भी करेंगे।

मुख्य बिंदु
(Salient Points)

- मानव, चैतन्य इकाई अर्थात् 'स्वयं(मैं)' और जड़ इकाई अर्थात् 'शरीर' का सह-अस्तित्व है। 'स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकतायें अलग-अलग प्रकार की हैं।
- 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता की पूर्ति सही-समझ और सही-भाव से की जा सकती है, जबकि शरीर की आवश्यकता की पूर्ति भौतिक-रासायनिक वस्तुओं से की जा सकती है।
- मानव को केवल शरीर मानना ही मुख्य भ्रम है और इसी कारण सभी तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास केवल भौतिक-सुविधाओं से करते हैं।
- मानव में व्यवस्था का अर्थ, 'स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति को सुनिश्चित करना एवं 'स्वयं(मैं)' और शरीर के बीच व्यवस्था को सुनिश्चित करना है।

अपनी समझ को जाँचे
(Test your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न
(Questions for Self-evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. मानव के बारे में प्रमुख भ्रम क्या है? इसका क्या परिणाम होता है? समाज में हम जो समस्यायें देख रहे हैं; उस भ्रम के साथ कैसे संबंधित है? इसको उदाहरण के साथ स्पष्ट करें।

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास
(Practice Exercises for Self-exploration)

(विषय वस्तु के साथ जुड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही, इन अभ्यासों को व्यक्तिगत तौर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. जिन वस्त्रों का आप नियमित उपयोग करते हैं उनमें से कुछ जोड़ी कपड़ों के लिये यह पता करके देखिये कि आपने लगभग कितने मूल्य का भुगतान निम्न के लिये किया था:
    a. 'शरीर' की आवश्यकता की पूर्ति के लिये ('शरीर' के स्वास्थ्य के लिये)
    b. दूसरों के ध्यानाकर्षण, सम्मान आदि के लिये ('स्वयं(मैं)' की आवश्यकता के लिये)

आपके धन का कितने प्रतिशत स्वास्थ्य के लिये कपड़ों पर खर्च हुआ और कितने प्रतिशत ध्यानाकर्षण के लिये खर्च हुआ? इस अभ्यास से आपने क्या निष्कर्ष निकाला?

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

"मुझे अस्तित्व की वास्तविकताओं को जानना है, ताकि इनके साथ व्यवस्था में जी सकूं"

"मानव, 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' का सह-अस्तित्व है या सिर्फ 'शरीर' है?"

अनुभाग-4 आपके प्रश्न
(Your Questions)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-6
स्वयं में व्यवस्था- 'स्वयं(मैं)' को समझना

Harmony in the Self – Understanding Myself

पुनरावृत्ति
(Recap)

पिछली कक्षा में हमने स्वयं की व्यवस्था समझना आरंभ किया था । हमने जाना कि प्रत्येक मानव में इच्छा, विचार ,आशा की क्रियाएं निरंतरता में बनी है। इच्छा , विचार, आशा - इन क्रियाओं का संयुक्त रूप हमारी कल्पनाशीलता है । यही कल्पनाशीलता की अभिव्यक्ति हमारे व्यवहार और कार्य में दिखाई देती है । आइए इस कक्षा में स्वयं से जुड़ी क्रियाएं और कल्पनाशीलता के विभिन्न स्रोतों को पुनः सारांश में समझ लेते हैं।

'स्वयं(मैं)' की क्रियायें
(Activities of the self)

मानव के केंद्र में, 'स्वयं(मैं)' है। प्रत्येक निर्णय 'स्वयं(मैं)' के द्वारा ही लिया जाता है और यदि आवश्यक होता है तो 'शरीर' को एक यंत्र की तरह उपयोग करके उस निर्णय को परस्परता में अभिव्यक्त किया जाता है।

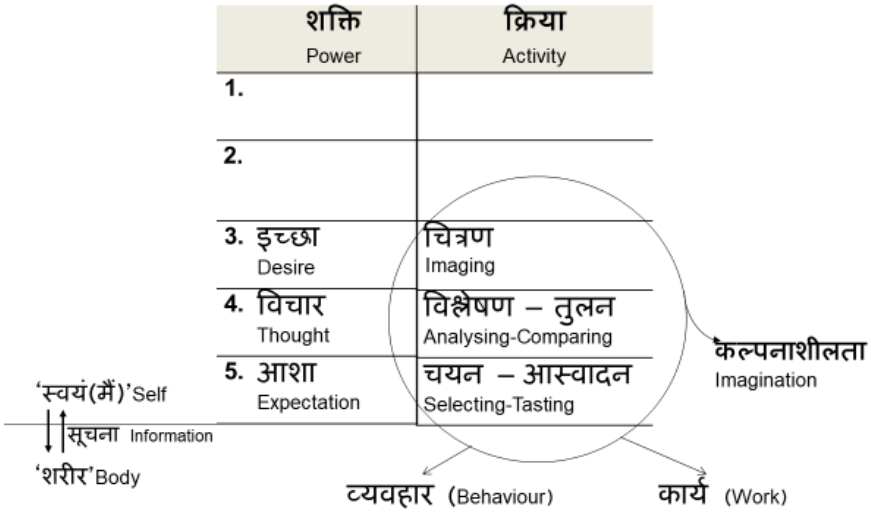

चित्र. 6-1. 'स्वयं(मैं)' की क्रियायें

'स्वयं(मैं)' की क्रियायें निरंतर हैं
(Activities of the self are continuous)

'स्वयं(मैं)' अपनी चित्रण, विश्लेषण-तुलन, चयन-आस्वादन में निरंतर क्रियाशील रहता है। 'स्वयं(मैं)' में इच्छा-शक्ति निरंतर बनी रहती है, इसीलिये चित्रण की क्रिया सदैव चलती रहती है। इसमें विचार-शक्ति निरंतर बनी रहती है, इसीलिये तुलन के आधार पर विश्लेषण की क्रिया सदैव चलती रहती है।

इसमें आशा-शक्ति निरंतर बनी रहती है, इसीलिये आस्वादन (tasting) के आधार पर चयन (selecting) की क्रिया सदैव चलती रहती है।

क्रियाओं का संयुक्त रूप - कल्पनाशीलता
(**Activities Together Constitute Imagination**)

ये सभी क्रियायें मिलकर कल्पनाशीलता कहलाती हैं। कल्पनाशीलता, 'स्वयं(मैं)' में निरंतर चलती ही रहती है।

कल्पनाशीलता की अभिव्यक्ति व्यवहार और कार्य में
(**Imagination gets Expressed in Behaviour and Work**)

सभी इच्छायें, सभी निर्णय, सभी चयन, कल्पनाशीलता में ही होते हैं। यह मानव के साथ व्यवहार के रूप में और शेष-प्रकृति के साथ कार्य के रूप में व्यक्त होते हैं, जिसमें 'शरीर' का यंत्र के रूप में उपयोग होता है। कल्पनाशीलता, व्यवहार और कार्य से जुड़ती है। इस दृष्टि से कल्पनाशीलता (संग्रहित संस्कार) 'स्वयं(मैं)' के केंद्र में है।

कल्पनाशीलता की स्थिति
(**State of Imagination**)

सभी इच्छायें, सभी निर्णय, सभी चयन, कल्पनाशीलता में ही होते हैं। यह मानव के साथ व्यवहार के रूप में और शेष-प्रकृति के साथ कार्य के रूप में व्यक्त होते हैं, जिसमें 'शरीर' का यंत्र के रूप में उपयोग होता है। कल्पनाशीलता, व्यवहार और कार्य से जुड़ती है। इस दृष्टि से कल्पनाशीलता (संग्रहित संस्कार) 'स्वयं(मैं)' के केंद्र में है।

सुख या दुख कल्पनाशीलता की विषय-वस्तु अर्थात् संस्कार पर निर्भर करता है। यदि यह हमारी सहज-स्वीकृति के अनुरूप हैं, तो 'स्वयं(मैं)' में संगीत होगा जो कि सुख की स्थिति है और यदि यह हमारी सहज स्वीकृति के अनुरूप नहीं है, तो 'स्वयं(मैं)' में अंतर्विरोध होगा जो कि दुख की स्थिति है।

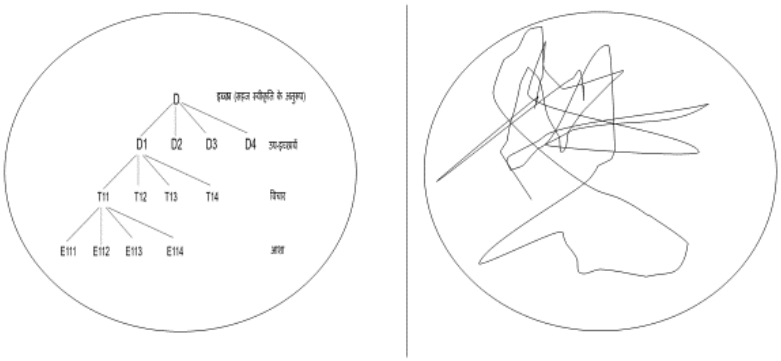

व्यवस्थित कल्पनाशीलता *अव्यवस्थित कल्पनाशीलता*

चित्र. 6-3. कल्पनाशीलता की स्थिति – व्यवस्था में अथवा अव्यवस्था में

कल्पनाशीलता के संभावित स्रोत- मान्यता, संवेदना और सहज-स्वीकृति
(Possible sources of Imagination - Preconditioning, Sensation and Natural Acceptance)

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाले तीन संभावित स्रोत हैं- मान्यतायें, संवेदनायें और सहज स्वीकृतियाँ। मान्यताओं का अर्थ परिवार और समाज में प्रचलित धारणायें, प्रतीक, रीति-रिवाज, दृष्टिकोण इत्यादि से हैं, जो कल्पनाशीलता को प्रभावित कर सकते हैं। संवेदनायें वो सूचनायें हैं जो

'शरीर' के पाँचों संवेदी अंगों के माध्यम से मिलती हैं अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के रूप में मिलती हैं। सहज-स्वीकृति के आधार पर स्व-सत्यापन से सही-समझ की तरफ बढ़ते हैं, जो कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाला तीसरा स्रोत है।

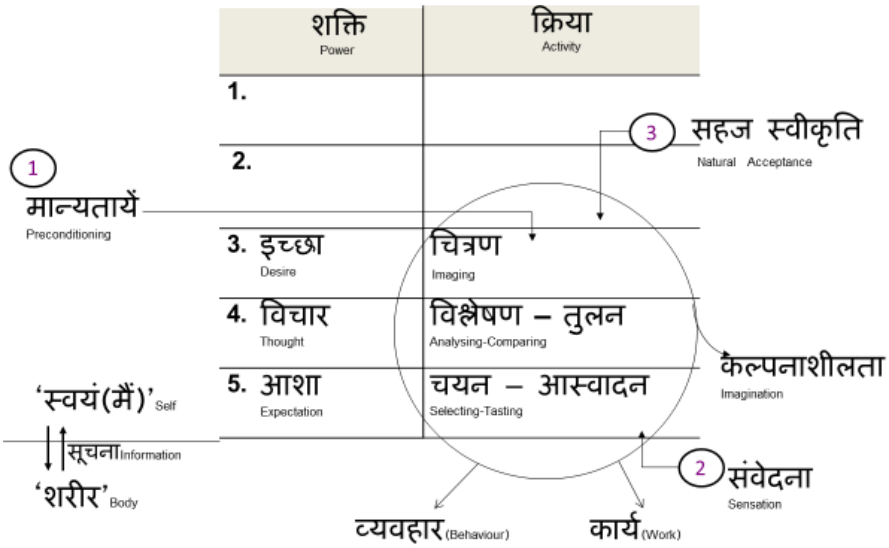

चित्र. 6-4. कल्पनाशीलता के तीन स्रोत

कल्पनाशीलता के प्रेरणा-स्रोत के रूप में मान्यतायें
(**Preconditioning as a Source of Motivation for Imagination**)

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाले तीन संभावित स्रोत हैं- मान्यतायें, संवेदनायें और सहज-स्वीकृतियाँ। मान्यताओं का अर्थ परिवार और समाज में प्रचलित धारणायें, प्रतीक, रीति-रिवाज, दृष्टिकोण इत्यादि से हैं, जो कल्पनाशीलता को प्रभावित कर सकते हैं।

कल्पनाशीलता के प्रेरणा-स्रोत के रूप में संवेदना
(Sensation as Another Source of Motivation for Imagination)

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाले तीन संभावित स्रोत हैं- मान्यतायें, संवेदनायें और सहज स्वीकृतियाँ। संवेदनायें वो सूचनायें हैं जो 'शरीर' के पाँचों संवेदी अंगों के माध्यम से मिलती हैं अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के रूप में मिलती हैं।

कल्पनाशीलता के सर्वाधिक प्रामाणिक प्रेरणा-स्रोत के रूप में सहज-स्वीकृति
(Natural Acceptance as the Most Authentic Source of Motivation for Imagination)

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाले तीन संभावित स्रोत हैं- मान्यतायें, संवेदनायें और सहज स्वीकृतियाँ। सहज स्वीकृति के आधार पर स्व-सत्यापन से सही-समझ की तरफ बढ़ते हैं, जो कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाला तीसरा स्रोत है।

तीनों स्रोतों से प्रेरित कल्पनाशीलता के परिणाम – स्वतंत्रता या परतंत्रता?

(Consequences of Imagination from the three Source- Self-organisation or Enslavement?

जब कल्पनाशीलता, मान्यता या संवेदना के द्वारा प्रेरित होती है तो यह किसी बाह्य स्रोत के अधीन रहती है, यही परतंत्रता है। जब कल्पनाशीलता, सहज-स्वीकृति के द्वारा निर्देशित होती है तो यही 'स्वयं(मैं)' में संगीत की स्थिति है, यही स्वतंत्रता है।

जब कल्पनाशीलता सहज-स्वीकृति के अनुरूप होती है, केवल तभी इसमें निश्चितता होती है और यह 'स्वयं(मैं)' में संगीत की तरफ बढ़ती है और जब यह मान्यताओं या संवेदनाओं के द्वारा प्रेरित होती है, तो इसमें अनिश्चितता होती है और अंतर्विरोध या अव्यवस्था की तरफ बढ़ती है।

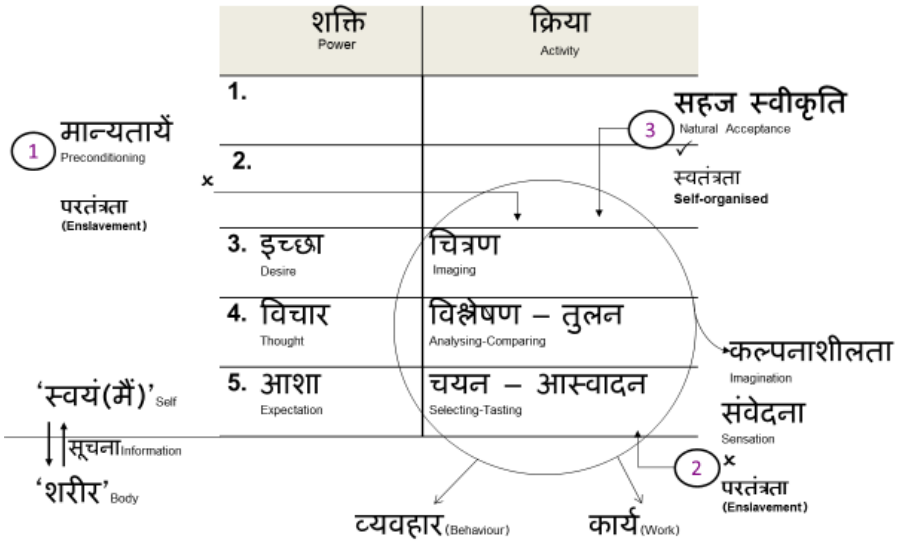

चित्र. 6-5. तीनों स्रोतों पर आधारित कल्पनाशीलता का परिणाम

कल्पनाशीलता के तीनों स्रोतों से प्रेरित कल्पनाशीलता के परिणाम को जांचने के बाद आइए इस अध्याय में हम स्व-अन्वेषण के माध्यम से स्वयं में व्यवस्था सुनिश्चित करना आरंभ करेंगे ।

आगे का मार्ग - स्व-अन्वेषण के माध्यम से 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था सुनिश्चित करना

The Way Ahead – Ensuring Harmony in the Self by way of Self-exploration

'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था की स्थिति ही 'स्वयं(मैं)' में संगीत(harmony) है; और यह वांछनीय भी है। एक बार जब हम 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था की स्थिति में होते हैं तो, हम स्वतंत्र होते हैं अर्थात् निरंतर सुख की स्थिति में होते हैं। इस स्थिति तक पहुंचने के लिये आवश्यक है:

a) अपनी सहज-स्वीकृति को जानना-हमने पहले भी कहा है कि हमारी सहज स्वीकृति संबंधो के लिये है, विरोध के लिये नहीं; व्यवस्था के लिये है, अव्यवस्था के लिये नहीं; सह-अस्तित्व के लिये है, संघर्ष के लिये नहीं। अध्याय-2 में हमने इन सभी को सहज स्वीकृति के रूप में संदर्भित किया था अर्थात् "वास्तव में जैसा मैं होना चाहता हूँ" या "जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है"।

b) अपनी कल्पनाशीलता के बारे में सजग होना- अर्थात् हमारी इच्छा, विचार और आशा या चित्रण, तुलन-विश्लेषण (comparing-analysing) और चयन-आस्वादन की क्रियायों के बारे

सजग होना। अध्याय-2 में हमने इसे "जैसा मैं हूँ" के रूप में हमारी कल्पनाशीलता को संदर्भित किया था।

c) यह देखिये कि आपकी कल्पनाशीलता में से कितनी इच्छायें, मान्यता, संवेदना और सहज-स्वीकृति से प्रेरित हैं। यह मूलतः "जैसा मैं हूँ" का विश्लेषण है।

d) अपनी कल्पनाशीलता पर तब तक काम जारी रखिये जब तक वह सहज स्वीकृति के पूर्णतया अनुरूप न हो जायें अर्थात् हमारी सभी इच्छायें, सभी विचार और सभी आशायें, संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के अनुरूप न हो जायें यानी विरोध, अव्यवस्था एवं संघर्ष से मुक्त न हो जायें। यह 'स्वयं(मैं)' के साथ संवाद के माध्यम से, "जैसा मैं हूँ " को सहज-स्वीकृति के साथ जोड़ने का काम है, अर्थात् स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया है।

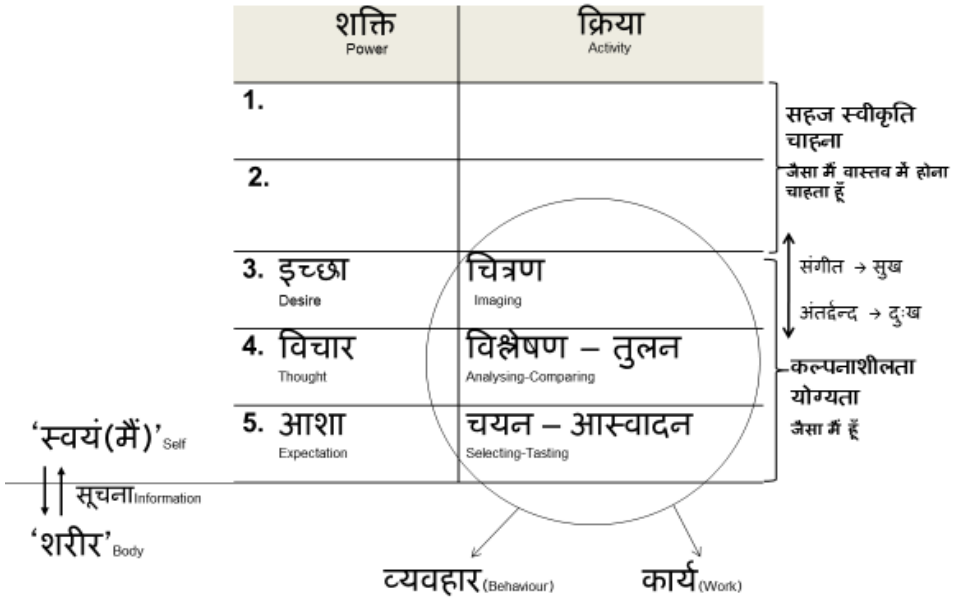

चित्र. 6-6. 'मेरी सहज स्वीकृति' और 'जैसा मैं हूँ' के बीच संगीत ही सुख है

अपनी कल्पनाशीलता और अपनी सहज स्वीकृति के बीच व्यवस्था को सुनिश्चित करके 'स्वयं(मैं)' में संगीत अर्थात् व्यवस्था को सुनिश्चित कर सकते हैं अर्थात् अपनी कल्पनाशीलता को अपनी सहज-स्वीकृति के अनुरूप सुनिश्चित करके 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था को सुनिश्चित किया जा सकता है। (चित्र. 6-6.)

'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था को विस्तार से समझना
(Understanding Harmony in the Self in Detail)

[पहली बार इस पुस्तक को पढ़ते समय पाठक इस भाग को छोड़ भी सकते हैं, जब आप दूसरी बार इस पुस्तक को पढ़ रहे होंगे तो इस भाग को पढ़ना अधिक उचित रहेगा। यहाँ पर हम 'स्वयं(मैं)' की दसों क्रियाओं का परिचय करवा रहे हैं, इनका और अधिक विस्तार से अध्ययन करने के लिये कृपया परिशिष्ट (appendix) A6-1 देखें]

यदि हम इन सूक्ष्म विवरणों को देखें तो, इनसे हमें 'स्वयं(मैं)' की वर्तमान स्थिति के बारे में अनुमान मिलेगा, साथ ही साथ हमें 'स्वयं(मैं)' की समग्र विकसित स्थिति की झलक भी मिलेगी। जैसे-जैसे हम आगे के अध्यायों को पढ़ेंगे, इन बिंदुओं को और अधिक विस्तारित एवं स्पष्ट किया जायेगा।

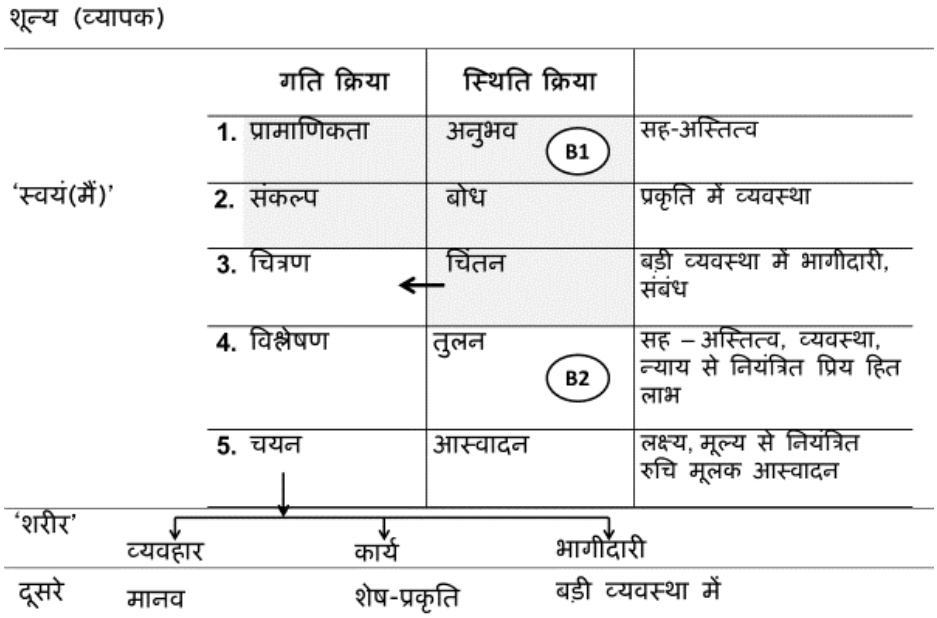

चित्र. 6-7. मानवीय चेतना में 'स्वयं(मैं)' की स्थिति

यदि आप 'स्वयं(मैं)' को देखें (चित्र. 6-7. का संदर्भ लें) तो इसकी क्रियाओं को B1 और B2 नाम के दो ब्लॉकों में चिन्हित किया गया है। अभी तक हम ब्लॉक B2 से संबंधित क्रियाओं के बारे में बात कर रहे थे अर्थात् 'जैसा मैं हूँ" या मेरी कल्पनाशीलता की स्थिति के बारे में। इच्छा, चित्रण की क्रिया है- मेरे बारे में, मेरी स्थिति के बारे में, मानव होने के नाते मैं क्या होना चाहता हूँ इसके बारे में। विचार, विश्लेषण की क्रिया है- मेरी इच्छाओं की पूर्ति कैसे हो इसको फैलाना। आशा, चयन की क्रिया है- मेरी इच्छाओं की पूर्ति के लिये बाहर किये जाने वाले कार्य, व्यवहार का चुनाव। इन क्रियाओं पर चर्चा इसलिये कर रहे थे, क्योंकि ज्यादातर हम ब्लॉक B2 की इन्हीं क्रियाओं में जागृत हैं। यदि आपको अपनी इच्छा, विचार और आशा देखने में कठिनाई हो रही है तो वो इसलिये क्योंकि आप 'स्वयं(मैं)' के बारे में, अपनी क्रियाओं के बारे में और इन क्रियाओं की विषय-वस्तु के बारे में जागरुक नहीं हैं।

इन सभी क्रियाओं को सम्मिलित रूप में कल्पनाशीलता कहते हैं, जो हमारे अंदर और बाहर (परिवार, समाज, प्रकृति/ अस्तित्व में व्यवहार, कार्य और बड़ी व्यवस्था में भागीदारी के रूप में) व्यवस्था या अव्यवस्था का निर्धारण करती है।

ब्लॉक B1 से संबंधित क्रियायें, "वास्तव में जैसा मैं होना चाहता हूँ" अर्थात् मेरी सहज-स्वीकृति से संबंधित हैं; पहले जिसे हमने सही-समय और सही-भाव के रूप में संदर्भित किया था। ये चिंतन, बोध और अनुभव की क्रियायें हैं। चिंतन, बड़ी व्यवस्था में अपनी भागीदारी को देखने की क्रिया है अर्थात् दूसरे मानव और शेष-प्रकृति के साथ संबंध को देखने की क्रिया है। बोध, प्रकृति में व्यवस्था को देखने की क्रिया है अर्थात् प्रकृति की प्रत्येक इकाई में अंतर्निहित व्यवस्था को देखने की क्रिया है। अनुभव, अस्तित्व में सह-अस्तित्व को देखने की क्रिया है।

यदि मैं इन क्रियाओं के प्रति जागरूक होता हूँ अर्थात् यदि मुझ में सही-समझ और सही-भाव है तो यह मेरी पूरी कल्पनाशीलता का आंतरिक मार्गदर्शन करती है। मैं बाहर से आने वाली कई तरह की सूचनाओं में से सही सूचनाओं की पहचान कर पाता हूँ। मैं सिर्फ उन्हीं सूचनाओं को स्वीकार करता हूँ; जो संबंध के अनुरूप हों और संबंध को सुनिश्चित करती हों; सूचनायें जो व्यवस्था के अनुरूप हों और

व्यवस्था को सुनिश्चित करती हों; और वह सूचनायें जो सह-अस्तित्व के अनुरूप हों और सह-अस्तित्व को सुनिश्चित करती हों।

आंतरिक मार्गदर्शक को एक तीर के निशान के द्वारा B1 से B2 की तरफ दिखाया गया है। यह तीर का निशान बहुत महत्वपूर्ण है। यही है जिसके बारे में हमें जागृत होना है।

यदि आप 'स्वयं(मैं)' को देखें, जब केवल B2 ब्लॉक में हम जागृत होते हैं तब हम आंशिक रूप से संगीत या व्यवस्था में होते हैं, ज्यादातर अव्यवस्था और दुख की स्थिति में ही रहते हैं। चूंकि दुख, सहज स्वीकार्य नहीं होता है, इसीलिये 'स्वयं(मैं)' सुख प्राप्त करने के लिये या दुख से बचने के लिये अनेक उपायों का प्रयत्न करते रहते हैं जैसा कि अध्याय-4 में चर्चा की गयी है। इसका समाधान चिंतन, बोध और अनुभव जैसी उच्च क्रियाओं में जागृत होना है अर्थात् 'स्वयं(मैं)' का B1 और B2 दोनों ब्लॉकों में जागृत होना है। इस तरह के 'स्वयं(मैं)' को हम मानव-चेतना के रूप में संदर्भित करते रहे हैं। यह मानव का स्व-विकास है अर्थात् सभी दसों क्रियाओं में जागृति है। स्व-अन्वेषण , स्व-विकास में सहयोगी है जिसे प्रारंभ करने का हम प्रयत्न कर रहे हैं। जागृत, 'स्वयं(मैं)' को चित्र. 6-7. में दिखाया गया है।

इसके संदर्भ में यह बताना भी महत्वपूर्ण है कि किसी बिंदु पर हमारी स्थिति, हमारी इच्छा, विचार, और आशाओं का संग्रह है और इसी से हमारी स्वीकार्यता निर्धारित होती है। जब इन सभी स्वीकार्यताओं को एक साथ रखा जाये तो इसी को संस्कार कहते हैं। अतः संस्कार अभी तक की सभी कल्पनाओं के योगफल से निर्धारित की हुई स्वीकार्यतायें हैं। दूसरे शब्दों में-

संस्कार= ∑ [इच्छा (सभी) + विचार (सभी) + आशा (सभी)] से निर्धारित स्वीकार्यतायें

इनका समय के साथ नवीनीकरण होता रहता है। किसी समय (t) पर हमारे कुछ संस्कार होते हैं और अगले क्षण (t+1) पर हमारे संस्कार का नवीनीकरण निम्नलिखित रूप में होता है:

संस्कार (t+1) = संस्कार (t)+ वातावरण (t)+ अध्ययन (t)

अर्थात् अगले क्षण (t+1) पर हमारा संस्कार, हमारे वर्तमान संस्कार (t), उस क्षण के वातावरण तथा उस क्षण में जो हमने अध्ययन किया, स्व-अन्वेषण और स्व-सत्यापन के रूप में, उसका परिणाम होता है।

यह स्वीकार्यता या संस्कार हमारी सहज-स्वीकृति के अनुरूप हो भी सकते हैं और नहीं भी। यदि हम सहज-स्वीकृति के आधार पर स्व-अन्वेषण कर रहे हैं, तो इससे निर्मित संस्कार व्यवस्थित होंगे। परिणामस्वरूप अगले क्षण हमारे संस्कार, वर्तमान क्षण की अपेक्षा और अधिक व्यवस्थित होंगे।

दूसरी तरफ यदि हम वास्तविकताओं को बिना स्व-सत्यापन के सिर्फ मान लेते हैं, तब भी अगले क्षण हमारे संस्कार में बदलाव होंगे ही, लेकिन वह संस्कार, हमारे वर्तमान संस्कार से बेहतर हो भी सकते हैं और नहीं भी। यदि हम वास्तविकताओं को गलत मान्यताओं या संवेदनाओं के आधार पर ही मान लेते हैं, तो हमारे संस्कार और अधिक खराब भी हो सकते हैं।

उदाहरण के लिये, हम सामाजिक वातावरण से कई सूचनायें लेते ही रहते हैं, जैसे "किसी का भी विश्वास मत कीजिये" इत्यादि। इस प्रकार की सूचनायें हमारे माता-पिता, परिवार के दूसरे सदस्यों, मित्रों,सोशल मीडिया आदि से आती रहती हैं। इस मान्यता के पीछे डर यह है कि यदि आप किसी के ऊपर आँख बंद करके विश्वास करते हैं तो वह आप का लाभ उठा सकता है या आपको हानि पहुँचा सकता है। मीडिया में इस प्रकार की घटनाओं को अक्सर दिखाया भी

जाता है। बार-बार इस प्रकार की सूचनायें मिलने से ये हमारी कल्पनाशीलता का अंग बन जाती हैं। परिणामस्वरूप किसी समय, हममें इसके लिये स्वीकार्यता अर्थात् संस्कार विकसित हो जाते हैं। अतः "किसी पर भी विश्वास मत करो", अब हमारे संस्कार का एक अंग बन जाता है और हमारे साथ-साथ हमेशा चलता रहता है। अब यदि अविश्वास हमारी कई कल्पनाशीलताओं का आधार हो, तो हमारे अनेक निर्णय भी इसी संस्कार पर आधारित होंगे।

अब यदि हम स्वयं से पूछें कि विश्वास का भाव मुझे सहज स्वीकार्य है या अविश्वास का भाव? जब हम इस प्रश्न पर स्व-अन्वेषण और स्व-सत्यापन करते हैं, तो हम पाते हैं कि विश्वास का भाव हमें सहज स्वीकार्य है। हम विश्वास के भाव के बारे में स्वीकार्यता विकसित करते हैं, अत: हमारा पुराना संस्कार "किसी पर भी विश्वास मत कीजिये", विश्वास के भाव में नवीनीकृत हो जाता है, अविश्वास के भाव के बजाय। इस प्रकार से हमारे संस्कार नवीनीकृत हो जाते हैं। विश्वास के भाव के स्व-सत्यापन और स्व-अन्वेषण के लिये अध्याय-8 का संदर्भ ले सकते हैं।

स्व-अन्वेषण के लिये मुख्य सूचना स्वयं से, विशेषकर ब्लॉक B1 से मिलती है, या फिर किसी और के द्वारा दिये गये प्रस्ताव से मिलती है, जिसको उन्होंने स्वयं अपने ब्लॉक B1 के आधार पर देखा हो अर्थात् चिंतन, बोध एवं अनुभव में देखा हो। इससे हमारे संस्कार बेहतर होते हैं।

प्रस्तावों को स्वीकार करते हुये सामान्यतः जो प्रस्ताव हमारी वर्तमान धारणाओं (बिना स्व-सत्यापित हुई मान्यतायें) से मेल खाते हैं, तो हम उनको आराम से स्वीकार कर लेतें हैं, और जब ऐसा लगता है कि ये मेल नहीं खा रहे हैं तो उन प्रस्तावों को रद्द कर देते हैं, अतः वर्तमान मान्यतायें, धारणायें, पूर्वाग्रह, संस्कार और गहरे होते जाते हैं। यदि हम दूसरों से मिलने वाली सूचनाओं को स्व-अन्वेषण के लिये प्रस्ताव के रूप में लेते हैं, तो हम इनको धीरे-धीरे समझ पाते हैं, जिससे हमारे संस्कार और भी बेहतर होते जाते हैं, अर्थात् बिना स्व-सत्यापित हुई मान्यतायें कम होती जाती हैं और 'स्वयं(मैं)' में संगीत और व्यवस्था बढ़ती जाती है।

यदि केवल ब्लॉक B2 ही क्रियाशील है तो भी हम प्रयास करके अपनी सहज-स्वीकृति को देख सकते हैं। जब हम प्रयत्न करते हैं अर्थात् जब हम स्व-अन्वेषण करते हैं तो उत्तर मिलता ही है। हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि मैं में निम्नलिखित के लिये सहज स्वीकार्यता है ही:

1. संबंध
2. व्यवस्था
3. सह-अस्तित्व

हममें,सम्बंध में परस्पर-पूरकता के लिये सहज स्वीकृति है न कि विरोध के लिये। अध्याय-8 में हम 'परिवार में व्यवस्था' का विस्तृत अध्ययन करेंगे। जिसमें यह देखेंगे कि हममें, दूसरे मानव के साथसम्बंध में परस्पर-पूरकता के लिये सहज स्वीकृति है। अध्याय-9 में देखेंगे कि शेष-प्रकृति के साथ परस्पर-पूरकता के लिये हममें सहज स्वीकृति है।सम्बंध के बारे में यह स्पष्टता, चिंतन-क्रिया की जागृति का परिणाम है।

हममें व्यवस्था के लिये सहज स्वीकृति है न कि अव्यवस्था के लिये या शोषण के लिये। अध्याय-10 में हम 'प्रकृति में व्यवस्था' का अध्ययन करेंगे। प्रकृति के स्तर पर व्यवस्था की स्पष्टता, बोध-क्रिया की जागृति का परिणाम है।

हममें सह-अस्तित्व के लिये सहज स्वीकृति है, संघर्ष के लिये नहीं या विरोध के लिये नहीं। अध्याय-11 में हम 'अस्तित्व में व्यवस्था' का अध्ययन करेंगे। अस्तित्व में सह-अस्तित्व की स्पष्टता, अनुभव-क्रिया की जागृति का परिणाम है। जीवन की सभी क्रियाओं के जागृत होने पर B1 ब्लॉक, हमारे B2 ब्लॉक के लिये अर्थात् कल्पनाशीलता के लिये मार्गदर्शक बन जाता है।

ब्लॉक B1 की जागृति के साथ-साथ हमें एक और कार्य जिसको करने की आवश्यकता है, वह है पूर्व के संग्रहित संस्कारों (स्वीकृतियों) की छंटनी (sort out) करना। यदि हम ध्यान से देखें तो यह पायेंगे कि हमने बहुत सी स्वीकृतियों को संग्रहित कर रखा है, जो हमारी असंख्य इच्छाओं, विचारों एवं आशाओं के रूप में परिलक्षित होती हैं। वास्तव में हुआ यह है कि बिना जागरूकता के, बेहोशी में ही हमने बहुत सी स्वीकृतियों को संग्रहित कर लिया है। इनमें से बहुत सी स्वीकृतियों तो एक दूसरे के विरोध में हैं एवं हमारी सहज स्वीकृति के अनुरूप भी नहीं है; और हम इनके बारे में जागरूक भी नहीं हैं। हमने जिन बहुत सी स्वीकृतियों को संग्रहित कर लिया है, उन्हीं को संस्कार कह रहे हैं।

हममें से प्रत्येक में, बहुत सी संग्रहित स्वीकृतियों अर्थात् संग्रहित संस्कार हैं। हमारी मान्यतायें, हमारी दृष्टि, हमारी प्रवृत्तियां, हमारे संस्कारों की अभिव्यक्ति का भाग हैं। किसी एक व्यक्ति में बाँटने की प्रवृत्ति होती है, यह उसका संस्कार है, दूसरे व्यक्ति में बाँटने की प्रवृत्ति नहीं होती है, यह उसका संस्कार है। 'स्वयं(मैं)', इन सभी संग्रहित संस्कारों के साथ ही कार्य कर रहा होता है। यदि हमारे संग्रहित संस्कारों में से कुछ कल्पनाशीलता, स्वयं के कारण या किसी बाहरी परिस्थितियों के कारण उत्तेजित हो जाती हैं तो ये कल्पनाशीलता ही बाहर व्यवहार, कार्य में प्रकट होने लगती हैं।

यदि हम अपने संस्कारों के प्रति जागरूक नहीं हैं, या बाहर से आने वाली सूचनाओं के प्रति जागरूक नहीं हैं तो, हम यह नहीं देख पाते हैं कि हमारी कल्पनाशीलता कहाँ से प्रेरित हो रही है। 'स्वयं(मैं)' में संगीत या व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिये यह अनिवार्य है कि हम अपनी कल्पनाशीलताओं और संस्कारों के बारे में जागरूक हों और परत दर परत इनकी सफाई करें। इसका आशय यह हुआ कि हमें अपनी कल्पनाओं, अपने संस्कारों की छंटाई करनी है, इन्हें अपनी सहज स्वीकृति के अनुरूप करना है और शेष को मूल्यांकित करके हटा देना है।

कल्पनाशीलता की जड़ या बीज इच्छा है। जैसा कि हमने देखा है कि कोई एक छोटी इच्छा पहले विचारों में फैलती है और फिर आशा में फैलती है। यदि हम कल्पनाशीलता में विरोधाभास पाते हैं तो इसे जाँचने का सर्वथा उपयुक्त स्थान 'इच्छा' है। इन इच्छाओं को हमें स्वभाव या मूल लक्ष्य के साथ जोड़ने की आवश्यकता है, सहज स्वीकृति के प्रसंग पर चर्चा करते समय हम यही संकेत दे रहे थे।सम्बंध में इच्छायें भाव के साथ जुड़ती हैं, जिनका अध्ययन हम अध्याय-8 में करेंगे। किसी आशा या विचार से व्यवस्था हो रही है या नहीं, यह देखने के लिये अच्छा यह होगा कि हम इनसे जुड़ी हुई उस इच्छा को जाँचे, जिससे कि ये विचार और आशा उत्पन्न हुये हैं:

- क्या यह सहज स्वीकार्य भाव से उत्पन्न हुई है या नहीं?
- क्या यह मानवीय लक्ष्य के लिये है या नहीं

उदाहरण के लिये, यदि आप यह सोच रहे हैं कि माँ के लिये सम्मान को कैसे व्यक्त किया जाये, इसके पीछे की इच्छा, सम्मान के भाव के साथ जीने की है। चूंकि सम्मान एक सहज स्वीकार्य भाव है, अतः इस इच्छा से 'स्वयं(मैं)' में संगीत या व्यवस्था होगी और इस इच्छा को पूरा करने के विचार से भी संगीत और सुख होगा। दूसरी तरफ यदि आप अपनी माँ के लिये अपमान के

भाव को व्यक्त करने के बारे में सोच रहे हैं, तो इस विचार के पीछे की इच्छा अपमान के भाव के साथ जीने की है। चूंकि आपकी यह इच्छा सहज स्वीकार भाव 'सम्मान' के विरोध में है, अतः इस इच्छा से अंतर्विरोध होगा और अपमान के विचार से भी अंतर्विरोध और दुख ही होगा। निःसंदेह यदि हम जागरुक नहीं है और अपनी सहज-स्वीकृति का संदर्भ भी नहीं ले पा रहे हैं और यदि हममें स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के रूप में आंतरिक संवाद भी नहीं हो रहा है तो इसका परिणाम अभी या कुछ समय बाद या कुछ दिनों के बाद या कुछ वर्षों के बाद आयेगा ही। इसका अर्थ सिर्फ इतना है कि इस समय हम अपनी कल्पनाशीलताओं के बारे में अनभिज्ञ हैं; या हम यह जाँच नहीं कर पा रहे हैं कि यह इच्छा हमारी सहज-स्वीकृति के अनुरूप है कि नहीं; या इससे व्यवस्था सुनिश्चित होगी की नहीं।

इसे जाँचने का सबसे आसान तरीका यह है कि यह इच्छा किस स्रोत से प्रेरित है, उसको ज्ञात किया जाये अर्थात् क्या वह स्रोत मान्यता है, संवेदना है, या सहज-स्वीकृति है। क्योंकि बिना इस जागरूकता के, बिना इस संवाद के, इच्छायें इन सभी तीनों स्रोतों से प्रेरित होती रहती हैं। इस जागरूकता के अभाव में हमने बहुत सी इच्छाओं को संग्रहित कर लिया है; इनमें से कुछ तो हमारे लक्ष्य और स्वभाव (सहज स्वीकार्य भाव) के अनुरूप हैं और कुछ इच्छायें इनके अनुरूप नहीं हैं। जागरूकता के साथ, स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के द्वारा आंतरिक संवाद के साथ, हर समय संस्कार शुद्ध या परिष्कृत किये जा सकते हैं।

जब निम्नलिखित दोनों भाग पूर्ण होते हैं तो हम 'स्वयं(मैं)' में संगीत में, निरंतर सुख की स्थिति में, मानव-चेतना में हो पाते हैं। ये दोनों भाग निम्न हैं-

1. ब्लॉक B1 की क्रियायें जागृत हो चुकी हैं। हमें संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व (परस्पर पूरकता) की सही-समझ है, इसके साथ यह सही-समझ ब्लॉक B2 (कल्पनाशीलता) के लिये मार्गदर्शक बन गई है, इसलिये अब हममें सही-भाव और सही-विचार भी है।
2. हमने अपने संस्कार को परिष्कृत कर लिया है अर्थात् हमारे सभी संस्कार अब हमारे मूल लक्ष्य और सहज स्वीकार्य भावों के अनुरूप हैं। हमारे संस्कार, संबंध, व्यवस्था एवं सह-अस्तित्व (परस्पर पूरकता) के अनुरूप हैं।

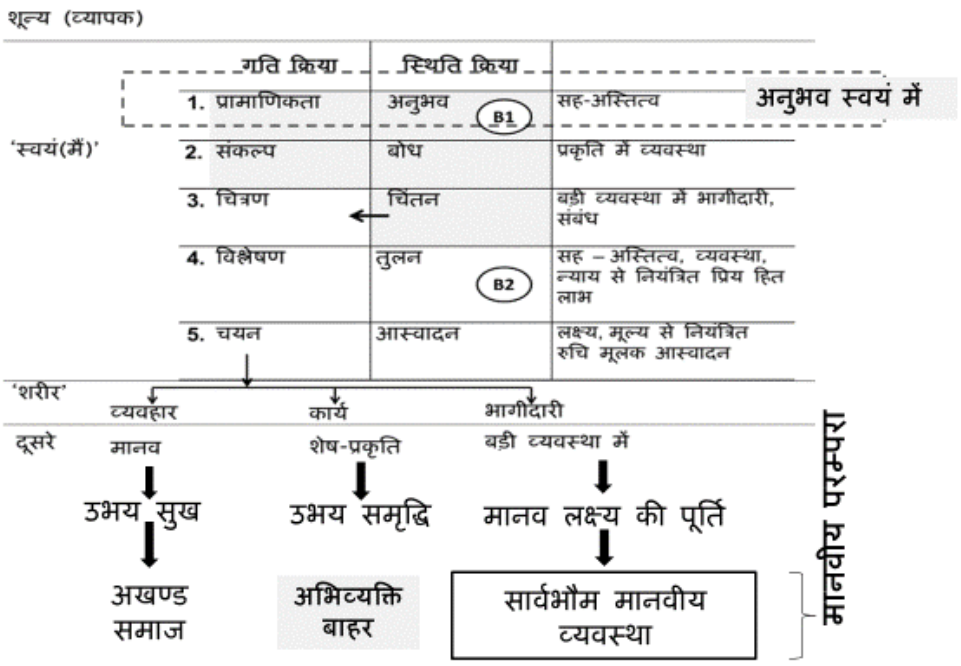

चित्र. 6-8. निश्चित मानवीय आचरण

तब हम बाहरी जगत के साथ परस्पर-पूरकता के लिये भागीदारी करने के योग्य हो पाते हैं; इसका अर्थ यह हुआ कि मानव के साथ हमारे व्यवहार से उभय-सुख (mutual-happiness) होगा और शेष-प्रकृति के साथ हमारे कार्य से उभय-समृद्धि (mutual-prosperity) होगी और बड़ी व्यवस्था में हमारी भागीदारी से मानव-लक्ष्य की पूर्ति होगी; जिससे अंतत: अखंड-समाज और सार्वभौम मानवीय व्यवस्था होगी। व्यवस्था की समझ के आधार पर अखंड-समाज और सार्वभौम मानवीय व्यवस्था सुनिश्चित की जा सकती है अर्थात् अस्तित्व में सह-अस्तित्व, प्रकृति में व्यवस्था एवं दूसरे व्यक्तियों और शेष-प्रकृति के साथ परस्पर-पूरकता।

जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे इसका और विस्तार किया जायेगा। यहाँ पर हमने इसका कुछ उल्लेख आपको एक अहसास देने के लिये किया है, कि अंततः हमारी कल्पनाशीलता किस प्रकार चलेगी, 'स्वयं(मैं)' की स्थिति कैसी होगी, हमारा आचरण कैसा दिखेगा, और इसका अन्तिम परिणाम क्या होगा। इसका एक सिरा, सह-अस्तित्व में अनुभव, प्रकृति में व्यवस्था की समझ, 'स्वयं(मैं)' मेंसम्बंध का चिंतन; और दूसरा सिरा अखण्ड-समाज और सार्वभौम (universal) मानवीय व्यवस्था है।

अपने होने की स्थिति को जाँचने का एक तरीका, यह अभ्यास हो सकता है, जिसमें हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि कितनी इच्छायें, विचार और आशायें; मान्यताओं से प्रेरित हैं, कितनी संवेदनाओं से और कितनी सहज-स्वीकृति से प्रेरित हैं (यह इस अध्याय के अभ्यास वाले भाग में सम्मिलित किया गया है)। अध्याय-7 में हम शरीर की आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति की विधियों का अध्ययन करेंगे।

मुख्य बिंदु
(Salient Points)

- कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाले तीन संभावित स्रोत हैं- मान्यतायें, संवेदनायें और सहज-स्वीकृतियाँ। मान्यताओं का अर्थ परिवार और समाज में प्रचलित धारणायें, प्रतीक, रीति-रिवाज, दृष्टिकोण इत्यादि से हैं, जो कल्पनाशीलता को प्रभावित कर सकते हैं। संवेदनायें वो सूचनायें हैं जो 'शरीर' के पाँचों संवेदी अंगों के माध्यम से मिलती हैं अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के रूप में मिलती हैं। सहज-स्वीकृति के आधार पर स्व-सत्यापन से सही-समझ की तरफ बढ़ते हैं, जो कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाला तीसरा स्रोत है।
- जब कल्पनाशीलता सहज-स्वीकृति के अनुरूप होती है, केवल तभी इसमें निश्चितता होती है और यह 'स्वयं(मैं)' में संगीत की तरफ बढ़ती है और जब यह मान्यताओं या संवेदनाओं के द्वारा प्रेरित होती है, तो इसमें अनिश्चितता होती है और अंतर्विरोध या अव्यवस्था की तरफ बढ़ती है।
- चूंकि सहज-स्वीकृति, संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के लिये है, अतः जब कल्पनाशीलता (अर्थात् इच्छा, विचार, आशा) संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व से निर्देशित होती है तो 'स्वयं(मैं)' में संगीत होता है और यही 'स्वयं(मैं)' में सुख की स्थिति है। यदि हम यह सुनिश्चित कर सकें कि हमारी कल्पनाशीलता संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व से ही निर्देशित हो तो 'स्वयं(मैं)' में निरंतर संगीत होगा और 'स्वयं(मैं)', निरंतर सुख की स्थिति में रहेगा।

- संस्कार वो 'स्वीकृतियां' हैं जो हमारी सभी कल्पनाशीलताओं के योगफल से निर्धारित होती है।

$$\text{संस्कार} = \sum [\text{ इच्छा(सभी)} + \text{विचार(सभी)} + \text{आशा(सभी)}] \text{ से}$$

निर्धारित स्वीकार्यतायें हैं।

समय के साथ इनमें नवीनीकरण होता रहता है किसी क्षण (**t**) पर एक तरह का संस्कार रहता है और अगले क्षण (**t+**1) पर हमारे संस्कारों में निम्नलिखित आधार पर परिवर्तन होता है:

$$\text{संस्कार}(t+1) = \text{संस्कार}(t) + \text{वातावरण}(t) + \text{अध्ययन}(t)$$

अगले क्षण के संस्कार सहज-स्वीकृति के अनुरूप हो भी सकते हैं और नहीं भी। यदि हम अपनी सहज-स्वीकृति के आधार पर स्व-अन्वेषण कर रहे हैं, तो इससे नवनिर्मित संस्कार सौहार्द पूर्ण होंगे अर्थात् संगीत में होंगे और व्यवस्था में होंगे।

अभ्यास 1

स्वयं के द्वारा स्वयं को देखना

स्वयं (मैं, चैतन्य) के द्वारा स्वयं (मैं, चैतन्य) को देखना

जीवन शक्तियों का अन्तःनियोजन /प्रत्यावर्तन

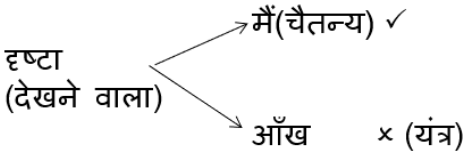

स्वयं के द्वारा स्वयं को देखने के लिए:
क्या मुझे आँख के माध्यम से देखने की आवश्यकता है
अपनी कल्पनाशीलता को देखने के लिए क्या आँख की आवश्यकता है?
नहीं → आँखों को आराम दें → खुला, बंद, आधा खुला आधा बंद रहने दें
क्या मुझे शरीर से कोई काम लेना है?
अपने भाव को देखने के लिए क्या मुझे शरीर से काम लेने की आवश्यकता है?
नहीं → शरीर को आराम दें → शरीर को किसी भी आसन में रखें

पुनरावृत्ति: पिछली कक्षा में आपने ये अभ्यास किया

Step 1: सजग रहें – इस क्षण अपने में चल रही कल्पनाशीलता को देखें, इच्छा (भाव), विचार, आशा को देखें। बिना कोई प्रतिक्रया किए।
Step 2: इस क्षण आप में जो भाव है, वो आपको सहज स्वीकार्य है या नहीं?
Step 3: इस क्षण आप में जो भाव, विचार चल रहा है, उस भाव के साथ आप आराम में हैं, संगीत में हैं, सुखी हैं?
Step 4: इस क्षण आप में जो भाव, विचार चल रहा है, इसका निर्णय कौन लेता है?
बाहर की परिस्थिति, कोई दूसरा व्यक्ति या आप स्वयं

निष्कर्ष

1. मैं (स्वयं, चैतन्य) को देख रहा हूँ|

   मैं अपनी कल्पनाशीलता को देख रहा हूँ; इच्छा (भाव), विचार, आशा को देख रहा हूँ - हर क्षण – बिना किसी प्रतिक्रिया के
   (बिना मूल्यांकन किए- बिना प्रतिक्रिता किए... जैसा चल रहा है, वैसा ही देख रहा हूँ)
2. इस क्षण मुझमें जो भाव, विचार चल रहा है,

   - यह मेरे लिए सहज है या नहीं?
   - यह मानवीय स्वभाव के अनुरूप है या नहीं?
   - मैं इस भाव की निरंतरता को बनाए रखना चाहता हूँ या नहीं?
3. इस क्षण मुझ में जो भाव, विचार चल रहा है, उस भाव के साथ मैं

   - आराम में हूँ या परेशान हूँ?
   - संगीत में हूँ या अंतर्विरोध में हूँ?
   - सुखी हूँ या दुखी हूँ?

4. इस क्षण, हर क्षण, मुझ में जो भाव, विचार चलता है, इसका निर्णय कौन लेता है

– बाहर की परिस्थिति या कोई दूसरा व्यक्ति इसका निर्णय लेता है?
– मैं स्वयं निर्णय लेता हूँ?

निष्कर्ष: मैं स्वयं निर्णय लेता हूँ

अब हम आगे का अभ्यास करेंगे

Step 5: निर्णय का आधार

हमने step 4 में देखा कि इस क्षण मुझमें जो भाव है, उसका निर्णय मैं स्वयं लेता हूँ।
अब हम यह देखने की कोशिश करेंगें कि इस भाव का निर्णय "मैं" किस आधार पर लेता है।
मैं किस आधार पर अपने भाव, विचार का निर्णय लेता हूँ

- सही समझ या
- मान्यता (सही समझ के अभाव में)

जब मैं सही समझ के आधार पर अपने भाव, विचार का निर्णय लेता हूँ तब मैं वैसे भाव विचार का निर्णय लेता हूँ जो मुझे सहज स्वीकार्य होते हैं... जिनमें मैं आराम में रहता हूँ, संगीत में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ।
जब मैं किसी मान्यता के आधार पर अपने भाव विचार का निर्णय करता हूँ तब यह निश्चित नहीं रहता है कि मैं किस भाव के पक्ष में निर्णय लूंगा – जो भाव मझे सहज स्वीकार्य होते हैं उनके पक्ष में या किसी और भाव के पक्ष में ... मेरी स्थिति क्या होगी इसकी निश्चितता नहीं होती - मैं आराम में रहूँगा या परेशान, संगीत में रहूँगा या अंतर्विरोध में, सुखी रहूँगा या दुखी...
इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वयं में सही समझ का होना और उस समझ के आधार पर अपने भाव, विचार का निर्णय कर पाना आवश्यक है।
(चाहे बाहर की परिस्थितियाँ अनुकूल हों या ना हों)

Step 5: निर्णय का आधार- उदाहरण

मेरा किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति जो भाव रहता है, उसके बारे में सोचें।
यदि मुझमें मानव- मानव सम्बन्ध की सही समझ है, यदि मैंने मानव को समझा है, मैंने अपने आप को एक मानव के रूप में समझा है, दूसरे को भी मानव के रूप में समझा है, तो मुझमें हर व्यक्ति के लिए सम्बन्ध का भाव रहता है। यही भाव मुझे सहज स्वीकार्य होता है और इस भाव के साथ मैं संगीत में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ।
जब मैं सही समझ के आधार पर अपने भाव विचार का निर्णय लेता हूँ, तब मैं वैसे भाव, विचार का निर्णय लेता हूँ जो मुझे सहज स्वीकार्य होते हैं... जिनमें मैं आराम में रहता हूँ, संगीत में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ।

यदि मुझमें मानव मानव सम्बन्ध के बारे में सही समझ नहीं है,
यदि मैंने अपने आप को एक मानव के रूप में नहीं समझा है, दूसरे को भी मानव के रूप में नहीं समझा है, तो मैं अपने बारे में और दूसरे व्यक्ति के बारे में कुछ मान्यता बना लेता हूँ, और
मेरे भाव भी मेरी इन मान्यताओं पर ही निर्भर करते हैं।
मैं यदि यह मानता हूँ कि मानव का मूल्यांकन उसके सम्प्रदाय या वर्ग के आधार पर करना है, तो मुझमें अपने सम्प्रदाय या वर्ग के लोगों के लिए सम्बन्ध का भाव रहता है (एक सहज भाव जिसमें मैं सुखी रहता हूँ), और दूसरे सम्प्रदाय और वर्ग के लोगों के लिए विरोध का भाव रहता है (एक असहज भाव जिसमें मैं दुखी रहता हूँ)।
जब मैं अपने भाव, विचार का निर्णय अपने मान्यता के आधार पर करता हूँ, तो यह निश्चित नहीं हो पाता है कि मैं किस भाव के पक्ष में निर्णय करूंगा – वैसा भाव जो मुझे सहज स्वीकार्य है या अन्यथा ... मेरी

स्थिति क्या होगी इसकी निश्चितता नहीं होती- मैं आराम में रहूँगा या परेशान, संगीत में रहूँगा या अंतर्विरोध में, सुखी रहूँगा या दुखी...
इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वयं में सही समझ का होना और उस समझ के आधार पर अपने भाव, विचार का निर्णय कर पाना आवश्यक है।
यदि मैं ऐसा कर पाता हूँ, तो
मुझमें हमेशा सहज भाव ही होंगें और मैं हर क्षण, संगीत में रहूँगा, सुखी रहूँगा...
(चाहे बाहर की परिस्थितियाँ अनुकूल हों या ना हों)।
इसीलिए, सही समझ आवश्यक है, उन सबके बारे में जिनसे मेरा सम्बन्ध है, जिनके साथ मैं जीता हूँ...
मेरा सम्बन्ध संपूर्ण प्रकृति के साथ है, संपूर्ण अस्तित्व के साथ है, इसीलिए मुझे संपूर्ण प्रकृति , संपूर्ण अस्तित्व को समझने की आवश्यकता है, और
यह निर्णय करने की आवश्यकता है कि मनुष्य और शेष प्रकृति के साथ जीने के सन्दर्भ में कौन से भाव मुझे सहज स्वीकार्य हैं।

Step 6: सही / सहज भाव को सुनिश्चित करने के लिए सही समझ की आवश्यकता

Step 5 में हमने देखा कि
स्वयं में सही / सहज भाव को सुनिश्चित करने के लिए और उसके आधार पर सुख को सुनिश्चित करने के लिए, सही समझ की आवश्यकता है।
6a) यह समझना आवश्यक है कि हमारे लिए कौन सा भाव सहज है, हम किन भावों की निरंतरता चाहते हैं?
स्वयं से पूछकर देखें कि मुझे कौन से भाव सहज स्वीकार्य हैं

- सम्बन्ध का भाव या विरोध का भाव ?
- संगीत/व्यवस्था का भाव या अंतर्विरोध/अव्यवस्था का भाव ?
- सह-अस्तित्व का भाव या संघर्ष का भाव ?

हम देख पाते है कि-

- सम्बन्ध का भाव
- संगीत/व्यवस्था का भाव
- सह-अस्तित्व का भाव

ही हमारे लिए सहज है, इन्ही भावों की हम निरंतरता चाहते हैं।
6b) इसीलिए इन भावों को स्वयं में सुनिश्चित करने के लिए मुझे इन तीनों को समझने की आवश्यकता है

- संबंध
- संगीत / व्यवस्था
- सह-अस्तित्व

जिसका तात्पर्य है कि

- मुझे संबंध और संबंध में अपनी भागीदारी के चिंतन की आवश्यकता है
- संगीत / व्यवस्था के बोध की आवश्यकता है
- सह-अस्तित्व के अनुभव की आवश्यकता है

- उदाहरण के लिए हम यह देख सकते हैं कि
- सम्बन्ध का भाव हमें सहज स्वीकार्य है;
- यदि मुझमें एक क्षण के लिए भी किसी के प्रति विरोध का भाव आता है तो यह मुझे सहज स्वीकार्य नहीं होता, और उस क्षण मैं दुखी होता हूँ।
- उसी प्रकार हम यह भी देख सकते हैं कि सहज रूप में तो हमें सह-अस्तित्व का भाव ही स्वीकार्य होता है;
- यदि मुझमें एक क्षण के लिए भी संघर्ष का भाव आता है तो यह मुझे सहज स्वीकार्य नहीं होता, और उस क्षण मैं दुखी होता हूँ।
- भले ही हम अपने बच्चों को सिखा रहे हैं -
- " "Struggle for survival, survival of the fittest"
- (अस्तित्व के लिए संघर्ष, स्वस्थतम की उत्तरजीविता")
- प्राकृतिक विकास के सिद्धांत के नाम पर

गृहकार्य

1a. देखें कि क्या मेरे अंदर हर मनुष्य के प्रति हर क्षण सम्बन्ध का भाव बना रहता है?
1b. देखें कि जब मेरे अंदर सम्बन्ध का भाव रहता है तो तो बाहर की घटनाओं का मेरे ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है (जैसे कोई गलत व्यवहार कर दे)? मेरा किस प्रकार का विचार रहता है ? मेरा कैसा व्यवहार रहता है ?
1c. हर एक के प्रति सम्बन्ध के भाव के साथ भाव को देखने का प्रयास करें
2a. देखें कि क्या मेरे अंदर हर क्षण व्यवस्था का भाव बना रहता है?
2b. देखें कि जब मेरे अंदर व्यवस्था का भाव बना रहता है तो बाहर की घटनाओं का मेरे ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है (जैसे मौसम बिगड़ जाए)?
2c. अपने अंदर व्यवस्था के भाव को देखने का प्रयास करें
3a. देखें कि क्या मेरे अंदर हर क्षण सह-अस्तित्व का भाव बना रहता है?
3b. देखें कि जब मेरे अंदर सह-अस्तित्व का भाव बना रहता है तो बाहर की घटनाओं का मेरे ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है ?
3c. अपने अंदर सह-अस्तित्व के भाव को देखने का प्रयास करें

Step 7: सही समझ की आवश्यकता

Step 6a) में हमने देखा कि हमें
संबंध, संगीत/ व्यवस्था और सह-अस्तित्व
का भाव ही सहज स्वीकार्य होता है।
इसीलिए,
step 7a) में हम यह सुनिश्चित करते हैं कि
मुझमें इस क्षण

- सम्बन्ध का भाव है , ना कि विरोध का
- संगीत/ व्यवस्था का भाव है, ना कि अंतर्विरोध/ अव्यवस्था का
- सह-अस्तित्व का भाव है, ना कि संघर्ष का

यदि मैं इस क्षण, इन सहज भावों को सुनिश्चित कर पाता हूँ, तो
मैं इस क्षण संगीत में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ।
उसी प्रकार, यदि मैं हर क्षण, इन सहज भावों को सुनिश्चित कर पाता हूँ, तो
मैं हर क्षण संगीत में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ।
जब मैं step 6b) में संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व को समझ पाता हूँ →
तो Step 7b) में
मैं सही भाव (संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व) के पक्ष में निर्णय ले पाता हूँ →
मैं आराम में रहता हूँ, संगीत में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ।
मैं यह भी देख पाता हूँ कि
जब मैं संबंध, संगीत और सह-अस्तित्व को संपूर्णता में समझता हूँ,
तब मैं अपनी सही समझ के आधार पर, सही भाव का निर्णय ले पाता हूँ – इस क्षण, अगले क्षण और हर क्षण।
– मैं निरंतर सुखी रहता हूँ।
मुझे अपने विकास के लिए

- संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व की समझ, एवं
- संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व का भाव, विचार " "
  "

स्वयं में सुनिश्चित करना आवश्यक है।
ऐसा करके ही मैं स्वयं सुखी रह पाता हूँ, और
दूसरों के सुख का स्त्रोत भी बन पाता हूँ।

गृहकार्य

१. अपने भाव के प्रति सजग हो जाएं
२. देखें की इस क्षण जो भाव है वह सहज है या असहज, सुखद है या दुखद , इस भाव का निर्णय कौन ले रहा है, इसका आधार क्या है ? अगर भाव असहज है तो वह समझ पर आधारित नहीं है
३. अपने आप से पूछ कर देखें : क्या मैं इस क्षण अपने अंदर सम्बन्ध का भाव सुनिश्चित कर सकता हूँ ? व्यवस्था का भाव सुनिश्चित कर सकता हूँ ? सह-अस्तित्व का भाव सुनिश्चित कर सकता हूँ ? आप देख सकते हैं कि जब आपके अंदर सम्बन्ध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व का भाव होता है तो आप आराम में होते हैं, आपकी स्थिति सुखद होती है।
४. यदि आप इस क्षण अपने अंदर सम्बन्ध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व का भाव सुनिश्चित कर सकते हैं तो आप हर क्षण अपने अंदर ये भाव सुनिश्चित कर सकते हैं। आप हर क्षण आराम में रह सकते हैं।

अभ्यास1: स्वयं के द्वारा स्वयं को देखना - हर क्षण

1. सजग रहें – इस क्षण अपने में चल रही कल्पनाशीलता को देखें, इच्छा (भाव), विचार, आशा को देखें। बिना कोई प्रतिक्रया किए।
2. इस क्षण आप में जो भाव है, वो आपको सहज स्वीकार्य है या नहीं?
3. इस क्षण आप में जो भाव, विचार चल रहा है, उस भाव के साथ आप आराम में हैं, संगीत में हैं, सुखी हैं?
4. इस क्षण आप में जो भाव, विचार चल रहा है, इसका निर्णय कौन लेता है?

   बाहर की परिस्थिति, कोई दूसरा व्यक्ति या आप स्वयं
5. इस क्षण आप में जो भाव, विचार चल रहा है, उसका निर्णय आपने किस आधार पर लिया है ?

किसी मान्यता के आधार पर या सही समझ के आधार पर

6. a) कौन सा भाव आपको सहज स्वीकार्य है ?

संबंध का भाव या विरोध का, व्यवस्था या अव्यवस्था का ? सह-अस्तित्व या संघर्ष का ? b) हम संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व को संपूर्णता में समझने का काम करते हैं- पूरी प्रकृति/अस्तित्व के सन्दर्भ में

7. a) सुनिश्चित करें कि इस क्षण आपका भाव संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के अर्थ में हैं, ना कि अन्यथा। इस आधार पर मैं इस क्षण संगीत में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ।

b) **जब मैं संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व को संपूर्णता में समझता हूँ,**

तब मैं उसी के अनुरूप अपने भाव, विचार का निर्णय करता हूँ और निरंतर आराम में रहता हूँ, संगीत में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ।

1. मैं (स्वयं, चैतन्य) को देख रहा हूँ|

मैं अपनी कल्पनाशीलता को देख रहा हूँ; इच्छा (भाव), विचार, आशा को देख रहा हूँ - हर क्षण – बिना किसी प्रतिक्रिया के

(बिना मूल्यांकन किए- बिना प्रतिक्रिता किए... जैसा चल रहा है, वैसा ही देख रहा हूँ)

2. इस क्षण मुझमें जो भाव, विचार चल रहा है,

- यह मेरे लिए सहज है या नहीं?
- यह मानवीय स्वभाव के अनुरूप है या नहीं?
- मैं इस भाव की निरंतरता को बनाए रखना चाहता हूँ या नहीं?

3. इस क्षण मुझ में जो भाव, विचार चल रहा है, उस भाव के साथ मैं

- आराम में हूँ या परेशान हूँ?
- संगीत में हूँ या अंतर्विरोध में हूँ?
- सुखी हूँ या दुखी हूँ?

4. इस क्षण, हर क्षण, मुझ में जो भाव, विचार चलता है, इसका निर्णय कौन लेता है

– बाहर की परिस्थिति या कोई दूसरा व्यक्ति इसका निर्णय लेता है?
– मैं स्वयं निर्णय लेता हूँ?

5. इस क्षण, हर क्षण, मुझ में जो भाव, विचार चल रहा है, इसका निर्णय मैं किस आधार पर करता हूँ ?

- क्या मैं इसे अपनी समझ के आधार पर तय करता हूँ?
- समझ के अभाव में, किसी मान्यता के आधार पर तय करता हूँ?
  - ❑ समझ के आधार पर मैं सही भाव, विचार के पक्ष में निर्णय ले पाता हूँ
  - ❑ मान्यता के आधार पर निर्णय लेने में यह निश्चित नहीं रहता कि मैं सही भाव के पक्ष में ही निर्णय लूँगा या उसके अन्यथा

6. कौन सा भाव मेरे लिए सहज है
   - सम्बन्ध का भाव या विरोध का भाव?
   - संगीत/ व्यवस्था का भाव या अंतर्विरोध / अव्यवस्था का भाव?
   - सह-अस्तित्व का भाव या संघर्ष का भाव?
7. मैं सुनिश्चित करता हूँ कि इस क्षण मेरा भाव संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के अर्थ में हैं, ना कि अन्यथा। इस आधार पर मैं इस क्षण संगीत में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ।

यदि ये भाव निरंतरता में सुनिश्चित हो पाते हैं तो मैं हर क्षण संगीत में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ; मैं निरंतर सुखी रहता हूँ।

मैं देख पाता हूँ कि **जब मैं संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व को संपूर्णता में समझता हूँ,**

तब मैं उसी के अनुरूप अपने भाव, विचार का निर्णय करता हूँ और निरंतर आराम में रहता हूँ, संगीत में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ।

अभ्यास1: स्वयं के द्वारा स्वयं को देखना – निष्कर्ष

1. मैं (स्वयं, चैतन्य) के द्वारा स्वयं को, स्वयं में चल रही कल्पनाशीलता (भाव, विचार) को देख पाते हैं।
2. स्वयं में सहज भाव, स्वभाव, मानवीय स्वभाव के अनुरूप भावों को देख पाते हैं| हम इन भावों की निरंतरता को बनाये रखना चाहते हैं।
3. इन सहज भावों के साथ हम संगीत में, आराम में रहते हैं, सुखी रहते हैं।
4. मुझमें कौन सा भाव चले, इसका निर्णय मैं स्वयं लेता हूँ| इस अर्थ में अपने सुख दुःख के लिए मैं जिम्मेदार हूँ , पूरी तरह से (100%) जिम्मेदार हूँ|
    - दूसरे की शिकायत से मुक्त हो पाते हैं
    - अपने में परिमार्जन (transformation) के लिए, सुधार के लिए तत्पर हो पाते हैं
5. निर्णय लेने का आधार समझ या मान्यता है।
    - जब समझ के आधार पर भाव का निर्णय करते हैं तो सही, सहज भाव का निर्णय कर आराम में रहते हैं
    - जब मान्यता के आधार पर भाव का निर्णय करते हैं तो यह निश्चित नहीं है की आराम में रहेंगे या परेशान रहेंगे

इसलिए अपने में समझ को सुनिश्चित करने की आवश्यकता महसूस होती है।

1. संबंध, व्यवस्था, सह-अस्तित्व का भाव ही मुझे सहज स्वीकार्य होता है – इसलिए संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व को समझना मेरी मूलभूत आवश्यकता है।
2. इस क्षण निर्णय पूर्वक अपने भाव को संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के भाव के अर्थ में सुनिश्चित कर मैं सुखी होता हूँ| हर क्षण ऐसा सुनिश्चित कर मैं निरंतर सुखी होता हूँ|

संबंध, व्यवस्था, सह-अस्तित्व को सम्पूर्णता में समझने के आधार पर हमारा भाव सहज रूप से संबंध, व्यवस्था, सह-अस्तित्व के अर्थ में होता है, हम निरंतर सुखी होते हैं।

अपनी समझ को जाँचे
(Test your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न
(Questions for Self-evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से 'स्वयं(मैं)' में संगीत कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं?

2. समय (t) पर संचित कल्पनाशीलता पर आधारित स्वीकृतियों को संस्कार (t) के रूप में उल्लिखित किया गया था। यह अध्याय में यह भी कहा गया था कि इसका नवीनीकरण होता रहता है। अगले ही क्षण का नया संस्कार होगा:

संस्कार(t+1) = संस्कार(t)+ वातावरण(t)+ अध्ययन(t)

उपरोक्त वक्तव्य के अर्थ की व्याख्या किन्हीं दो उदाहरणों के साथ कीजिये।

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास
(Practice Exercises for Self-exploration)

1. मानव की मूल इच्छा (D) निरंतर सुख है। इसके लिये, कई उप-इच्छायें हैं। प्रत्येक इच्छा या उप-इच्छा के लिये, कई विचार हैं। प्रत्येक विचार के लिये कई आशायें हो सकती हैं। यह सब मिलकर कल्पनाशीलता कहलाती है। इस अभ्यास में, हम विशेष रूप से इच्छाओं/ उप-इच्छाओं और संबंधित विचारों और आशाओं की पहचान करने की कोशिश कर रहे हैं। (चित्र Q-1) पता लगायें कि उप-इच्छाओं, विचारों और आशाओं के बीच संगीत है या नहीं।

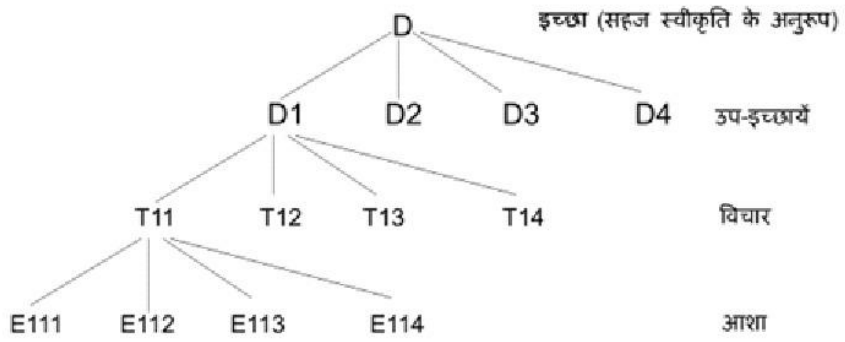

चित्र. 6 Qs- 1 कल्पनाशीलता की स्थिति – निश्चित और व्यवस्थित

अपनी कुछ आदतें, कुछ चीजें जो आपको पसंद हैं; कुछ चीजें, कुछ आदतें जो आप नापसंद करते हैं, आप इनका चुनाव कैसे करते हैं और कुछ 'आपके जीवन के नियम' जिनके आधार पर आप जीते हैं, इन सबको लिखिये - ये सभी आपकी संचित कल्पनाशीलता और संस्कार का भाग हैं। प्रत्येक प्रविष्टि के लिये यदि आप "क्यों" पूछें और उससे जो उत्तर मिले आप उस उत्तर के साथ चलें; जैसे अगर आपको मिठाई खाना पसंद है और आप खुद से पूछते हैं कि "मिठाई क्यों?"; आपका जवाब हो सकता है "क्योंकि मुझे मिठाई का स्वाद पसंद है" बजाय इसके कि "मिठाई" लिखें। इसी तरह सभी के लिये यह एक सूची बनाइये। यह सूची "जैसा आप हैं" को परिभाषित करेगा। ध्यान दें कि इच्छायें, आपके संस्कार का एक हिस्सा हैं जो आपकी संचित इच्छाओं, विचारों और आशाओं की स्वीकृति हैं। अपनी सहज-स्वीकृति की सूची को याद करें। आपके संस्कार

(स्वीकृति) का कितना प्रतिशत आपकी सहज-स्वीकृति से मेल खा रहा है? इस अभ्यास से आपने क्या निष्कर्ष निकाला, उसको लिखिये।

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(**Project and Modelling Exercises)**

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का 'स्वयं(मैं)' में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

"स्वयं (चैतन्य), मानव का महत्वपूर्ण अंग है"

1. 'स्वयं(मैं)' की क्रियायें
2. कल्पनाशीलता के तीन स्रोत
3. स्व-विकास: संस्कार (t+1) = संस्कार (t) + वातावरण (t) + अध्ययन (t)
   सुख = 'स्वयं(मैं)' में संगीत / व्यवस्था

अनुभाग-4: आपके प्रश्न
(Your Questions)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को 'स्वयं(मैं)' के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-7

‘शरीर’ के साथ ‘स्वयं(मैं)’ की व्यवस्था - संयम और स्वास्थ्य को समझना

Harmony of the self with the Body - Understanding Self-regulation and Health

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

☞मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9
प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

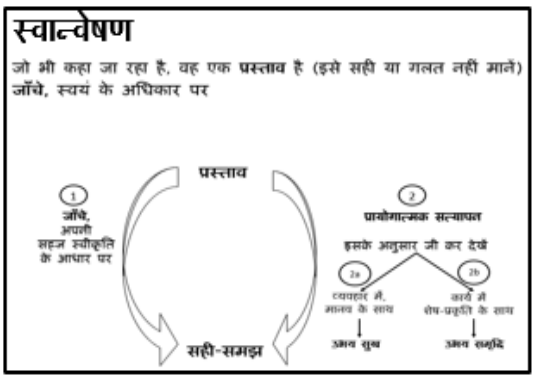

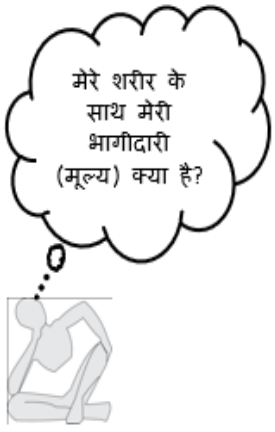

पुनरावृत्ति
(Recap)

यदि हम मानव को देखें तो इसमें 'स्वयं' (चैतन्य) है, 'शरीर' (जड़) है; एवं यह 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' का सह-अस्तित्व है। 'स्वयं(मैं)', अपनी और 'शरीर' दोनों की आवश्यकता पूर्ति का उत्तरदायित्व निभाता है एवं दोनों इकाईयों के बीच सह-अस्तित्व को स्वीकारे रहता है।

'स्वयं(मैं)' में निरंतर सुख पूर्वक जीने की आशा है, जो कि इसकी आवश्यकता भी है। इसकी पूर्ति 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था को सुनिश्चित करके होती है, इसके लिये 'स्वयं(मैं)' में सही-समझ और सही-भाव को विकसित करना आवश्यक है। इस प्रक्रिया में 'स्वयं(मैं)', 'शरीर' का आवश्यकतानुसार यंत्र (साधन) की तरह प्रयोग करता है।

पिछले अध्याय में हमने 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था के बारे में चर्चा की थी। 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था के साथ ही यह, 'शरीर' के साथ व्यवस्था को बनाये रख पाता है। इस अध्याय में हम 'स्वयं(मैं)' की 'शरीर' के साथ व्यवस्था पर चर्चा करेंगे। इससे समृद्धि को भी विस्तार पूर्वक समझने में सहायता मिलेगी।

'स्वयं(मैं)' द्दष्टा-कर्ता-भोक्ता के रूप में ('शरीर' एक साधन के रूप में)
(The Self as the Seer-Doer-Enjoyer (Body as an Instrument))

पिछले अध्याय में हमने मानव को 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के सह-अस्तित्व के रूप में समझा। अब हम इनके बीच सह-अस्तित्व का और अधिक विस्तार से अध्ययन कर सकते हैं (चित्र. 7-1. का संदर्भ लें)। 'स्वयं(मैं)' एक चैतन्य इकाई है और यह जड़ इकाई 'शरीर' के साथ सह-अस्तित्व में है। यह 'स्वयं(मैं)' ही है जो सभी निर्णय लेता है और 'शरीर' से इन निर्णयों के अनुसार कार्य करवाता है।

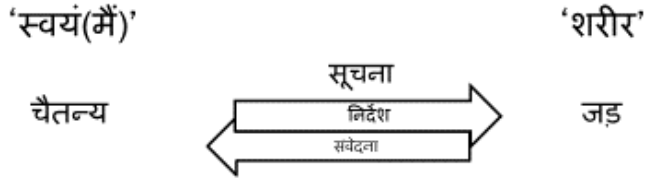

चित्र. 7-1. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान

'स्वयं(मैं)', 'शरीर' को निर्देश देता है और 'शरीर' इन निर्देशों का पालन करता है। यदि आप अपने 'शरीर' को खड़ा होने के लिये कहते हैं, तो वह खड़ा हो जाता है; यदि आप अपने 'शरीर' को बैठने के लिये कहते हैं, तो वह बैठ जाता है; यदि आप अपने 'शरीर' को खाने के लिये कहते हैं, तो वह खाने लगता है; यदि आप अपने 'शरीर' को भोजन करने से रुकने को कहते हैं, तो वह खाना बंद कर देता है इत्यादि। अतः 'शरीर', 'स्वयं(मैं)' के निर्देशों का पालन करता है। यह सभी निर्देश सूचनाये ही हैं जो 'स्वयं(मैं)' के द्वारा 'शरीर' को दी जाती हैं। क्या आप यह देख सकते हैं?

सभी संवेदनाये जो 'शरीर' में घटित हो रही हैं, वह 'स्वयं(मैं)' को उपलब्ध रहती हैं और 'स्वयं(मैं)' उन्हीं संवेदनाओं को पढता है, जिन्हें वह महत्त्वपूर्ण मानता है। जैसे यदि आप यह पेज पढ़ रहे हैं तो इस पूरे पेज के साथ-साथ, आस-पास की वस्तुये जैसे मेज इत्यादि का चित्र अपकी आँख पर बनता है, लेकिन आप चित्र के केवल उसी भाग का चयन करते हैं, जिस पर आपको ध्यान देना होता है। और आप जब शब्दों को पढ़ रहे होते हैं, उसी समय आपका कुछ ध्यान मोबाइल फोन, मेज इत्यादि पर भी रहता है।

यहाँ पर महत्वपूर्ण बात यह है, कि आँखों के पास इस बात का कोई विकल्प नहीं होता की इसमें कौन सी छवि बने और कौन सी न बने। जैसे आँख पर बनने वाली छवि में, पुस्तक के साथ-साथ मेज व

आस-पास की वस्तुये भी सम्मिलित रहती ही हैं। ऐसे ही हम कान से यदि किसी ध्वनि को सुन रहे हैं तो उस ध्वनि के अलावा आस-पास की आने वाली ध्वनि भी कान तक आती रहती है और ऐसा ही प्रत्येक संवेदी अंग के साथ होता है। संवेदनाये, सूचनाओं के ही भाग हैं। इसी तरह सभी प्रकार की संवेदनाये जैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध 'स्वयं(मैं)' के लिये उपलब्ध रहती हैं। लेकिन 'स्वयं(मैं)' केवल उसी को चुनता हैं, जिसको वह अपने लिये जब और जहाँ आवश्यक समझता है। अतः किन संवेदनाओं पर आपको ध्यान देना है और किन पर नहीं, यह आपका 'स्वयं(मैं)' ही निर्धारित करता है। क्या आप ऐसा होते हुये देख पा रहे हैं?

उदाहरण के तौर पर, जब आप कोई मिठाई खाना चाहते हैं तो अपने 'शरीर' को मनपसंद मिठाई की दुकान पर चलने के लिये निर्देशित करते हैं; दुकानदार को मिठाई के लिये भुगतान करते हैं; और मिठाई लेकर मुँह में रखते हैं इत्यादि। इस प्रक्रिया में निर्देश कौन दे रहा है - 'शरीर' या 'स्वयं(मैं)'? 'स्वयं(मैं)', 'शरीर' को निर्देश दे रहा है और 'शरीर' उसके अनुसार कार्य कर रहा है। जब मिठाई जीभ के संपर्क में आती है तो कुछ संवेदना जीभ में भी उत्पन्न होती है; आपका 'स्वयं(मैं)' उसी संवेदना को स्वाद के रूप में पढ़ता है। जब मिठाई गले के नीचे चली जाती है तो स्वाद की यह संवेदना 'स्वयं(मैं)' को उपलब्ध नहीं रहती है और अब वह मिठाई सिर्फ 'शरीर' के पोषण के ही काम आती है।

आप, 'स्वयं(मैं)' को, 'शरीर' को एवं 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के बीच होने वाले आदान-प्रदान को देखने का प्रयत्न करें। 'स्वयं(मैं)' के द्वारा 'शरीर' को निर्देश दिये जा रहे हैं एवं 'शरीर' में होने वाली संवेदना, 'स्वयं(मैं)' के द्वारा पढ़ी जा रही है। यह सभी आदान-प्रदान सूचना के रूप में हो रहा है। यहाँ किसी भी तरह का कोई भी, भौतिक या रासायनिक आदान-प्रदान नहीं हो रहा है।

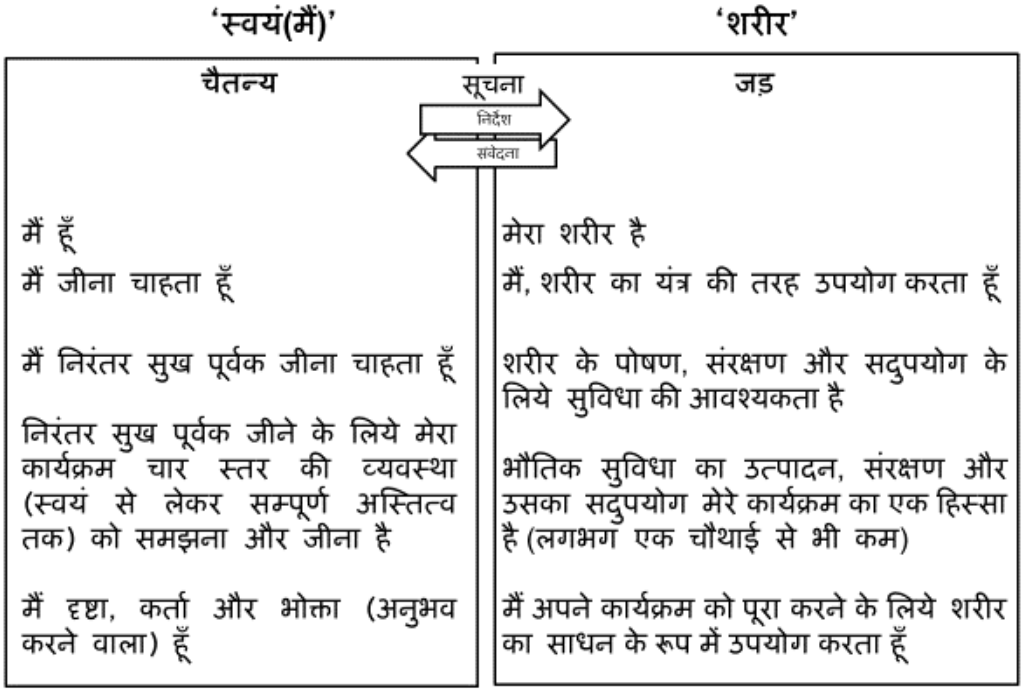

चित्र. 7-2. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' (साधन) की भूमिका

चित्र. 7-2. के अनुसार, 'स्वयं' (चैतन्य) भी है और 'शरीर' (जड़) भी है। 'स्वयं(मैं)' में निरंतर सुख पूर्वक जीने की चाहना है और यह 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता भी है।

याद कीजिये कि यह आपका 'स्वयं(मैं)' ही है जिसमें निरंतर सुख पूर्वक जीने की चाहना है। निरंतर सुख 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता है; यह आवश्यकता सही-समझ और सही-भाव से पूरी होती है। निरंतर सुख

में जीने के लिये जो कार्यक्रम है, वह 'स्वयं(मैं)' से लेकर संपूर्ण अस्तित्व तक अर्थात् मानव से लेकर परिवार, समाज और प्रकृति/ अस्तित्व तक सभी स्तरों पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना है।

इस प्रक्रिया में, 'शरीर' का यंत्र अथवा साधन के रूप में प्रयोग होता है। इस यंत्र ('शरीर') के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के लिये समय-समय पर भौतिक-सुविधा की आवश्यकता होती है। आवश्यक भौतिक-सुविधा का उत्पादन, संरक्षण और सदुपयोग करना मेरे कार्यक्रम का एक भाग है, जीने का सम्पूर्ण कार्यक्रम नहीं। एक सामान्य अनुमान के अनुसार भौतिक-सुविधा से संबंधित कार्यक्रम मेरे पूरे कार्यक्रम का एक चौथाई से भी कम भाग है। मूलतः भौतिक-सुविधा की आवश्यकता, मेरे 'शरीर' तथा मेरे परिवार के सदस्यों के 'शरीर' की व्यवस्था को बनाये रखने के लिये आवश्यक है। यह 'शरीर' के सदुपयोग के लिये भी आवश्यक है।

'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता, मानव की प्राथमिक आवश्यकता है। सभी चार स्तरों (मानव, परिवार, समाज, प्रकृति/ अस्तित्व) में व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना मेरा संपूर्ण कार्यक्रम है। इस सम्पूर्ण कार्यक्रम में 'शरीर' एक उपयोगी उपकरण है, एक उपयोगी यंत्र है। इस प्रकार से हम देख सकते हैं कि 'स्वयं(मैं)' ही अधिकांश भूमिका निभाता है। यह 'स्वयं(मैं)' ही है जो द्दष्टा, कर्ता और भोक्ता है।

मैं द्दष्टा हूँ
(I am the Seer)

यह 'स्वयं(मैं)' ही है, जो वास्तविकता को देखता है एवं वास्तविकता को समझता है। आप पुस्तक पढ़ते समय यह देख सकते हैं कि 'स्वयं(मैं)' ही शब्दों को अपने 'शरीर' की आँखों की सहायता से देख रहा है। क्या आपकी आँखें समझती हैं, जो शब्दों से अर्थ को जोड़ती हैं, या आपका 'स्वयं(मैं)' है जो समझता है, शब्दों से अर्थ को जोड़ता है? आँखें सिर्फ उपकरण हैं। आँखें या 'शरीर' का अन्य कोई भी संवेदी अंग देखता नहीं है, अर्थात् 'शरीर' नहीं देखता है। बल्कि यह तो 'स्वयं(मैं)' ही है, जो इन आँखों के माध्यम से देखता है, जो उसमें अन्तर्निहित अर्थ को समझता है। अतः यह 'स्वयं(मैं)' ही है जो समझता है; निःसंदेह यह समझने में 'शरीर' का भी उपयोग करता है अर्थात् समझने हेतु, किसी संवेदना विशेष की सहायता लेकर आपका 'स्वयं(मैं)' 'शरीर' का एक यंत्र की तरह उपयोग करता है।

जब आप 'स्वयं(मैं)' को देखते हैं, तब आपको किसी भी संवेदना को पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती है, उदाहरण के लिये जब आप अपने भाव देखते हैं; या यह देखते है कि आप सुखी हैं कि दुखी। आप प्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं कि क्या आपको यह सब देखने के लिये आँखों की या अन्य किसी अंग की आवश्यकता पड़ती है? 'स्वयं(मैं)' स्वतः ही अपने में भाव देख सकता है। इसी प्रकार, आप प्रत्यक्ष रूप से अपनी इच्छा, विचार, आशा इत्यादि को देख सकते हैं।

'स्वयं(मैं)' द्दष्टा है, यह 'स्वयं(मैं)' ही है, जो समझता है और इस समझने की प्रक्रिया में, जब भी आवश्यकता होती है तो 'शरीर' का एक यंत्र की तरह उपयोग करता है।

मैं कर्ता हूँ
(I am the Doer)

'स्वयं(मैं)' कर्ता है। कर्ता का अर्थ है; वह जो निर्धारित करता है; वह जो करने का निर्णय लेता है इत्यादि।

आप किसे कर्ता कहना चाहते हैं; वह जो निर्णय लेता है या वह जो सिर्फ अनुपालन करता है? उदाहरण के लिये अभी आप अपनी आँखों की सहायता से यह पुस्तक पढ़ रहे हैं। अब देखिये कि, पुस्तक पढ़ने

का निर्णय किसने लिया आँखों ने या आपके स्वयं ने? चूंकि आपके 'स्वयं(मैं)' ने निर्धारित किया है कि क्या करना है और क्या नहीं करना है अतः आपका 'स्वयं(मैं)' ही कर्ता है। इस निर्णय को लागू करने के लिये आप 'शरीर' का आवश्यकतानुसार उपयोग करते हैं।

आगे, 'स्वयं(मैं)' की कुछ क्रियायें ऐसी भी हैं, जिनमें 'शरीर' सम्मिलित नहीं होता है, जैसे इच्छा, विचार, और आशा इत्यादि। उस उदाहरण को याद कीजिये, जिसमें हमने दो घंटे तक बदला लेने का विचार किया था; और अंत में दो घंटे के बाद किसने उस विचार को छोड़ दिया था 'स्वयं(मैं)' ने या 'शरीर' ने? आप देख सकते हैं कि वह निर्णय 'स्वयं(मैं)' ने ही लिया था।

इस प्रकार से मैं कर्ता हूँ।

मैं भोक्ता हूँ (भोगने वाला)
I am the Enjoyer (Experiencer)

यह 'स्वयं(मैं)' ही है जो उत्साहित होने, अवसाद में जाने, क्रोधित होने या उत्तेजित होने की अवस्था को महसूस करता है- भाव 'स्वयं(मैं)' में हैं, 'शरीर' में नहीं। निःसंदेह इन भावों का प्रभाव 'शरीर' पर पड़ता है; यदि आप उत्साहित हैं तो आपका 'शरीर' अधिक ऊर्जावान होगा; यदि आप क्रोध में है तो आपके 'शरीर' के श्वास की गति तेज हो जायेगी इत्यादि।

यह 'स्वयं(मैं)' ही है जो सुख और दुख को भोगने वाला है, इस दृष्टि से मैं भोक्ता हूँ।

'स्वयं(मैं)' दृष्टा, कर्ता, भोक्ता है
(Self is the Seer-Doer-Enjoyer)

हम देख सकते हैं कि 'स्वयं(मैं)' दृष्टा, कर्ता, भोक्ता है, जबकि 'शरीर' एक यंत्र की तरह हैं; 'स्वयं(मैं)' इसका आवश्यकतानुसार उपयोग करता है। इसे स्व-सत्यापित करने का प्रयत्न करें।

'शरीर' एक स्व-व्यवस्थित प्रणाली और 'स्वयं(मैं)' के एक यंत्र के रूप में
(Body as a Self-organised System and an Instrument of the Self)

'शरीर' एक स्व-व्यवस्थित इकाई है। इसमें बहुत से अंग-प्रत्यंग हैं। प्रत्येक अंग, दूसरे अंग के साथ सह-अस्तित्व में है; व्यवस्था में है। आँखें अच्छी तरह से मस्तिष्क के साथ जुड़ी हुई हैं; मुँह, पेट और पूरा पाचन तंत्र ये सभी एक दूसरे के साथ सामंजस्य में हैं अर्थात् व्यवस्था में हैं और इसी तरह प्रत्येक प्रत्यंग, प्रत्येक कोशिका भी एक दूसरे के साथ सामंजस्य में है व्यवस्था में है और इन प्रत्येक अंग, प्रत्यंग या कोशिकाओं के आपस में जुड़े रहने के लिये या इनके आपसी सामंजस्य के लिये या पूरी व्यवस्था को बनाये रखने के लिये हमें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

जरा सोच कर देखिये कि यदि आपके 'शरीर' के अंग, प्रत्यंग एक दूसरे के विरोध में होते तो क्या होता? क्या होता यदि फेफड़े, हृदय के विरोध में चलने लगते; पेट, किडनी से संघर्ष करने लगता; हाथ, सिर से संघर्ष करने लगता इत्यादि। जरा कल्पना करके देखिये यदि हमें अपने 'शरीर' की प्रत्येक हड्डी का लेखा-जोखा रखना होता इनके आपसी संयोजन को रोज बनाना पड़ता तो क्या होता? अतः यह एक बहुत ही अच्छी बात है कि 'शरीर' एक स्व-व्यवस्थित इकाई है।

दो कोशिकाये जो एक बच्चे के 'शरीर' का आकार लेती हैं; वह 'शरीर' के रूप में, धीरे-धीरे पुष्ट होकर एक वयस्क के 'शरीर' के रूप में, पूर्णतय व्यवस्थित ढंग से बढ़ता है; जिसमें 'शरीर' की प्रत्येक कोशिका योगदान दे रही होती है। इस 'शरीर' के विभिन्न कोशिकाओं, अंगों और प्रत्यंगों के लिये जो भी

आवश्यक है, पाचन क्रिया के दौरान 'शरीर' उसको ग्रहण कर लेता है और 'शरीर' में जिन तत्वों की आवश्यकता नहीं होती है, उसे बाहर निकाल देता है। जब भी 'शरीर' में कोई अव्यवस्था होती है, तो सामान्यतः यह उसको स्वतः ही ठीक कर लेता है।

'शरीर' एक यंत्र के जैसा है, एक यंत्र जिसे आवश्यकतानुसार 'स्वयं(मैं)' अपने कार्यक्रम अर्थात् सुख एवं समृद्धि की पूर्ति के लिये उपयोग करता है। 'स्वयं(मैं)' की भूमिका 'शरीर' के साथ संयम को समझना है और इसके रखरखाव के लिये जो भी आवश्यक हो उसे करना है, जिससे इसमें व्यवस्था अर्थात् इसके स्वास्थ्य को बनाये रखा जा सके। इसी का अध्ययन हम आगे और विस्तार से करेंगे।

'स्वयं(मैं)' की 'शरीर' के साथ व्यवस्था
(Harmony of the Self with the Body)

चित्र. 7-3. का संदर्भ लीजिये। जैसे हम कोई यंत्र या उपकरण प्रयोग करते हैं तो यह जिम्मेदारी हमारी ही होती हैं कि हम इसे ठीक रखें, इसकी मरम्मत करें और उचित रखरखाव भी करें। उदाहरण के लिये, यदि मैं एक कार प्रयोग करता हूँ, तो यह मेरी ही जिम्मेदारी है कि कार की देखभाल करूँ, कार में पेट्रोल की पूर्ति करूँ, कार का दुर्घटना से बचाव करूँ इत्यादि।

'शरीर' के प्रति हमारी जिम्मेदारी इसके पोषण, संरक्षण और सदुपयोग की है। 'शरीर' के पोषण के लिये इसे शुद्ध हवा, जल, भोजन, सूर्य के प्रकाश इत्यादि की आवश्यकता होती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में इसके संरक्षण की भी आवश्यकता होती है। सदुपयोग का तात्पर्य यह है कि 'शरीर' का उपयोग, 'स्वयं(मैं)' के सही लक्ष्य की पूर्ति के लिये ही हो। 'शरीर' के प्रति इस जिम्मेदारी के भाव को ही संयम का भाव कहा है।

संयम का भाव = 'शरीर' के प्रति जिम्मेदारी का भाव अर्थात् 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग का भाव

संयम का अर्थ नियंत्रण करना या निरोध करना नहीं है, बल्कि यह 'शरीर' के प्रति जिम्मेदारी और निष्ठा को पहचानना है। 'स्वयं(मैं)' में संयम के इस भाव से, यह 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग को सुनिश्चित करने के लिये कार्यक्रम बना पाता है। जब 'स्वयं(मैं)' इस कार्यक्रम का क्रियान्वयन करने के योग्य हो जाता है तो 'शरीर' का अच्छा स्वास्थ्य सुनिश्चित हो पाता है।

'शरीर' का स्वास्थ्य =
1. 'शरीर', 'स्वयं(मैं)' के निर्देशों के अनुसार कार्य कर पाता है
2. 'शरीर' के अंग-प्रत्यंग व्यवस्था में हैं

यदि 'शरीर' स्वस्थ होता है, तो यह 'स्वयं(मैं)' के निर्देशों का अनुपालन कर पाता है। जब आप कहते हैं कि 'शरीर' को सुबह 5:00 बजे उठना है तो यह तरोताजा महसूस करते हुये उठ पाता है। जब आप 'शरीर' को फुटबॉल खेलने के लिये कहते हैं तो यह दौड़ पाता है और कूद भी पाता है। यदि आप अपने 'शरीर' को चार घंटे तक बैठने के लिये कहते हैं जिससे कि आप परीक्षा के लिये पढ़ सकें तो यह चार घंटे तक बिना किसी सहायता के सीधा बैठ पाता है। तो यह स्वस्थ 'शरीर' है। दूसरी तरफ यदि आपके निर्देश देने के बाद भी 'शरीर' उठ नहीं पाता है, दौड़ या भाग नहीं पाता है, सीधा नहीं बैठ पाता है, तो आप कहते हैं कि 'शरीर' बीमार है, 'शरीर' अस्वस्थ है। जब 'शरीर' 'स्वयं(मैं)' के निर्देश का पालन नहीं कर पाता है तो आपको पता चलता है कि 'शरीर' के स्तर पर कुछ न कुछ गड़बड़ है। 'शरीर' के स्वास्थ्य का पहला सूचक है कि 'शरीर', 'स्वयं(मैं)' के दिये गये निर्देशों के अनुसार कार्य कर पाता है।

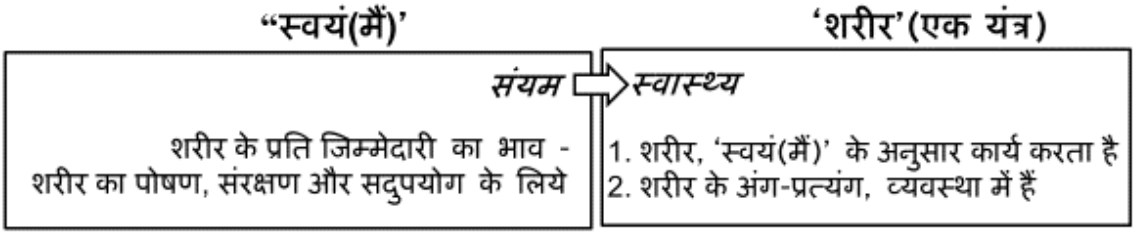

चित्र. 7-3. 'शरीर' में स्वास्थ्य और 'स्वयं(मैं)' में संयम

स्वस्थ 'शरीर' का दूसरा सूचक यह है, कि 'शरीर' के विभिन्न अंग एक दूसरे के साथ सामंजस्य में होते हैं, व्यवस्था में होते हैं। मानव-शरीर कई अंगों का संगठन है (जैसे कि अस्थियाँ, मांसपेशियाँ, श्वसन-तंत्र, पाचन-तंत्र, धमनियाँ, परिसंचरण-तंत्र, प्रजनन-तंत्र इत्यादि)। एक स्वस्थ 'शरीर' में यह सभी व्यवस्था में होते हैं। जब हम अपने मुंह में कुछ खाद्य पदार्थ रखते हैं, तो लार निकलनी शुरू हो जाती है, चबाते समय यह हमारे भोजन को मिलाने मे सहयोग देती है तथा भोजन को ग्लूकोस एवं स्टार्च में परिवर्तित करने में मदद करती है। गले के नीचे जाने से पहले भोजन लगभग आधे पाचन क्रिया से गुजर चुका होता है। इसी प्रकार से प्रत्येक तंत्र कुछ न कुछ कर रहा है और दूसरे तंत्रों के साथ व्यवस्था में भी है और अंततः सभी तंत्र व्यवस्था में हैं। साधारणतया जब तक 'शरीर' बीमार नहीं पड़ जाता अर्थात् 'शरीर' की व्यवस्था बिगड़ नहीं जाती तब तक हम इसके बारे में जागरूक नहीं होते हैं।

जब हमारा 'शरीर' स्वस्थ होता है, तब हम क्या करते हैं? यह 'स्वयं(मैं)' की जिम्मेदारी है कि वह, 'शरीर' का सदुपयोग करे अर्थात् ''स्वयं(मैं)' अपने 'शरीर' का उपयोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये करे। जैसा कि हमने देखा है कि हमारी मूल चाहना निरंतर सुख और समृद्धि की है अतः 'शरीर' के सदुपयोग का अर्थ भी यही है कि 'स्वयं(मैं)', 'शरीर' को इसी संदर्भ में उपयोग करे। 'स्वयं(मैं)' यह कर पाने के योग्य तभी हो पाता है, जब इसमें संयम का भाव होता है। यदि 'स्वयं(मैं)' में 'शरीर' के प्रति जिम्मेदारी का यह भाव नहीं होता है तो 'स्वयं(मैं)' अपने 'शरीर' का दुरुपयोग कर सकता है, जैसे मनपसंद संवेदना के माध्यम से सुख प्राप्त करने हेतु किसी स्वादिष्ट भोजन को अत्यधिक खा लेना और इस प्रक्रिया में 'शरीर' को अस्वस्थ बना लेना इत्यादि।

जहाँ तक 'शरीर' के स्वास्थ्य का संबंध है, 'स्वयं(मैं)' में संयम का भाव प्राथमिक है और 'शरीर' का स्वास्थ्य इसका सहज परिणाम है। क्या आप यह देख सकते हैं?

जब 'स्वयं(मैं)' में संयम का भाव होता है, तो 'शरीर' में स्वास्थ्य होता ही है और यह दोनों मिलकर 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' में व्यवस्था सुनिश्चित करते हैं।

वर्तमान स्थिति का अवलोकन
(Appraisal of the Current Status)

पिछले लगभग 100 वर्षों में जीने की उम्र लंबी हुई है, संक्रमणीय (communicable) बीमारियों से लड़ने में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है। इसके उपरांत भी अच्छा स्वास्थ्य सुनिश्चित करने पर प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है ही। जीवन शैली से जुड़े हुये विकार जैसे मोटापा, मदिरापान और इसी प्रकार से मानसिक विकार जैसे अवसाद (depression) इत्यादि बढ़ रहे हैं। बहुत अधिक व्यस्त जीवन शैली में स्वास्थ्य के लिये एक संपूर्ण कार्यक्रम बनाने के बजाय, तुरंत परिणाम की चाहना में दवाई एवं चिकित्सा की तरफ झुकाव अधिक हो गया है।

हमने अभी तक जो चर्चा की है, उसकी पृष्ठभूमि में जब हम इन समस्याओं को देखते हैं, तो यह वास्तविक समस्याये नहीं है, बल्कि उनके कुछ लक्षण मात्र हैं, वास्तव में समस्या तो गलत मान्यतायें हैं। उनमें से एक मान्यता यह भी है कि मानव केवल 'शरीर' है। जैसा हमने अध्याय-5 में विस्तारित किया

था कि, इस मान्यता के साथ, 'शरीर' के द्वारा मनपसंद संवेदना पाने के माध्यम से सुख ढूंढा जाता है। अधिक खाना, "जंक फूड" का उपभोग करना इत्यादि सामान्य बातें हैं। 'शरीर' अत्यधिक भोग या मनपसंद संवेदना की अति के कारण क्षतिग्रस्त हो जाता है। क्योंकि सुख की निरंतरता इस विधि से सुनिश्चित नहीं की जा सकती इसलिये व्यक्ति अनेक मार्गों से जैसे शराब, ड्रग्स, नशा इत्यादि का सहारा लेकर दुःख से बचना चाहता है, जो कि स्वास्थ्य को और अधिक खराब कर देता है।

दूसरी मान्यता यह है कि हम भौतिक सुविधा के उपभोग के द्वारा, प्राप्त संवेदना से सुख प्राप्त कर सकते हैं, इसी कारण इनकी मांग बढ़ गई है। भौतिक सुविधा का उत्पादन एवं बिक्री मुख्यत: लाभ के लिये हो गया है, अधिकांश उत्पादित खाद्यान्नों में बहुत अधिक मात्रा में हानिकारक रसायन हैं, जो मुख्यतः कृषि की प्रक्रिया में प्रयुक्त खाद एवं कीटनाशकों की वजह से है। भोज्य पदार्थों में मिलावट करना भी एक सामान्य बात हो गई है। यह और इस प्रकार की अन्य गतिविधियों से ग्रहण की जाने वाली वस्तुयें, भोजन, वायु, जल, यहाँ तक कि सूर्य का प्रकाश भी दूषित हो गया है।

वर्तमान के अधिकतर विकार मनो-दैहिक (psycho-somatic) प्रकार के हैं। मनो अर्थात् मानसिक जो 'स्वयं(मैं)' से संबंधित है और सोमेटिक अर्थात् दैहिक जो कि 'शरीर' से संबंधित है। 'स्वयं(मैं)' की स्थिति का 'शरीर' पर प्रभाव पड़ता है। इसका सामान्य उदाहरण यह है कि जब हम क्रोधित होते हैं तो ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है, श्वास की गति बढ़ जाती है। 'शरीर' की स्थिति का भी 'स्वयं(मैं)' पर प्रभाव पड़ता है। जैसे नहाने के बाद 'शरीर' तरोताजा लगता है जिसका 'स्वयं(मैं)' पर एक अच्छा प्रभाव पड़ता है। जब तक मानव "मैं 'शरीर' हूँ" की मान्यता के साथ जीयेगा इन प्रभावों की प्रमुखता रहेगी ही।

आगे का मार्ग
(The Way Ahead)

मानव जैसा है उसे वैसा ही समझने की आवश्यकता है। 'शरीर' और 'स्वयं(मैं)' के सह-अस्तित्व के रूप में मानव की आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति के लिये कार्यक्रम को भी समझना अनिवार्य है। इस मूल समझ के साथ, जीने में बहुत बड़ा बदलाव हो सकता है।

इसका महत्वपूर्ण भाग 'स्वयं(मैं)' में संयम का भाव होना है। यह तभी घटित हो सकता है, जब 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था हो अर्थात् 'स्वयं(मैं)' में सही-समझ और सही-भाव हो। संयम के भाव के साथ 'शरीर' का सहज रूप से पोषण, संरक्षण तथा सदुपयोग होगा ही। तब परिवार के स्तर पर व्यक्तिगत प्रयासों के द्वारा एक अच्छा वातावरण उपलब्ध कराने से, स्वास्थ्यवर्धक भोजन तथा घरेलू उपचार इत्यादि के सहयोग से मानव-शरीर का दीर्घकालिक स्वास्थ्य सुनिश्चित हो सकता है।

इस अध्याय में इसके कुछ पहलुओं का विस्तार किया गया है। इसके अलावा मानव को, परिवार एवं अन्य स्तरों पर भी संयम को सुनिश्चित करने के लिये विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता होगी।

स्वास्थ्य एवं संयम के लिये कार्यक्रम
(Programme for self-regulation and Health)

'स्वयं(मैं)' में जो संयम का भाव है, वह कैसे व्यक्त होगा? 'शरीर' के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये क्या कार्यक्रम होगा? इस प्रकार के कार्यक्रम में निश्चित रूप से 'शरीर' का पोषण, संरक्षण और सदुपयोग शामिल होगा। अब हम इसी का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

'शरीर' का पोषण
(Nurturing the Body)

जैसा हमने देखा है कि 'शरीर', प्राकृतिक रूप से एक व्यवस्थित संगठन है। 'शरीर' के पोषण का अर्थ है कि 'शरीर' को इसके अनुकूल आवश्यक वस्तुयें (इनपुट) ही उपलब्ध कराना। सही वस्तु (इनपुट) से बिना किसी अव्यवस्था के 'शरीर' का पोषण होता है। 'शरीर' अलग नहीं है, यह भी वातावरण का ही एक भाग है, जिस पर वातावरण का प्रभाव भी पड़ता ही है। 'शरीर' की स्थिति, ग्रहण की गयी वस्तु (इनपुट) और वातावरण यह सब साथ मिलकर 'शरीर' की अव्यवस्था का कारण बनते हैं। इन्हें ठीक करने के लिये औषधि या औषधि के साथ-साथ चिकित्सा की आवश्यकता होती है।

कुल मिलाकर 'शरीर' के पोषण तथा स्वास्थ्य को बनाये रखने के कार्यक्रम में निम्नलिखित भाग सम्मिलित होते हैं:

1a. आहार	1b. विहार
2a. श्रम	2b. व्यायाम
3a. आसन	3b. प्राणायाम
4a. औषधि	4b. चिकित्सा

1a. आहार: पहला भाग आहार है; आहार वह सब कुछ है, जिसे 'शरीर' अंदर लेता है। इसमें सांस के लिये वायु, पीने के लिये जल, अवशोषण (absorbs) के लिये सूर्य का प्रकाश, इसे दिया जाने वाला भोजन इत्यादि सम्मिलित है। 'शरीर' का इस योग्य होना आवश्यक है, कि वह पोषण और संरक्षण के लिये जो आहार आवश्यक है, उसे अंदर ले सके। वायु में आवश्यक तत्व जैसे ऑक्सीजन इत्यादि का होना आवश्यक है, जल में मानक शुद्धता, खाने के पदार्थ में आवश्यक सूक्ष्म तत्वों का होना आवश्यक है। भारत में अधिकांश स्थानों पर विटामिन डी के पर्याप्त अवशोषण के लिये 'शरीर' को लगभग दो घंटे प्रतिदिन धूप में रखना आवश्यक है। जहाँ तक भोजन का प्रश्न है, यह पोषक तत्वों से पूर्ण हो, आसानी से पचने योग्य हो और निःसंदेह 'स्वयं(मैं)' के लिये स्वादिष्ट भी हो। स्वाद एक तरीका है, जिसके द्वारा 'शरीर', भोजन की पहचान करके आवश्यक पाचक रस का स्राव करता है; 'शरीर' क्षारीय तथा अम्लीय भोजन के लिये अलग-अलग पाचक रस का स्राव करता है। निःसंदेह अविकसित 'स्वयं(मैं)' केवल स्वाद से सुख पाने के लिये ही, किसी विशेष प्रकार के भोजन की तरफ झुकाव रख सकता है। आहार का महत्वपूर्ण गुण यह है कि इसमें से 'शरीर' के द्वारा आवश्यक तत्वों के अवशोषण के बाद बाकी बचा हुआ अनावश्यक पदार्थ आसानी से 'शरीर' के बाहर निकल सके। यह सांस, पसीने एवं पाचन तंत्र के आखिरी भाग से निकलता है।

1b. विहार: 'शरीर' को स्वस्थ बनाये रखने के लिये नियमित दिनचर्या आवश्यक है। उदाहरण के लिये ऐसी दिनचर्या विकसित करने की आवश्यकता है, जिसमें जागने की, 'शरीर' की स्वच्छता की, भोजन करने की (और बीच-बीच में न खाने की), 'शरीर' से श्रम लेने की और सोने की क्रिया सम्मिलित हो। इसी प्रकार से दिनचर्या में मौसम के अनुसार परिवर्तन भी ज़रूरी है। उदाहरण के लिये, जब मौसम परिवर्तित होता है, तो पाचक तंत्र मन्द हो जाता है, अतः इन दिनों में परंपरागत रूप से उपवास रखा जाता है या हल्का भोजन लिया जाता है। इस प्रकार से प्रत्येक ऋतु में 'शरीर' को स्वस्थ्य रखने के लिये सही तालमेल आवश्यक है।

2a. श्रम: 'शरीर' के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये पर्याप्त शारीरिक व्यायाम और थकान भी आवश्यक है। 'शरीर' को स्वस्थ रखने के लिये भौतिक सुविधा की आवश्यकता तो होती ही है। श्रम वह प्रयास है जो मानव, शेष-प्रकृति पर करता है। श्रम के द्वारा 'शरीर' की आवश्यक व्यायाम सुनिश्चित होती हैं। श्रम की दो श्रेणियाँ हैं- पहली या प्रमुख श्रेणी जिसके परिणाम स्वरूप भौतिक सुविधा का उत्पादन होता है। लगभग चार से छः घंटे तक का दैनिक श्रम 'शरीर' को स्वस्थ बनाये रखने के लिये आवश्यक व्यायाम को सुनिश्चित कर देता है। यह महत्वपूर्ण है कि इतने श्रम से आवश्यक भौतिक

सुविधा से अधिक का उत्पादन भी किया जा सकता है। दस व्यक्तियों के परिवार के लिये खेत में दो घंटे श्रम करके पर्याप्त सब्जियाँ उगाई जा सकती हैं; साथ ही 'शरीर' की आवश्यक व्यायाम भी सुनिश्चित हो जाती हैं। आपके कमरे की सफाई और झाड़ लगाना भी श्रम ही है, जिससे आपके 'शरीर' का अच्छा व्यायाम हो जाता है और आपका कमरा भी साफ हो जाता है। पाँच किलोमीटर साइकिल चलाने से भी आपके 'शरीर' का पर्याप्त चलना फिरना हो जाता है। श्रम की दूसरी श्रेणी, सेवा है, जिसमें भौतिक सुविधाओं या 'शरीर' की देखभाल को सुनिश्चित किया जाता है, हालांकि इसमें कोई नई भौतिक सुविधा का उत्पादन नहीं होता। उपकरणों की मरम्मत, 'शरीर' की मालिश, बाल काटना, सेवा की गतिविधियां हैं, जो कि श्रम की दूसरी श्रेणी में आती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस श्रेणी में सेवा के साथ-साथ भावों का आदान-प्रदान प्रमुख हैं। अतः नाई के बाल काटने के अतिरिक्त, यह भी महत्वपूर्ण है कि वह किस भाव से वह बाल काट रहा है।

ऐसी जीवन शैली जिसमें उपयुक्त आहार, विहार, श्रम सम्मिलित हो, 'शरीर' के अच्छे स्वास्थ्य हेतु पर्याप्त है। यदि हम यह नहीं कर पाते हैं या इन प्रयासो के बावजूद भी 'शरीर' में कुछ अव्यवस्था हो जाये तो स्वास्थ्य और संयम के कार्यक्रम के कुछ और पहलू निम्नलिखित हैं-

2b. व्यायाम: व्यायाम में शारीरिक गतिविधि और थकावट आवश्यक है। श्रम एवं व्यायाम में प्रमुख अंतर यह है कि व्यायाम करने में कोई भौतिक सुविधा का उत्पादन नहीं होता। व्यायाम 'शरीर' के रखरखाव के लिये उपयोगी है, व्यायाम की विभिन्न विधियों में टहलना, कूदना, तैरना, वेटलिफ्टिंग एवं अनेक घर के भीतर तथा बाहर खेले जाने वाले खेल भी शामिल हैं।

3a. आसन: अनेक कारणों से जब आंतरिक या बाहरी अंगों में तनाव होता है तो 'शरीर' में अव्यवस्था हो जाती है। तब इस अव्यवस्था को संतुलित करने की आवश्यकता होती है, जिससे 'शरीर' वापस व्यवस्था में आ पाये। ऐसी अव्यवस्था होने का प्रमुख कारण कार्य अभ्यास की कमी, निष्क्रियता या कोई दुर्घटना हो सकती है। अतः उपयुक्त विधि के द्वारा आंतरिक तथा बाहरी अंगों को व्यवस्था में रखना आवश्यक है।

3b. प्राणायाम: श्वास लेना और छोड़ना 'शरीर' की एक महत्वपूर्ण क्रिया है। यदि किसी कारण से सांस लेने की क्रिया में कोई व्यवधान आ जाये तो 'शरीर' की व्यवस्था बिगड़ जाती है। इस स्थिति में 'शरीर' के सांस लेने की प्रक्रिया को उपयुक्त प्राणायाम अभ्यास के द्वारा सुनिश्चित किया जा सकता है।

अधिकांश अंगों के लिये, 'शरीर' का स्वास्थ्य इन तीन (1a & b, 2a & b, 3a & b) के द्वारा बनाकर रखा जा सकता है। इसके अलावा यदि 'शरीर' के स्वास्थ्य में कोई और समस्या हो तो हम औषधि लेते हैं और अंततः यदि इससे भी स्वास्थ्य सुनिश्चित न हो सके तो हमें चिकित्सा की आवश्यकता भी पड़ती है।

4a. औषधि: 'शरीर' में स्व-नियंत्रण उपलब्ध है और यह प्राकृतिक रूप से व्यवस्था में है। सामान्यतः 'शरीर' अपने में होने वाली समस्याओं से स्वयं ही उबर जाता है। उदाहरण के लिये यदि त्वचा कहीं पर कट गयी है, तो त्वचा में उस घाव को ठीक करने की क्षमता है ही। व्यवस्था में वापस आने के लिये औषधि सिर्फ 'शरीर' को सहायता प्रदान करती है। जैसे कटे हुये स्थान के ऊपर एंटीसेप्टिक क्रीम लगाने से यह 'शरीर' को किसी भी संभावित इंफेक्शन (संक्रमण) से बचाता है और 'शरीर' को वापस व्यवस्था में आने में सहायता करता है। उदाहरण के लिये हल्दी भी एक एंटीसेप्टिक है और यह कई प्रकार की सब्जियों एवं अन्य भोजन बनाने में प्रयोग होता है। इस तरीके से औषधि को भोजन का अंग बनाया जा सकता है। इस प्रकार का भोजन न केवल 'शरीर' को पोषण देता है, बल्कि 'शरीर' को इंफेक्शन (संक्रमण) आदि से भी सुरक्षित रखता है। जीवन शैली से संबंधित विकारों को ठीक करने में औषधियाँ सहयोगी हैं एवं ये औषधियाँ संक्रामक तथा असंक्रामक बीमारियों से बचाव करने में भी सहायक है।

4b. चिकित्सा: यदि ऐसा हो कि 'शरीर' स्वयं ठीक नहीं हो पा रहा है, अर्थात् व्यवस्था में नहीं आ पा रहा है तो चिकित्सा की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये यदि किडनी ठीक से कार्य नहीं कर पा रही है तो डायलिसिस एक उपयुक्त चिकित्सा है। इसी तरीके से यदि 'शरीर', रक्तशोधन (blood purification) का कार्य नहीं कर पा रहा है तो बाहरी यंत्र की सहायता से यह कार्य करना पड़ेगा। इसी प्रकार से यदि कोई दुर्घटना हो जाये तो 'शरीर' के कार्य करने के लिये सांस लेने की आवश्यकता को वेंटीलेटर के द्वारा पूर्ण किया जाता है, जिससे 'शरीर' अपने दूसरे हिस्सों का स्व-उपचार कर पाता है। इसी प्रकार से जीवन रक्षा के लिये कुछ औषधियाँ हैं, जैसे इंसुलिन इत्यादि जो 'शरीर' के उन अंगो के कार्य को करती हैं जिनको ठीक करना अब संभव न हो।

अतः अब आप यह देख सकते हैं कि 'शरीर' के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिये यह सही क्रम है या इसके लिये आपको कोई दूसरा क्रम और अधिक बेहतर लगता है।

'शरीर' की सुरक्षा
(Protecting the Body)

उपयुक्त भौतिक वातावरण, वस्त्र, आवास, औषधि इत्यादि उपलब्ध कराना 'शरीर' की सुरक्षा के लिये आवश्यक है।

'शरीर' को अत्यधिक गर्मी, सर्दी, बरसात इत्यादि से बचाने के लिये उपयुक्त वस्त्र आवश्यक हैं। जब 'शरीर' को आराम की आवश्यकता हो, तब इसके लिये आवास आवश्यक है। विषाणु इत्यादि से बचाने के लिये 'शरीर' को वैक्सीनेशन की भी आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार से अनेक सुरक्षात्मक उपाय 'शरीर' के लिये आवश्यक हैं।

'शरीर' जन्मता है; प्राकृतिक गति से इसका विकास होता है एवं प्राकृतिक रूप से इसका क्षय भी होता है; और अंततः यह विरचित हो जाता है अर्थात् मर जाता है। 'शरीर' के संरक्षण का तात्पर्य यह है कि 'शरीर' में होने वाली क्षरण (decay) की क्रिया प्रकृति सहज गति की तुलना में अधिक गति से न हो।

'शरीर' का सदुपयोग
(Right Utilization of the Body)

अध्याय-1 में हमने देखा कि किसी वस्तु का मूल्य, उसकी बड़ी व्यवस्था में भागीदारी है। मानव-शरीर के संदर्भ में, मानव एक बड़ी व्यवस्था है, इसीलिये मानव-शरीर के सदुपयोग का तात्पर्य, मानव की मूल चाहना की पूर्ति की प्रक्रिया में मानव-शरीर का उपयोग करना है।

यदि 'स्वयं(मैं)', 'शरीर' को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की प्रक्रिया में उपयोग कर रहा है, तो यह मेरे 'शरीर' का सदुपयोग है। यदि 'स्वयं(मैं)' अपने 'शरीर' का उपयोग, किसी अन्य कार्य के लिये कर रहा हूँ तो क्या आप इसे सदुपयोग कहेंगे?

अभी तक हमने देखा है कि, हमारी मूल चाहना निरंतर सुख और समृद्धि की है। 'शरीर' के सदुपयोग के द्वारा इस मूल चाहना की पूर्ति हो पायेगी। हमने देखा है कि सुख की आवश्यकता सही-समझ और सही-भाव से पूरी होती है। 'शरीर' के सदुपयोग का तात्पर्य 'शरीर' को 'स्वयं(मैं)' में सही-समझ और सही-भाव को सुनिश्चित करने के लिये उपयोग करना है। हमने यह भी देखा है कि समृद्धि की आवश्यकता को सही-समझ और भौतिक-सुविधाओं के द्वारा सुनिश्चित किया जा सकता है। अतः 'शरीर' के सदुपयोग में शेष-प्रकृति पर किये गये कार्य से उत्पादित आवश्यक भौतिक-सुविधा का संरक्षण और सदुपयोग भी सम्मिलित है।

'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के बीच व्यवस्था के प्रकाश में समृद्धि की पुनरावृत्ति

(Revisiting Prosperity in the Light of the Harmony between the Self and the Body)

मानव, 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' का सह-अस्तित्व है; इस समझ के प्रकाश में हम यह पहचान पाते हैं कि 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता निरंतर सुख है और 'शरीर' की आवश्यकता भौतिक सुविधा है। जिसे चित्र. 7-4. में दिखाया गया है। हमने यह भी देखा है कि हमारा सम्पूर्ण कार्यक्रम निरंतर सुख के लिये ही है। हमारे कार्यक्रम का एक छोटा भाग भौतिक सुविधा से संबंधित है। इस दृष्टि से समृद्धि का भाव, सुख के भाव का ही एक भाग है। एक बार जब हम 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' की आवश्यकताओं की पूर्ति के बारे में निश्चितता से समझ लेते हैं, तो हम यह देख पाते हैं कि प्रमुख रूप से भौतिक सुविधा सिर्फ हमारे 'शरीर' की आवश्यकता से ही जुड़ी हुई है।

एक बार जब 'स्वयं(मैं)' व्यवस्था में होता है तो, इसमें सहज रूप से संयम का भाव आता ही है, अर्थात् 'शरीर' के प्रति जिम्मेदारी का भाव आता ही है। अतः 'शरीर' के साथ व्यवस्था बनी रह पाती है। यदि 'स्वयं(मैं)' में संयम का भाव हो और 'शरीर' भी स्वस्थ हो तो ये दोनों मिलकर 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' में व्यवस्था सुनिश्चित कर सकते हैं। यदि हम यह देख पाते हैं तो भौतिक सुविधा की आवश्यकता के संबंध में महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल पाना संभव हो पाता है।

भौतिक सुविधा की आवश्यकता मूलतः 'शरीर' के प्रति जिम्मेदारी के भाव की पूर्ति के लिये है, अर्थात् हमें 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग मात्र के लिये ही भौतिक सुविधा की आवश्यकता है। हम इसे स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि इनमें से प्रत्येक को सुनिश्चित करने के लिये जो भौतिक सुविधा आवश्यक है उसकी आवश्यकता सीमित मात्रा में है या असीमित मात्रा में। इस स्पष्टता के साथ, हम यह भी समझ सकते हैं कि मात्र 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के लिये ही भौतिक सुविधा की आवश्यकता है। आइये इसे समझते हैं।

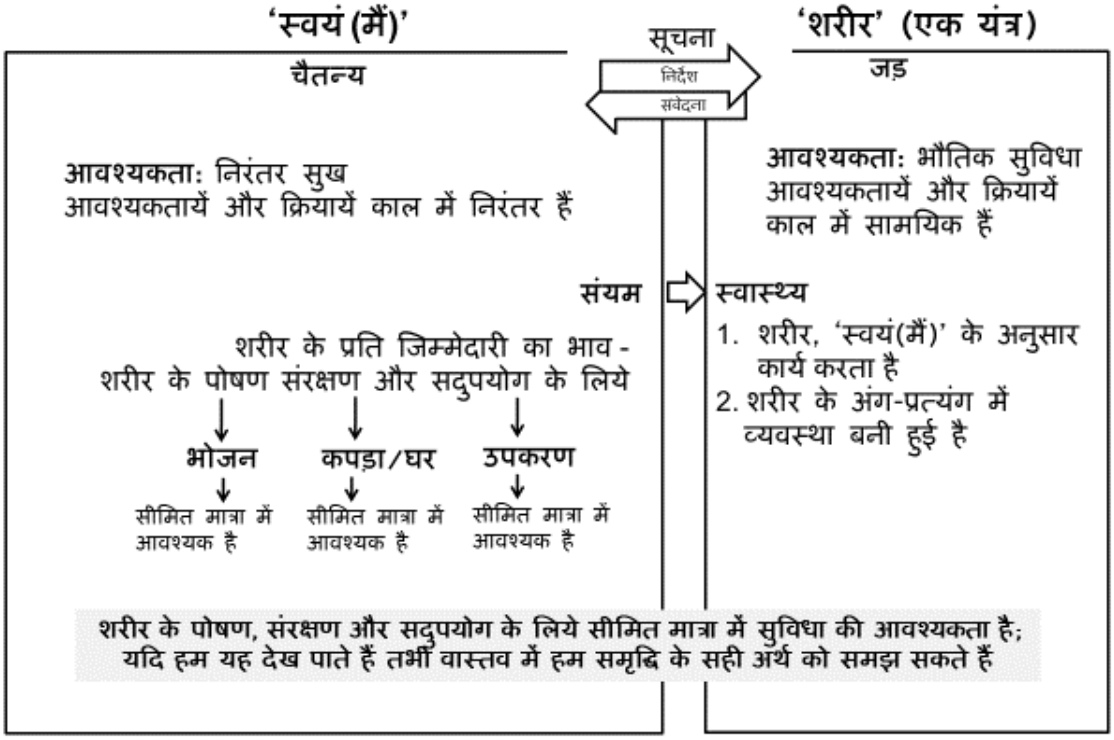

चित्र. 7-4. शरीर के लिये सुविधा की आवश्यकता सीमित मात्रा में है

आप यह देख सकते हैं कि 'शरीर' के पोषण के लिये भौतिक सुविधा सीमित मात्रा में आवश्यक है, जैसे भोजन सीमित मात्रा में चाहिये न की असीमित मात्रा में। एक व्यक्ति को एक दिन में एक किलो भोजन ही चाहिये, दूसरे व्यक्ति को पाँच किलो चाहिये, लेकिन ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जिसे असीमित मात्रा में भोजन चाहिये। इसी प्रकार से 'शरीर' के संरक्षण के लिये आवास इत्यादि हेतु अन्य वस्तुओं की आवश्यकता भी पड़ती है। कोई भी व्यक्ति असीमित संख्या में वस्त्रों को नहीं पहन सकता या असीमित आवास का उपयोग नहीं कर सकता। आप ही देखिये कि आपको 'शरीर' की सुरक्षा के लिये आवास की आवश्यकता एक सीमित मात्रा में होगी या असीमित मात्रा में होगी।

इसी तरह 'शरीर' के सदुपयोग के लिये भी हमें सीमित मात्रा में यंत्र, उपकरण इत्यादि की आवश्यकता होगी। उदाहरण के लिये जब हमें बड़ी संख्या में उपस्थित लोगों को संबोधित करना हो तो एक माइक की आवश्यकता होती है, जिससे प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति हमारी आवाज को सुन सके। यह माइक एक यंत्र है, जो हमारे 'शरीर' के सदुपयोग के लिये आवश्यक है। अब स्वयं से पूछिये कि आपको माइक की आवश्यकता सीमित मात्रा में है या असीमित मात्रा में? उत्तर तो वही मिलता है कि सीमित मात्रा। इसी प्रकार से आप अन्य दूसरे यंत्रों, उपकरणों के लिये भी देख सकते हैं कि 'शरीर' के सदुपयोग के लिये इनकी आवश्यकता हमें सीमित मात्रा में है या असीमित मात्रा में। परिवहन, संचार, टेलीविजन इत्यादि के साधन, उपकरण इत्यादि जो भी हम प्रयोग करते हैं, वह सब 'शरीर' के सदुपयोग के लिये ही हैं और ये सब भी सीमित मात्रा में ही आवश्यक हैं न की असीमित मात्रा में।

हमारी सभी भौतिक-सुविधा की आवश्यकताये इन तीन बातों से जुड़ी हुई हैं; पहला 'शरीर' का पोषण, दूसरा संरक्षण और तीसरा 'शरीर' के सदुपयोग की प्रक्रिया जो कि निःसंदेह रूप से 'स्वयं(मैं)' के लक्ष्य से संबंधित है, क्योंकि यही 'शरीर' का सदुपयोग करना चाहता है। क्या आपको इसके अलावा किसी अन्य लक्ष्य के लिये भी भौतिक सुविधाओं की आवश्यकता है? जाँच करके देखिये, यह आपके लिये एक और गृह-कार्य है।

जब तक आप यह पहचानने के योग्य न हो जाये कि भौतिक सुविधा की आवश्यकता सीमित है अर्थात् आपके 'शरीर' को भौतिक सुविधा सीमित मात्रा में ही आवश्यक है, तब तक आपको समृद्धि की कोई भी संभावना दिखाई नहीं दे सकती। आज यही हो रहा है, क्योंकि भौतिक सुविधा की आवश्यकता को हम पहचान नहीं पाते हैं, इसलिये हमने चाहे कितना भी संग्रह कर लिया हो; इसके उपरांत भी हमारे अंदर आवश्यकता से अधिक होने का भाव कभी आता ही नहीं है अर्थात् हममें समृद्धि का भाव कभी आ ही नहीं पाता है। हममें अधिक से अधिक संग्रह करने का भाव बना ही रहता है। यहाँ पर जो हो रहा है, वह यह है, कि हम मानव को 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के सह-अस्तित्व के रूप में नहीं समझ पाये हैं। अतः हम 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' की आवश्यकताओं के बारे में भ्रमित रहते हैं इसलिये हम 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकताओं को भौतिक सुविधाओं के द्वारा पूरा करना चाहते हैं, जिसके कारण हम इस असीमित सुविधा संग्रह करने के कुचक्र में फंसे रहते हैं।

क्या आप यह देख पा रहे हैं कि, आपकी भौतिक सुविधाओं की आवश्यकता सीमित मात्रा में है? यदि आप यह देख पाने में सफल होते हैं तभी आप समृद्धि के सही अर्थ को समझ पायेंगे।

आइये अब अध्याय-4 में दी गई समृद्धि की परिभाषा को याद करते हैं और आगे बढ़ते हैं।

आवश्यकता से अधिक भौतिक सुविधा ('शरीर' के पोषण, संरक्षण तथा सदुपयोग के लिये) का उत्पादन या उपलब्धता का भाव ही समृद्धि है।

आवश्यकता से अधिक के भाव को सुनिश्चित करने के लिये दो बातें आवश्यक हैं:

1. सही-समझ के द्वारा आवश्यक भौतिक सुविधा की मात्रा की पहचान
2. आवश्यकता से अधिक भौतिक-सुविधा के उत्पादन या उपलब्धता को सुनिश्चित करना

भौतिक सुविधा की आवश्यकता की पहचान सही-समझ से हो सकती है और इस आवश्यक मात्रा से अधिक भौतिक सुविधा का उत्पादन एवं उपलब्धता, सही-कौशल से सुनिश्चित किया जा सकता है। समृद्धि के भाव के लिये दोनों ही आवश्यक हैं। समृद्धि के लिये सही-समझ और भौतिक सुविधा (सही-कौशल के द्वारा) दोनों का होना आवश्यक है।

1. आवश्यक भौतिक-सुविधा की मात्रा की पहचान- सही-समझ के द्वारा
2. आवश्यकता से अधिक भौतिक सुविधा के उत्पादन या उपलब्धता को सुनिश्चित करना- सही कौशल के द्वारा

समृद्धि को लेकर अनेक भ्रम या मान्यतायें प्रचलित हैं।

पहला भ्रम यह है कि मानव केवल 'शरीर' है। अत: 'शरीर' की संवेदनाओं के द्वारा सुख प्राप्त किया जा सकता है, जिसके लिये भौतिक-सुविधा की आवश्यकता होगी (अनिश्चित और असीमित मात्रा में)। इसे हमने अध्याय-5 में अध्ययन किया था।

दूसरा भ्रम जीवन के लक्ष्य को लेकर है, इसलिये भौतिक-सुविधा कितना हो इसके लिये भी भ्रम बना हुआ है। यदि जीवन का लक्ष्य इंद्रिय भोग मान लिया जाये तो सुविधाओं के सदुपयोग के बजाय दुरुपयोग ही होता है। आप स्वयं से पूछ सकते हैं कि आपको क्या सहज स्वीकार्य है?

- **भोग-** सुविधा के उपभोग से मिलने वाली संवेदना से सुखी होने का प्रयास
- **त्याग –** भौतिक-सुविधा के प्रयोग से बचने का प्रयास
- **सदुपयोग –** भौतिक-सुविधा का 'स्वयं(मैं)' के लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उपयोग करने का प्रयास अर्थात् 'स्वयं(मैं)' में सही-समझ और सही-भाव सुनिश्चित करने के लिये उपयोग करने का प्रयास

तीसरा भ्रम यह है कि, मानव के लिये आवश्यक भौतिक सुविधाओं की कमी है। निःसंदेह यह हमारी पहली मान्यता कि 'मानव 'शरीर' है' का ही निष्कर्ष है। यदि हम वास्तविक उत्पादन को देखें जैसे खाद्यान्न का उत्पादन, ऐसी रिपोर्ट है कि पृथ्वी पर प्रत्येक व्यक्ति के लिये 600 किलोग्राम खाद्यान्न प्रतिवर्ष की दर से उपलब्ध है। एक वयस्क व्यक्ति औसतन लगभग 100 किलोग्राम खाद्यान्न ही प्रतिवर्ष उपभोग कर पाता है। जबकि बच्चों एवं वृद्धों की आवश्यकता तो इससे कम ही होती है। यह उपलब्ध उत्पादन हमारी आवश्यकता का लगभग 6 गुना है। आप अपने लिये ही पता कर सकते हैं कि आपके लिये वास्तविक आंकड़े क्या है? आप उत्पादन संबंधी आंकड़े अपने गांव, जिले, या प्रदेश, यहाँ तक कि पूरे विश्व के लिये भी पता कर सकते हैं।

एक बार जब आप अपनी इन मान्यताओं का मूल्यांकन करेंगे तो आप अपनी भौतिक-सुविधा की आवश्यकताओं की उचित मात्रा की पहचान भी कर पायेंगे। अब आप अपनी आवश्यकता की इस उचित मात्रा की पहचान के साथ स्वयं जाँच कर देख सकते हैं कि आपके पास आवश्यकता से अधिक है या नहीं; और समृद्धि का भाव है या नहीं। समृद्धि के भाव के साथ आप सदुपयोग के बारे में सोच सकते हैं; दूसरों का पोषण करने के बारे में सोच सकते हैं। आप इनके उत्पादन के बारे में भी सोच सकते हैं। दूसरी तरफ यदि आप में दरिद्रता का भाव है, तो आप संग्रह के बारे में और दूसरों का शोषण करने के बारे में ही सोचते हैं।

- एक समृद्ध व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों का पोषण करने और भौतिक-सुविधा का सदुपयोग करने के बारे में सोचता है और करता भी है।

(जबकि एक दरिद्र व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों का शोषण करने और भौतिक-सुविधाओं का संग्रह करने के बारे में सोचता है और करता भी है।)

अब आप यह देख सकते हैं कि आप क्या सोचते हैं? क्या आप दूसरों का शोषण करने के बारे में सोचते हैं या दूसरों का पोषण करने के बारे में सोचते हैं? क्या आप सदुपयोग के बारे में सोचते हैं या संग्रह

करने के बारे में सोचते हैं? यही आपको बतायेगा कि आप समृद्ध हैं या दरिद्र हैं। इस परिभाषा के साथ आप अपने लिये यह तय कर सकते हैं कि आप समृद्ध हैं या समृद्ध नहीं हैं।

समृद्धि वास्तव में तभी समझी जा सकती है, जब हम मानव को 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के सह-अस्तित्व के रूप में समझ पाये। मानव के अच्छे स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये अर्थात् उसके 'शरीर' के पोषण एवं संरक्षण के लिये भौतिक-सुविधा की आवश्यकता है; और भौतिक-सुविधा, 'शरीर' के सदुपयोग के लिये भी आवश्यक है। मानव-शरीर, 'स्वयं(मैं)' के अंतःविकास तथा बाहर सामाजिक विकास के लिये एक साधन है।

मेरे 'स्वयं(मैं)' और मेरे 'शरीर' के प्रति मेरी भागीदारी (मूल्य)

(My Participation (Value) regarding my Self and my Body)

('स्वयं(मैं)' और 'शरीर' में व्यवस्था बनाये रखने के लिये प्रयास)

(To Make effort for Harmony in the Self and the Body)

जैसा की हमने अध्ययन किया कि मानव स्वयं (चैतन्य) और शरीर (जड़) का सह-अस्तित्व है। यह 'स्वयं(मैं)', निरंतर क्रियाशील है। अतः 'स्वयं(मैं)' के लिये मेरी भागीदारी (मूल्य) श्रेष्ठता के लिये प्रयास करना है, अर्थात् अपने जीने के सभी स्तरों में व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना है।

मेरा 'स्वयं(मैं)' के साथ मेरी भागीदारी (मूल्य), निम्नलिखित विधि से 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था को सुनिश्चित करता है:

- 'स्वयं(मैं)' में सही-समझ और सही-भाव सुनिश्चित करना अर्थात् संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व की समझ और भाव सुनिश्चित करना। यही सही-समझ और सही-भाव मेरी कल्पनाशीलता के मार्गदर्शक बन जाते हैं।

- यह सुनिश्चित करना कि मेरी कल्पनाशीलता, मेरी सही-समझ और सही-भाव के द्वारा निर्देशित हो रही है, अर्थात् मेरी सहज स्वीकृति पर आधारित है। इस प्रकार से कल्पनाशीलता के अन्य स्रोतों जैसे मान्यताओं एवं संवेदनाओं से आने वाली सूचनाओं का सही मूल्यांकन होना। और मेरे संस्कारों का उत्तरोत्तर मूल्यांकन होना, जब तक कि केवल सहज स्वीकृति एवं व्यवस्था आधारित संस्कार ही शेष न रह जायें।

उपरोक्त दोनों को सुनिश्चित करके ही 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था सुनिश्चित होगी। अर्थात् "जैसा मैं हूँ" और "जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है" में व्यवस्था हो पायेगी। जिससे 'स्वयं(मैं)' में निरंतर सुख सुनिश्चित हो पायेगा। यही मेरी 'स्वयं(मैं)' के प्रति भागीदारी (मूल्य) है।

ये मूल्य सुख, शांति, संतोष एवं आनंद के रूप में व्यक्त होते हैं।

मेरी भागीदारी (मूल्य), मेरे 'शरीर' के साथ निम्नलिखित विधियों से व्यवस्था सुनिश्चित करता है:

- 'स्वयं(मैं)' में संयम के भाव को सुनिश्चित करना
- 'शरीर' का पोषण, संरक्षण और सदुपयोग को सुनिश्चित करना
- उपरोक्त के लिये आवश्यकता से अधिक भौतिक-सुविधा का उत्पादन या उपलब्धता को सुनिश्चित करना

इन तीनों को सुनिश्चित करने से मेरा 'शरीर' निरंतर व्यवस्था में रह पाता है। यही मेरे 'शरीर' के साथ मेरी भागीदारी (मूल्य) है।

यह मूल्य संयम के भाव के रूप में व्यक्त होता है।

मुख्य बिंदु
(Salient Points)

- मानव के अस्तित्व के केंद्र में 'स्वयं(मैं)' ही है। यही दृष्टा है अर्थात् जो समझने वाला है; यही कर्ता है अर्थात् जो निर्णय लेने वाला है; यही भोक्ता है या भोगने वाला है अर्थात् जो सुख या दुख महसूस करता है। 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता निरंतर सुख है, जो कि सभी स्तरों अर्थात् मानव, परिवार, समाज, और प्रकृति/ अस्तित्व में व्यवस्था को समझने और व्यवस्था में जीने से सुनिश्चित होता है।

- 'शरीर' एक स्व-व्यवस्थित, जड़ इकाई है, जिसका उपयोग 'स्वयं(मैं)' यंत्र या उपकरण के रूप में करता है। इस स्पष्टता के साथ 'स्वयं(मैं)', 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग की जिम्मेदारी को स्वीकारता है। जिम्मेदारी का यही भाव, संयम का भाव कहलाता है।

- संयम के भाव के साथ 'स्वयं(मैं)', 'शरीर' के साथ व्यवस्था को सुनिश्चित करने के योग्य हो पाता है जिससे 'शरीर' में स्वास्थ्य सुनिश्चित होता है, अर्थात् 'शरीर' 'स्वयं(मैं)' के अनुसार कार्य कर पाता है और 'शरीर' के अंग-प्रत्यंग में व्यवस्था बनी रह पाती है।

- संयम और स्वास्थ्य के लिये निम्नलिखित कार्यक्रम हैं-

1a. आहार	1b. विहार
2a. श्रम	2b. व्यायाम
3a. आसन	3b. प्राणायाम
4a. औषधि	4b. चिकित्सा

- भौतिक-सुविधा 'शरीर' की आवश्यकता है, इसलिये भौतिक-सुविधा का उत्पादन, संरक्षण और सदुपयोग (स्वयं के लक्ष्य की पूर्ति हेतु) मानव के कार्यक्रम का एक भाग है।

- भौतिक-सुविधा 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग (स्वयं के लक्ष्य की पूर्ति हेतु) के लिये सीमित मात्रा में आवश्यक है, इस स्पष्टता के साथ अब हम समृद्धि का अर्थ समझ सकते हैं।

आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने का भाव ही समृद्धि है ('शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के लिये)।

हम यह भी समझ सकते हैं कि समृद्धि के लिये निम्नलिखित की आवश्यकता है:
1.आवश्यक भौतिक-सुविधा की मात्रा की पहचान- सही-समझ के द्वारा
2.आवश्यकता से अधिक भौतिक-सुविधा के उत्पादन या उपलब्धता को सुनिश्चित करना- सही कौशल के द्वारा

- वैश्विक खाद्यान्न उत्पादन आंकड़े इंगित करते हैं कि पृथ्वी पर लोगों के लिये उनकी वास्तविक आवश्यकता से कई गुना अधिक उत्पादन हो रहा है। इसलिये जहाँ तक भोजन का संबंध है सभी के लिये समृद्धि संभव लगती है। इसके लिये हमें सही-समझ औरसम्बंध में सही-भाव की आवश्यकता है।

अभ्यास 2

मैं (चैतन्य) के द्वारा मैं (चैतन्य) को देखना

शरीर को देखना मैं (चैतन्य) और शरीर के बीच होने वाले आदान-प्रदान को देखना

पुनरावृत्ति: पिछली कक्षा में आपने ये अभ्यास किया
अभ्यास 2: मैं (चैतन्य) और शरीर के बीच होने वाले आदान-प्रदान को देखना

1. मैं (चैतन्य) हूँ, शरीर है - यह दोनों अलग अलग वास्तविकताएं हैं
2. मैं और शरीर के बीच सिर्फ सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है
3. शरीर को क्या संकेत देना है, किस संवेदना को पढना है – इसका निर्णय मैं लेता हूँ

अब हम आगे का अभ्यास करेंगे
अभ्यास 2 Step 4: मैं (चैतन्य) और शरीर के बीच दूरी है- इस को देखना
जब मैं शरीर में होने वाली संवेदना को पढ़ रहा हूँ, तो

- क्या मैं संवेदना हूँ?
- क्या मैं संवेदना में हूँ?
- क्या मेरे और संवेदना के बीच में दूरी है?

- मैं संवेदना नहीं हूँ
- मैं संवेदना में नहीं हूँ
- मेरे और संवेदना के बीच दूरी है

मैं संवेदना से दूर होते हुए भी संवेदना को पढ़ पाता हूँ (शरीर के विभिन्न भागों में, किसी भी जगह होने वाली संवेदना को मैं अपने निर्णय अनुसार पढ़ता हूँ)
मेरे और संवेदना के बीच दूरी है
मै और शरीर के बीच दूरी है

गृहकार्य Step 4
1. शरीर के किसी भाग में संवेदना को देखना है जैसे खुजली हो रही हो, गुदगुदी हो रही हो, दर्द हो, कम्पन हो इत्यादि। ध्यान देना है कि:

- क्या मैं संवेदना हूँ?
- क्या मैं संवेदना में हूँ?
- क्या मेरे और संवेदना के बीच में दूरी है?

2. इसी प्रकार से शरीर के दूसरे भागों में संवेदना को देखना है
3. इस अभ्यास को दिन भर करना है

अभ्यास 2 step 5 बाहर की घटना का, शरीर का प्रभाव तथा मेरा निर्वाह

संवेदना के स्रोत:

1. दूसरा जो व्यवहार करता है, उसका प्रभाव पहले मेरे शरीर तक पहुँचता है (ध्वनि, स्पर्श), उसके तहत शरीर में संवेदना होती है
2. बाहर की परिस्थिति, भौतिक रासायनिक घटना (ठंडक, गर्मी...), इन सब का प्रभाव मेरे शरीर तक पहुँचता है, उसके तहत शरीर में संवेदना होती है
3. शरीर में जो घटना घट रही है, उसके तहत भी शरीर में संवेदना होती रहती है (सर दर्द, बदन दर्द...)

इनमें से कोई भी प्रभाव मैं (चैतन्य) तक सीधा-सीधा नहीं पहुँचता
इनका प्रभाव संवेदना के रूप में शरीर पर पड़ता है
इन संवेदनाओं को पढ़ना है (आस्वादन करना है) या नहीं, इसका निर्णय मैं (चैतन्य) करता हूँ
मैं उन्हीं संवेदनाओं को पढ़ता हूँ , जिन्हें महत्वपूर्ण मानता हूँ
मैं उन्हें तभी पढता हूँ, जब उन्हें पढ़ना मुझे आवश्यक लगता है
इन संवेदना को मैं (चैतन्य) कैसे देखता है, प्रयोग करता है – इसके विस्तार को आगे देखेंगे

1. **दूसरे मनुष्य का व्यवहार** (बोल-चाल, शरीर-संकेतों द्वारा अभिव्यक्त)
   → कोई शारीरिक क्रिया (बोलना) → मेरे शरीर पर प्रभाव → संवेदना
   → मैं संवेदना का आस्वादन करता हूँ, मैं अपने संस्कार (मान्यता या समझ आधारित) के साथ जोड़ कर उसको अर्थ देता हूँ

2. **बाहर की कोई भौतिक रासायनिक क्रिया** (गर्मी, सर्दी, स्वादिष्ट भोजन...)
   → मेरे शरीर पर प्रभाव → संवेदना
   → मैं संवेदना का आस्वादन करता हूँ, मैं अपने संस्कार (मान्यता या समझ आधारित) के साथ जोड़ कर उसको अर्थ देता हूँ

3. **शरीर में कोई घटना** (सर दर्द, बदन दर्द,...)
   → संवेदना
   → मैं संवेदना का आस्वादन करता हूँ, मैं अपने संस्कार (मान्यता या समझ आधारित) के साथ जोड़ कर उसको अर्थ देता हूँ

Step 5 संवेदना को अर्थ देना (बाहर की घटना) और उसका मुझ पर प्रभाव

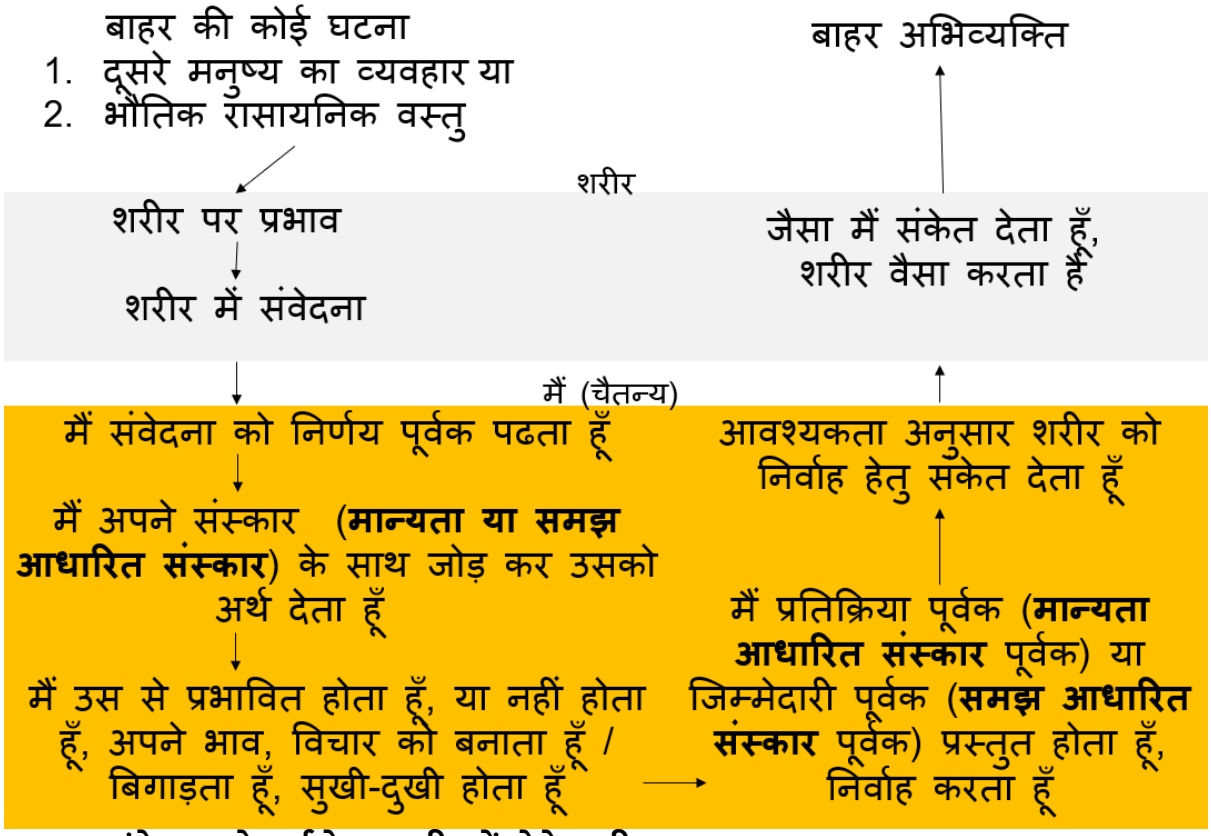

Step 5 संवेदना को अर्थ देना (शरीर में होने वाली घटना)

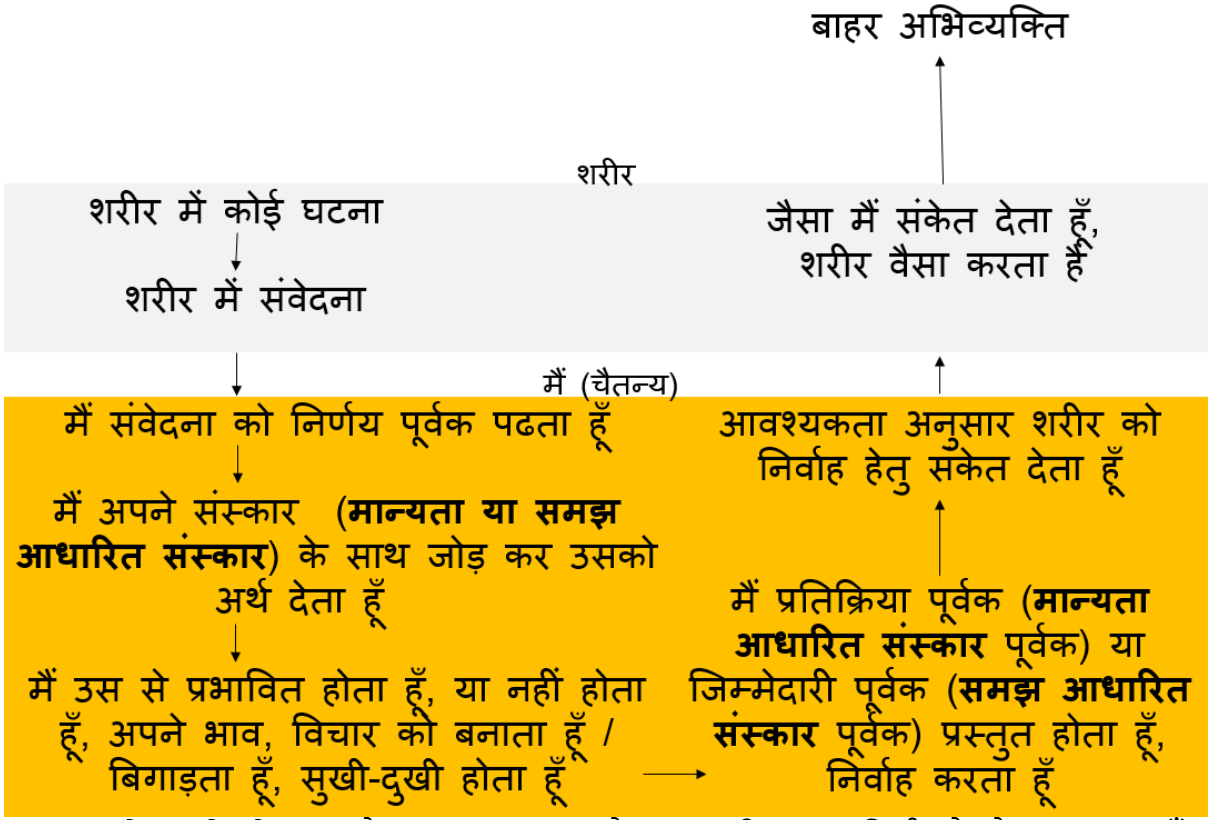

1. संवेदनाओं को पढ़ना है (आस्वादन करना है) या नहीं, इसका निर्णय मैं (चैतन्य) करता हूँ – यह इस बात पर निर्भर करता है कि मैं किन संवेदनाओं को महत्वपूर्ण मानता हूँ (अपने संस्कार के आधार पर)

2. संवेदना को अर्थ देना - अपने संस्कार के आधार पर
3. अपने संस्कार के आधार पर मैं संवेदनाओं से प्रभावित होता हूँ, या नहीं होता हूँ; उसी के अनुरूप मैं अपने भाव तय करता हूँ

यह सब मेरे संस्कार पर निर्भर करता है

मुझे अपने संस्कार को देखने की जरूरत है

यदि मेरा संस्कार

- सही समझ पर आधारित है - मेरे भाव सहज रहते हैं, मैं सुखी रहता हूँ; बाहर से आने वाले सूचना का ठीक ठीक मूल्यांकन करता हूँ और जिम्मेदारी पूर्वक प्रस्तुत होता हूँ, निर्वाह करता हूँ
- मान्यता पर आधारित है - मेरे भाव निश्चित नहीं रहते, मैं सूचना का गलत मूल्यांकन भी कर सकता हूँ, आवेशित हो कर प्रतिक्रिया कर सकता हूँ, दुखी हो सकता हूँ

इसीलिए, मुझे अपने संस्कार को देखने की जरूरत है कि

- यह सही समझ पर आधारित है ? या
- यह मान्यता पर आधारित है ?

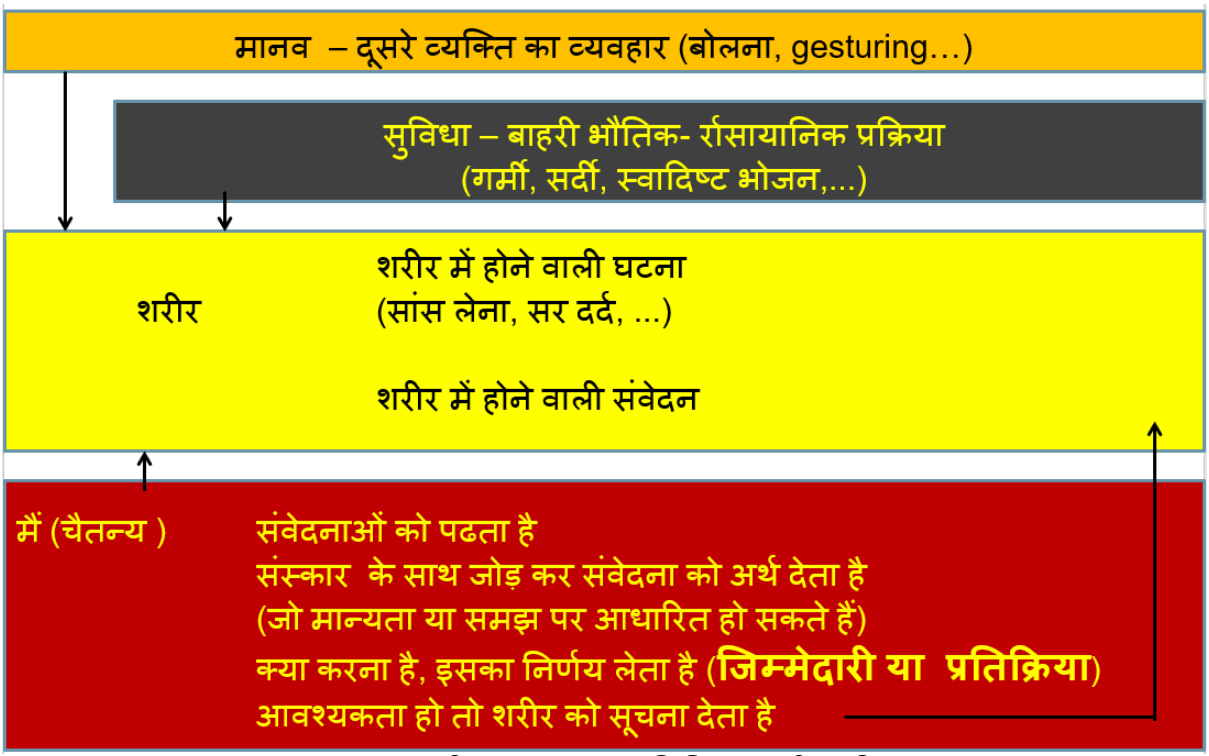

अभ्यास 2 Step 6A: मान्यता आधारित संस्कार - प्रतिक्रिया पूर्वक जीना, परतंत्रता

यदि मेरे संस्कार मान्यता पर आधारित हैं
मैं स्वयं में निरंतर सुख की स्थिति को सुनिश्चित नहीं कर पाता हूँ, इसीलिए
बाहर से (संवेदना से या दूसरों से भाव पाकर) सुख पाने के प्रयास में लगा रहता हूँ

यदि मेरे निर्णय संवेदना से प्रभावित होते हैं,
मुझे संवेदना या दूसरे से मिलने वाला भाव अनुकूल लगता है (अपने संस्कार के आधार पर) तो
– मैं "सुखी" हो जाता हूँ (आवेशित)

मैं इस अनुकूल संवेदना को बनाए रखना चाहता हूँ (तृष्णा, राग, आसक्ति,...)
मैं अनुकूल भाव को बनाए रखने के पक्ष में ही निर्णय करता हूँ और अन्दर ही अन्दर प्रतिक्रिया करता हूँ
मुझे संवेदना या दूसरे से मिलने वाला भाव प्रतिकूल लगता है (अपने संस्कार के आधार पर) तो
– मैं दुखी हो जाता हूँ (आवेशित)
मैं इस संवेदना को हटाना चाहता हूँ (द्वेष...)
मैं प्रतिकूल भाव के विपरीत निर्णय करता हूँ और अन्दर ही अन्दर प्रतिक्रिया करता हूँ
यदि मेरे निर्णय संवेदना से प्रभावित होते हैं तो
अलग अलग स्थिति परिस्थिति में मैं प्रभावित हो जाता हूँ,
अपनी प्रतिक्रिया को शरीर के माध्यम से बाहर अभिव्यक्त करता हूँ

- दूसरे जो भी भाव अभिव्यक्त करते हैं, उसपर प्रतिक्रया (उनकी चाहना पर शंका करना, गुस्सा होना)
- भौतिक रासायनिक परिवर्तन के प्रति (ठण्ड के मौसम में आवश्यकता से अधिक कपडे पहनना)
- शरीर की स्थिति के प्रति (सर दर्द के लिए डाक्टर को बुलाना या बुखार को बहुत ही हलके में लेना)

अभ्यास 2 Step 6B: समझ आधारित संस्कार - जिम्मेदारी पूर्वक जीना, स्वतंत्रता
यदि मेरे निर्णय सही समझ पर आधारित होते हैं तो
मैं निरंतर आराम में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ
मैं संवेदना का उपयोग शरीर या बाहर का ठीक ठीक मूल्यांकन करने में करता हूँ और
यह तय करता हूँ कि कैसे अभिव्यक्त होऊँ
(किस प्रकार परस्पर पूरक हो पाऊँ)

- दूसरे जो भी भाव अभिव्यक्त करते हैं, वह उनकी स्थिति को दर्शाता है

(यदि दूसरा आवेशित है या गुस्सा करता है → उसमें सही समझ नहीं है, वह परेशान है, उसे मदद की जरूरत है; उसे आश्वश्त करने के लिए मैं क्या कर सकता हूँ; अपनी तरफ से सही भाव (सम्मान, विश्वास ,...) से प्रस्तुत हो सकता हूँ → सही समझने में उसका सहयोग कर सकता हूँ ...)

- वातावरण में होने वाला भौतिक-रासायनिक परिवर्तन

(कितनी ठण्ड है उसके अनुरूप कपड़े पहनना)

- शरीर की स्थिति का मूल्यांकन

(सर दर्द शायद यह संकेत कर रहा हो कि शरीर में पानी की मात्रा को बढाने की आवश्यकता है)
मैं शरीर के माध्यम से अपने भाव विचार को बाहर व्यक्त करता हूँ

- दूसरे का व्यवहार/ कार्य, भौतिक रासायनिक परिवर्तन, शरीर की स्थिति, इन सबका मेरे सुख की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है – मैं स्वतंत्र रहता हूँ, स्वयं में व्यवस्थित रहता हूँ

स्वयं में सही समझ के आधार पर, मेरा भाव और विचार सही रहता है
(मेरा भाव, विचार सही समझ के आधार पर तय होता है और किसी बाहरी घटना से प्रभावित नहीं होता)
मैं आराम में रहता हूँ, और निरंतर सुखी रहता हूँ
बाहरी संकेतों को मैं अपने शरीर या बाहर की स्थिति का मूल्यांकन करने में प्रयोग करता हूँ

मेरी इच्छाएँ (भाव) निश्चित रहती हैं और मैं सम्बन्ध में अपनी जिम्मेदारियों को समझता हूँ:

- अपने शरीर के साथ (संरक्षण, संवर्धन और सदुपयोग)
- दूसरे मानव के साथ (व्यवहार → न्याय, उभय सुख)
- शेष प्रकृति के साथ (कार्य → उभय समृद्धि)
- बड़ी व्यव्यस्था में (भागीदारी → मानवीय समाज)

बाहरी संकेतों और घटनाओं का ठीक ठीक मूल्यांकन करके, मैं यह तय करता हूँ कि दी गयी स्थिति परिस्थिति में मैं किस प्रकार परस्पर पूरक हो सकता हूँ; किस प्रकार अपनी जिम्मेदारी का ठीक-ठीक निर्वाह कर सकता हूँ
मैं जिम्मेदारी से प्रस्तुत होता हूँ

अभ्यास 2 Step 6A: मान्यता आधारित संस्कार - प्रतिक्रिया पूर्वक जीना, परतंत्रता

A. बाहर कोई घटना (दूसरे का व्यवहार-कार्य) → शरीर पर प्रभाव → संवेदना
B. शरीर में कोई घटना → संवेदना

→ मैं संवेदना को निर्णय पूर्वक पढता हूँ

→ मैं अपने संस्कार (मान्यता आधारित) के साथ जोड़ कर उसको अर्थ देता हूँ

A. संवेदना को पढने के आधार पर बाहर की घटना (दूसरे का व्यवहार-कार्य) का आंकलन करता हूँ
दूसरे का व्यवहार-कार्य... ध्वनि – शब्द – अर्थ – दूसरे के व्यवहार-कार्य, भाव के बारे में मेरा आंकलन
बाहर भौतिक-रासायनिक घटना → शरीर पर प्रभाव → संवेदना (सूचना) → घटना के बारे में मेरा आंकलन
B. मैं अपने शरीर की स्थिति का आंकलन करता हूँ...

शरीर में कोई घटना → संवेदना → शरीर के बारे में मेरा आंकलन

→ इस आंकलन के आधार पर मैं **<u>उससे प्रभावित होता हूँ</u>**, अपने भाव, विचार को बनाता हूँ / बिगाड़ता हूँ, सुखी-दुखी होता हूँ

→ मैं **प्रतिक्रिया पूर्वक प्रस्तुत** होता हूँ

अभ्यास 2 Step 6B: समझ आधारित संस्कार - जिम्मेदारी पूर्वक जीना, स्वतंत्रता

A. बाहर कोई घटना (दूसरे का व्यवहार-कार्य) → शरीर पर प्रभाव → संवेदना
B. शरीर में कोई घटना → संवेदना

→ मैं संवेदना को निर्णय पूर्वक पढता हूँ

→ मैं अपने संस्कार (समझ आधारित) के साथ जोड़ कर उसको अर्थ देता हूँ

→ **<u>मैं अपने स्वभाव (निश्चित भाव) में बने रहते हुए स्वयं में सुखी रहता हूँ;</u>**

A. संवेदना को पढने के आधार पर बाहर की घटना (दूसरे का व्यवहार-कार्य) का आंकलन करता हूँ
दूसरे का व्यवहार-कार्य... ध्वनि – शब्द – अर्थ – दूसरे के व्यवहार-कार्य, भाव के बारे में मेरा आंकलन
बाहर भौतिक-रासायनिक घटना → शरीर पर प्रभाव → संवेदना (सूचना) → घटना के बारे में मेरा आंकलन
B. मैं अपने शरीर की स्थिति का आंकलन करता हूँ...

शरीर में कोई घटना → संवेदना → शरीर के बारे में मेरा आंकलन

→ इस आंकलन के आधार पर मैं पूरकता का निर्वाह करता हूँ,

मैं **जिम्मेदारी पूर्वक प्रस्तुत** होता हूँ (बिना प्रभावित हुए)

अभ्यास 2: अब तक हमने देखा (steps 1-6)
मैं हूँ, मेरा शरीर (संवेदना) है
मेरे और शरीर के बीच केवल सूचना (संवेदना, संकेत) का आदान-प्रदान होता है
मुझमें और संवेदना में दूरी है
मैं संवेदना से दूर रहते हुए, शरीर के किसी भी भाग में होने वाले संवेदना को पढ़ सकता हूँ,
यह आदान-प्रदान (interaction) सामयिक है; निरंतर (समय में) नहीं है-
मैं आवश्यकता अनुसार इस आदान-प्रदान को करता हूँ
मैं (चैतन्य) और शरीर के बीच दूरी है
अब हम step7 में इससे आगे देखेंगें...

अभ्यास 2: step 7 मेरा होना, शरीर का होना शून्य में, शून्य के सह-अस्तित्व में
मैं शून्य में हूँ, शून्य के सह-अस्तित्व में बना हुआ हूँ
शरीर भी शून्य में है, शून्य के सह-अस्तित्व में बना हुआ है
मैं शून्य के माध्यम से, शरीर के साथ सूचनाओं का आदान-प्रदान करता हूँ;
आवश्यकता अनुसार, अपने निर्णय पूर्वक

- मैं शून्य के माध्यम से शरीर को संकेत देता हूँ
- मैं शून्य के माध्यम से शरीर में होने वाली संवेदनाओं को पढता हूँ

मैं इसे सीधे सीधे देखता (observe directly)हूँ
मैं निर्णय पूर्वक, शरीर के साथ समय समय पर निर्वाह करता हूँ;
मेरा होना शरीर पर आश्रित नहीं है, संवेदनाओं पर आश्रित नहीं है, किसी बाह्य वस्तु पर आश्रित नहीं है...
मेरा होना शून्य के सह-अस्तित्व में बना हुआ हूँ
मैं शून्य के सह-अस्तित्व में हूँ (किसी अन्य इकाई पर आश्रित नहीं हूँ), (सत्य)
मैं सबसे सम्बंधित हूँ, (प्रेम)
मैं सबके प्रति जिम्मेदार हूँ (करुणा)

अभ्यास 2: मैं (चैतन्य) और शरीर के बीच होने वाले आदान-प्रदान को देखना

1. मैं (चैतन्य) हूँ, शरीर है - यह दोनों अलग अलग वास्तविकताएं हैं
2. मैं और शरीर के बीच सिर्फ सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है
3. शरीर को क्या संकेत देना है, किस संवेदना को पढना है – इसका निर्णय मैं लेता हूँ
4. मैं संवेदना से दूर होते हुए भी संवेदना को पढ़ पाता हूँ – मैं और शरीर के बीच दूरी है
5. बाह्य परिस्थिति का प्रभाव शरीर तक पहुँचता है – उसे मैं निर्णय पूर्वक पढता हूँ, उसे अर्थ देता हूँ, उससे प्रभावित होता हूँ/ नहीं होता हूँ, प्रतिक्रया/ जिम्मेदारी पूर्वक प्रस्तुत होता हूँ,...
6. बाह्य परिस्थिति का, शरीर का प्रभाव तथा मेरा निर्वाह

प्रतिक्रिया पूर्वक, परतंत्रता पूर्वक जीना

→ मैं संवेदना को निर्णय पूर्वक पढता हूँ

→ मैं अपने संस्कार (मान्यता आधारित)के साथ जोड़ कर उसका अर्थ निकलता हूँ

→ मैं उससे प्रभावित होता हूँ, अपने भाव, विचार को बनाता हूँ / बिगाड़ता हूँ, सुखी-दुखी होता हूँ

→ मैं प्रतिक्रिया पूर्वक प्रस्तुत होता हूँ

जिम्मेदारी पूर्वक, स्वतंत्रता पूर्वक जीना

→ मैं संवेदना को निर्णय पूर्वक पढता हूँ

→ मैं अपने स्वभाव (निश्चित भाव) में बने रहते हुए स्वयं में सुखी रहता हूँ; (संवेदना से अप्रभावित रहते हुए)

A. संवेदना को पढने के आधार पर बाहर की घटना (दूसरे का व्यवहार-कार्य) का आंकलन करता हूँ
दूसरे का व्यवहार-कार्य... ध्वनि – शब्द – अर्थ – दूसरे के व्यवहार-कार्य, भाव के बारे में मेरा आंकलन
बाहर भौतिक-रासायनिक घटना → शरीर पर प्रभाव → संवेदना (सूचना) → घटना के बारे में मेरा आंकलन

B. मैं अपने शरीर की स्थिति का आंकलन करता हूँ...

शरीर में कोई घटना → संवेदना → शरीर के बारे में मेरा आंकलन

→ इस आंकलन के आधार पर मैं पूरकता का निर्वाह करता हूँ, मैं जिम्मेदारी पूर्वक प्रस्तुत होता हूँ (बिना प्रभावित हुए)

7. मेरा होना शून्य के सह-अस्तित्व में बना हुआ है, मैं निरंतर क्रियाशील हूँ,
शरीर का होना भी शून्य के सह-अस्तित्व में बना हुआ है,
मैं आवश्यकता अनुसार शरीर के साथ सूचनाओं का आदान-प्रदान करता हूँ (शून्य के माध्यम से)
यह काम आवश्यकता अनुसार, सामायिक रूप से करता हूँ (निरंतर नहीं)
शरीर मेरे लिए एक उपयोगी साधन है

अपनी समझ को जाँचे
(Test your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न
(Questions for Self-evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. 'मैं दृष्टा, कर्ता और भोक्ता हूँ; 'शरीर' एक यंत्र है' प्रत्येक को उदाहरण की सहायता से समझाये।
2. स्वास्थ्य के लिये संयम के भाव क्यों आवश्यक है? और ये दोनों कैसे संबंधित हैं यह भी स्पष्ट करें?
3. 'स्वयं(मैं)' के लिये भौतिक-सुविधा किस लक्ष्य की पूर्ति करती है? श्रेणीबद्ध विधि से इसकी व्याख्या करें।
4. यदि किसी में संयम का भाव होता है तो 'शरीर' के पोषण और संरक्षण के लिये क्या कार्यक्रम होगा? और इस कार्यक्रम के क्या निष्कर्ष निकलेंगे?
5. 'शरीर' के सदुपयोग का क्या तात्पर्य है?

6. समृद्धि को समझने में संयम के भाव की क्या भूमिका है? संयम के भाव के आधार पर समृद्धि के भाव को स्पष्ट कीजिये।
7. यह मान्यता "मानव =शरीर" जिससे दरिद्रता का भाव आता है इसकी व्याख्या कीजिये।

अनुभाग- 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Practice Exercises for Self-exploration)

(विषय वस्तु के साथ जुड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही इन अभ्यासों को व्यक्तिगत तौर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. कोई ऐसे पाँच उदाहरण दीजिये जिससे यह स्पष्ट हो कि 'स्वयं(मैं)' दृष्टा है- जो समझता है; यही कर्ता है- जो निर्णय लेता है; यही भोक्ता भी है या भोगने वाला है- जो सुख या दुख महसूस करता है। 'स्वयं(मैं)' का क्या लक्ष्य है? 'शरीर' का क्या लक्ष्य है? 'शरीर' का क्या सदुपयोग हो सकता है?
2. ऐसे बीस बिंदु लिखिये, जिनसे यह स्पष्ट होता हो कि आपका 'शरीर' एक स्व-व्यवस्थित जड़-इकाई है। इस संदर्भ में हमने यह स्पष्ट किया था कि 'शरीर' एक जड़-इकाई है, यह स्व-व्यवस्थित है, और यह मुख्यतः अपने को स्वतः ही उपचारित कर लेती है इत्यादि।
3. याद कीजिये कि पिछले तीन वर्षों में आपका 'शरीर' कब-कब बीमार हुआ है और 'शरीर' की व्यवस्था को पुनः स्थापित करने के लिये आपने क्या-क्या प्रयास किये हैं?

दिनांक	बीमारी और अव्यवस्था	प्रकार - दुर्घटना, वायरल इनफेक्शन, बैक्टीरियल इन्फेक्शन, जीवनशैली संबंधी विकार या अन्य	उठाये गये कदम	मूल कारण

यदि आपको अपने 'शरीर' की पूरी जिम्मेदारी लेनी है अर्थात् यदि आप में संयम का भाव हो तो आपकी दैनिक-दिनचर्या किस प्रकार की होगी? आप अपने 'शरीर' के अच्छे स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये प्रतिदिन लगभग कितना समय देंगे?

- पोषक आहार- भोजन, वायु, जल, सूर्य का प्रकाश इत्यादि
- 'शरीर' को स्वस्थ रखने के लिये लगाया गया समय- जागने और सोने का समय साफ-सफाई एवं नहाने का समय इत्यादि
- श्रम- भौतिक सुविधा का उत्पादन
- व्यायाम
- आसन- 'शरीर' के आंतरिक एवं बाह्य अंगों में संतुलन के लिये
- प्राणायाम- 'शरीर' में सांस के संतुलन के लिये
- औषधि
- चिकित्सा

(निःसंदेह आपको पढ़ने, समझने, सीखने, व्यवहार, कार्य इत्यादि के लिये भी समय की आवश्यकता है)

आप क्या समझते हैं कि यह दिनचर्या आपको अधिक उत्पादक या कम उत्पादक बनायेगी? इस अभ्यास से आप क्या निष्कर्ष निकालते हैं?

4. आपके उपयोग की किसी एक विशिष्ट भौतिक-सुविधा की आवश्यक मात्रा की गणना कीजिये? उदाहरण के लिये आप के परिवार के सदस्यों के लिये आवश्यक वस्त्रों की संख्या ज्ञात कीजिये इसके बाद वर्तमान में उपलब्ध वस्त्रों की संख्या भी ज्ञात कीजिये? क्या वस्त्रों की उपलब्ध संख्या, आवश्यक वस्त्रों की संख्या से कम है, बराबर है या अधिक है? इस दृष्टि से आप समृद्ध महसूस करते हैं या दरिद्र (कम से कम इस विशिष्ट भौतिक सुविधा के संदर्भ में)। अन्य आवश्यकताओं के लिये भी ऐसा ही करें। इसके लिये आप अपने घर में उपलब्ध वस्तुओं की (या आपके अपने कमरे में उपलब्ध वस्तुओं की) एक सूची बनाये। इनमें से कितनी भौतिक-सुविधाओं का सदुपयोग हो पा रहा है? इसे अपने परिवार के साथ चर्चा करें और अपने निष्कर्षों को निम्नलिखित के संबंध में लिखिये -

a. समृद्धि के संबंध में
b. समझ (मानव, भौतिक-सुविधा की भूमिका और संयम के भाव) की भूमिका के संबंध में
c. आपके परिवार के सदस्यों के लिये आवश्यक भौतिक सुविधाओं को उनकी आवश्यक मात्रा के साथ पहचान कर पाने की योग्यता के संदर्भ में

5. मानव तथा मानव में व्यवस्था के बारे में किये गये अध्ययन से आपको 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के लिये अपनी क्या-क्या भागीदारी स्पष्ट हुई?

6. अपने भविष्य के बायोडाटा को नवीनीकृत कीजिये (जिसे आपने अध्याय-2 में शुरू किया था)। स्व-विकास के लिये अपने लक्ष्य और जिम्मेदारियों को लिखिये। यह भी लिखिये कि आप में अपने स्व-विकास की जिम्मेदारी की पूर्ति करने के लिये कितनी योग्यता उपलब्ध है।

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास से अपनी समझ को जाँचे कि इस अनुभाग को इस पुस्तक से पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपको अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

'जब मैं छोटे से छोटे रूप में भी अपनी भागीदारी करता हूँ तो मैं सुखी होता हूँ। यह एक बहुत ही साधारण सी बात है। मुझे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी स्वाभाविक भागीदारी (natural participation) को समझने की जरूरत है, अपनी भागीदारी का निर्वाह करने की योग्यता विकसित करने की आवश्यकता है और इसके बाद सिर्फ इसे करना है। यही मेरा सम्पूर्ण स्वराज्य (ultimate autonomy) है, स्वतंत्रता और सुख है!

'स्वयं(मैं)', मानव-अस्तित्व का केंद्र है अर्थात् यह दृष्टा है, कर्ता है, और भोक्ता है। 'शरीर' एक यंत्र है।

1. संयम और स्वास्थ्य
2. समृद्धि

अनुभाग-4: आपके प्रश्न
(Part 4: Your Questions)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय 8(अ)
मानव-मानव सम्बंध मे मूल्य- ममता और वात्सल्य

कक्षा 9 के अध्याय 8 में हमने परिवार में व्यवस्था का अध्ययन शुरू किया था और संबंध में सहज स्वीकृत भावों को समझना शुरू किया था । इस क्रम में हमने विश्वास , सम्मान और स्नेह के भाव का अध्ययन किया था।
विश्वास का अर्थ है, आश्वस्त होना अर्थात् यह स्पष्टता होना कि दूसरे की चाहना (सहज-स्वीकृति) मुझे सुखी और समृद्ध करने के अर्थ में है। जब मैं स्पष्ट रूप से यह देख पाता हूँ कि मेरी चाहना (सहज-स्वीकृति) स्वयं को सुखी और समृद्ध करने के साथ-साथ दूसरों को भी सुखी और समृद्ध करने की है तब मैं यह निष्कर्ष निकाल पाता हूँ कि स्वयं के स्तर पर दूसरा भी मेरे जैसा ही है और उसकी चाहना (सहज-स्वीकृति) भी मेरे जैसी ही है।

सम्मान का आशय, सही आँकलन है (स्वयं के आधार पर लक्ष्य, कार्यक्रम, क्षमता एवं योग्यता का)। हम लक्ष्य, कार्यक्रम और क्षमता में एक जैसे हैं एवं योग्यता के स्तर पर एक दूसरे के पूरक हैं।

स्नेह, दूसरे के साथ संबंध की स्वीकृति का भाव है। यदि किसी व्यक्ति में दूसरे के प्रति विश्वास और सम्मान का भाव है तो सहज रूप से ही उस व्यक्ति में दूसरे के लिये संबंध की स्वीकृति का भाव भी होता ही है।

यह दिखता है कि विश्वास का भाव हर संबंध का आधार है। जब मैं यह देख पाता हूँ कि दूसरा सहज रूप से मुझे सुखी करना चाहता है, तो मैं दूसरे का सम्मान कर पाता हूँ, उसका सही आँकलन कर पाता हूं। विश्वास और सम्मान के भाव के साथ ही दूसरे को संबंधी के रूप में स्वीकार कर पाता हूँ अर्थात स्नेह के भाव के साथ जुड़ पाता हूँ ।अब हम संबंध के दूसरे मूल्यों का अध्ययन करेंगे ।

ममता और वात्सल्य
(Care and Guidance)

अब हम यह देख सकते हैं कि जब हममें स्नेह का भाव होता है, तो संबंध में निर्वाह के लिये स्वयं में जिम्मेदारी और निष्ठा सहज ही आ जाती है। यही ममता और वात्सल्य के भाव के रूप में व्यक्त होता है। ये ममता और वात्सल्य के भाव वास्तव में स्नेह के भाव के ही सहज परिणाम हैं। इन्हें निम्न संदर्भों में देखा जा सकता है:

1. अपने संबंधी के 'शरीर' के प्रति जिम्मेदारी का भाव और
2. अपने संबंधी के 'स्वयं(मैं)' के प्रति जिम्मेदारी का भाव

यदि मुझ में ये उपरोक्त जिम्मेदारी के भाव हैं तो इसका क्या परिणाम होगा? इसके परिणाम स्वरूप यह होगा कि मैं अपने संबंधी के 'शरीर' के पोषण और संरक्षण के बारे में सोच पाऊँगा। शरीर के

पोषण एवं संरक्षण के बारे में हम पहले भी बात कर चुके हैं, जैसे माता-पिता बच्चे के 'स्वयं(मैं)' और शरीर की जिम्मेदारी को स्वीकारते ही हैं। बच्चे की देखभाल करने के अर्थ में, वे बच्चे के शरीर का पोषण एवं संरक्षण करते हैं। ऐसा अधिकांश माता-पिता में देखा ही जा सकता है। विशेष तौर पर मातायें ऐसा करने के लिये सदैव तत्पर ही दिखती हैं, चाहें ऐसा करने में उन्हें कोई असुविधा ही क्यों न हो रही हो। वे बच्चे को खाना खिलाने के लिये कई बार स्वयं भूखे रहने को भी तैयार रहती हैं, यहाँ तक कि वे बच्चे के प्रति ममता के भाव के निर्वाह के लिये अपनी पूरी दिनचर्या ही बदल लेती हैं। जब बच्चा छोटा होता है, तो वह कई बार बिस्तर गीला करता है या माता-पिता के कपड़े गीले कर देता है फिर भी माता-पिता इन बातों को अपनी जिम्मेदारी का भाग समझते हुये, बिना झल्लाये, बिना गुस्सा किये बच्चे के प्रति अपनी ममता के भाव का निर्वाह करते रहते हैं। वे बच्चे के शरीर का पोषण, संरक्षण बिना इस अपेक्षा के करते हैं कि बच्चा बदले में उनके लिये भी कुछ करे ही अर्थात् बिना किसी शर्त वे ममता के भाव का निर्वाह करते रहते हैं। इस प्रकार माताओं के लिये अपने बच्चों के शरीर का पोषण एवं संरक्षण करना एक सामान्य बात है।

ममता का यह भाव सिर्फ बच्चों के लिये ही व्यक्त होगा ऐसा नहीं है। यह भाव परिवार के बुजुर्गों, बीमारों और कमजोर सदस्यों के लिये भी व्यक्त हो सकता है, जिन्हें अपने शरीर की देखभाल के लिये सहायता की आवश्यकता होती है अर्थात् जिन्हें भोजन के लिये, शरीर को स्वच्छ रखने इत्यादि में सहायता की आवश्यकता होती है।

सामान्यतः ममता का यह भाव मानव-मानव संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि हम शरीर को बहुत अधिक महत्व देते हैं। इसीलिये जब भी घर में कोई मेहमान आता है तो उनके लिये भोजन एवं अन्य पेय पदार्थ उपलब्ध कराने को हम इतना अधिक महत्व देते हैं। यहाँ तक कि हम भी याद रखते हैं कि जब वे पिछली बार आये थे तो उन्हें क्या परोसा गया था, बजाय इसके कि उनके साथ पिछली बार क्या विचार विमर्श हुआ था!

आप यह देख सकते हैं कि ममता के भाव का अर्थ अपने संबंधी के शरीर का पोषण, संरक्षण करना है; जिसके लिये सुविधाओं की आवश्यकता होती है जैसे शरीर के पोषण के लिये भोजन, जल और अन्य भौतिक रासायनिक वस्तुओं की आवश्यकता एवं शरीर के संरक्षण के लिये वस्त्र, घर इत्यादि की आवश्यकता। यह याद रखना महत्वपूर्ण है, कि ममता के भाव अतिरिक्त अन्य किसी भाव के निर्वाह के लिये सुविधाओं की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती और अगर कभी होती भी है, तो अधिक से अधिक प्रतीकात्मक (symbolic) भूमिका ही होती है।

ममता का भाव, सुविधाओं के उत्पादन एवं उनके संरक्षण और सदुपयोग के कार्यों को देखने की हमारी दृष्टि में भी बहुत बड़ा अंतर उत्पन्न कर सकता है। जब 'स्वयं(मैं)' में ममता का भाव होता है, तो हम अपनी जिम्मेदारी के एक भाग के रूप में ये सभी कार्य सुखी होकर करते हैं और जब ममता का यह भाव नहीं होता तो इस तरह के कार्यों को करते समय हम दुखी होते रहते हैं और ऐसा प्रतीत होता है मानो हमें बहुत कठिन परिश्रम करना पड़ रहा हो। जैसे माँ स्नेह के भाव से भोजन पकाती है, तो यह कार्य उसके लिये सुखदायक होता है, किन्तु जब होटल का एक कर्मचारी अपने वेतन को ध्यान में रखते हुये भोजन पकाता है तो यही कार्य उसको कठिन श्रम वाला प्रतीत होता है, जिसमें वह दुखी भी होता रहता है।

क्या अब आप यह देख सकते हैं कि:

ममता, अपने संबंधी के शरीर के पोषण, संरक्षण के प्रति जिम्मेदारी और निष्ठा का भाव है।

अब हम वात्सल्य के भाव को समझते हैं, यह भाव उस व्यक्ति के 'स्वयं(मैं)' के प्रति जिम्मेदारी से संबंधित है, जिसे हमने अपने संबंधी के रूप में स्वीकारा हुआ है। अपने संबंधी के 'स्वयं' के प्रति हमारी क्या जिम्मेदारी हो सकती है? स्वाभाविक रूप से यह जिम्मेदारी, दूसरे के 'स्वयं(मैं)' में सही-समझ और सही-भाव सुनिश्चित करने में सहायता करना है। जब हम यह देख पाते हैं कि दूसरा भी 'स्वयं(मैं)' और

'शरीर' के सह-अस्तित्व के रूप में है, तो हम दूसरे के 'स्वयं(मैं)' के प्रति जिम्मेदार हो पाते हैं। वात्सल्य का यह भाव भी हमें सहज-स्वीकार्य होता है।

क्या आप यह देख पाते हैं कि:

वात्सल्य, अपने संबंधी के 'स्वयं(मैं)' में सही-समझ और सही-भाव सुनिश्चित करने के प्रति जिम्मेदारी और निष्ठा का भाव है।

परिवार में हम अपने बच्चों का मार्गदर्शन करने का प्रयास करते ही हैं। हम देख सकते हैं कि माता-पिता, बच्चे को चलना, बोलना, शरीर की देखभाल करना, घर के कार्य करना आदि सिखाते ही हैं। इसी प्रकार जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, हमारे सिखाने और मार्गदर्शन करने का दायरा भी और बढ़ जाता है। बच्चे को शिक्षा के लिये भेजना, जीने को बेहतर बनाने के लिये सलाह देना, सफलता के लिये परामर्श देना इत्यादि को अधिकांश घरों में देखा ही जा सकता है।

माता-पिता एवं परिवार के अन्य सदस्य, बच्चों को वह सब बताते ही हैं, जिसे उन्होंने स्वयं समझा है और जिया है। यदि उन्होंने व्यवस्था को समझा है और व्यवस्था में जी पा रहे हैं तो ही वे बच्चों को व्यवस्था के अर्थ में सही मार्गदर्शन करने में सक्षम हो पाते हैं। जिसके माध्यम से बच्चे भी व्यवस्था को समझ पाते हैं और व्यवस्था में जी पाते हैं।

दूसरी ओर यदि माता-पिता स्वयं ही, व्यवस्था के बारे में, शरीर और 'स्वयं(मैं)' के सह-अस्तित्व के बारे में, सही-समझ और सही-भाव के बारे में, सुविधा और सुख के अंतर इत्यादि के बारे में बहुत स्पष्ट नहीं हैं, तब वे मार्गदर्शन प्रदान करने के स्थान पर, अपनी मान्यताओं को ही बच्चों में स्थानांतरित करते रहते हैं। जिससे बच्चों में सही और गलत मान्यतायें मिश्रित रूप में संग्रहित होती रहती हैं।

वात्सल्य का भाव सभी के लिये आवश्यक है, न कि केवल परिवार के बच्चों के प्रति।

अब यदि आप ममता के भाव और वात्सल्य के भाव के बीच अंतर को देख पाते हैं, तो अपने आप से यह प्रश्न कर सकते हैं कि जब आप बच्चे की देखभाल कर रहे होते हैं, तो क्या आप ममता और वात्सल्य दोनों का ध्यान रख पाते हैं? या आपका ध्यान मुख्यतः बच्चे के शरीर पर ही केंद्रित रहता है?

आप देखेंगे कि हमारा प्रमुख ध्यान ममता के भाव पर ही बना रहता है। हम मुख्य रूप से ममता के भाव पर इसलिये ध्यान देते हैं, क्योंकि हममें यह मान्यता बन गयी है कि मानव एक शरीर है। यहाँ तक कि हम 'स्वयं(मैं)' के बारे में अनभिज्ञ ही रहते हैं इसलिये हमारे में यह जागरूकता नहीं रहती कि 'स्वयं(मैं)' का भी ध्यान रखना है।

इस संदर्भ में हम माँ के द्वारा बच्चे को भोजन कराने का एक उदाहरण ले सकते हैं। सामान्यतः माँ, ममता के भाव का निर्वाह करते हुये बच्चे के 'स्वयं(मैं)' का ध्यान नहीं रख पाती हैं। कई बार माँ अपने बच्चे को ज्यादा भोजन कराने का प्रयास करती हुई तो दिखती ही हैं, साथ ही साथ जबरदस्ती खिलाने की कोशिश भी करती हैं। आपको क्या लगता है, इस प्रकार की जबरदस्ती से बच्चे का 'स्वयं(मैं)' सुखी होता है अथवा दुखी? यह तो हम सहज ही देख पाते हैं कि इस प्रक्रिया में बच्चे का 'स्वयं(मैं)' तो दुखी ही होता है, क्योंकि बच्चा मना करता है, रोता है लेकिन माँ रुकने को तैयार ही नहीं होती बल्कि वह बच्चे को भोजन खिलाने के नये-नये तरीके खोजने का प्रयास करने लगती हैं। जैसे वह बच्चे को डराती है कि खा ले नहीं तो बिल्ली आ जायेगी, पुलिस वाला ले जायेगा इत्यादि या बच्चे को लालच देकर यह कहती हैं कि अगर तुम इतना सा भोजन और खा लोगे तो तुमको मोबाइल पर गेम खेलने को मिलेगा अथवा चॉकलेट मिलेगी इत्यादि।

एक कार्यशाला में प्रतिभागी के रूप में आई हुई एक माँ ने यह साझा किया कि वह अपने बच्चे पर भोजन करने का दबाव बनाने के लिये प्लास्टिक की एक छिपकली ले आयीं और जब भी वे

बच्चे को भोजन देती तो यह कहतीं कि यदि आपने जल्द भोजन समाप्त नहीं किया तो यह छिपकली आपको काट लेगी। ऐसे ही कई बार तो बच्चे को खाना खिलाते समय हम टीवी या मोबाइल पर उनका मनपसंद कार्टून लगा देते हैं और यदि बच्चा खाना नहीं खाता तो टीवी बंद करने या मोबाइल वापस ले लेने की धमकी देते हैं, जिससे डर कर वह भोजन खाने लग जाता है। इस तरह हम बच्चे को 'शरीर' मानकर भोजन कराने के अनेकों प्रयास करते ही रहते हैं लेकिन इन सभी प्रयासों में बच्चे का 'स्वयं(मैं)' सुखी होता है या दुखी? हमारा ध्यान बच्चे के 'स्वयं(मैं)' पर तो रहता ही नहीं कि हम यह देख सकें कि बच्चे का 'स्वयं(मैं)' दुखी हो रहा है। यदि हम बच्चे को उसकी भूख से ज्यादा भोजन खिलाने का दबाव बना रहे हैं तो वास्तव में न तो हम उसके 'शरीर' का ही ठीक से ध्यान नहीं रख पा रहे हैं और न ही उसके 'स्वयं(मैं)' का।

यदि हम यह देख पाते है कि बच्चे की सहज-स्वीकृति भी अपने शरीर के पोषण के अर्थ में ही है तो हम बच्चे को भोजन खिलाने के अन्य सौहार्दपूर्ण (cordial) तरीके भी अपना सकते हैं। यदि हम यह देख पाये कि बच्चे का स्वयं हमारे ही जैसा है, तब हम यह भी देख पायेंगे कि बच्चे की चाहना हमारे जैसी ही है। वह यही चाहता है कि उसके साथ भी बड़ों जैसा ही उचित व्यवहार हो। बच्चा भी आदेश के स्थान पर प्रस्ताव चाहता है; और उस प्रस्ताव के बारे में स्वयं निर्णय लेना चाहता है, जिससे वह स्वयं ही तय कर पाये कि उसे कितना, कब और क्या खाना है। यदि हम धैर्य पूर्वक बच्चे का ध्यान रखते हुये, उसे सही विकल्प उपलब्ध कराने के साथ-साथ उसे स्वयं तय करने का अवसर दें, तो निःसंदेह वह अपने शरीर के पोषण की जिम्मेदारी का निर्वहन करने के योग्य हो पायेगा।

प्रत्येक बालक में सही-समझने और सही-जीने की सहज-स्वीकृति है ही; वह सही-समझ सकता है, और सही-समझने की प्रक्रिया में दूसरों का सहयोग भी लेना चाहता है अतः इसके लिये वह स्वयं प्रयासरत भी रहता है। माता-पिता या शिक्षक स्वयं में बच्चे के प्रति विश्वास, सम्मान, स्नेह, ममता और वात्सल्य के भावों के साथ बच्चे की समझ को बढ़ाने में सहयोगी हो सकते हैं।

श्रद्धा

(Reverence)

श्रेष्ठता की स्वीकृति का भाव श्रद्धा है।

Reverence is the feeling of acceptance for excellence.

हम यहाँ पर जो प्रस्ताव दे रहे हैं, वह यह है, कि निरंतर सुख अथवा व्यवस्था की स्थिति में होना ही श्रेष्ठता है। चित्र. 8-10. देखिये। श्रेष्ठता से हमारा आशय, जीने के सभी चार स्तरों में जो व्यवस्था है, उसे समझना और उसमें जीना है। एक बार जब हम श्रेष्ठता प्राप्त कर लेते हैं तो यह हममें निरंतर बनी रहती है। श्रेष्ठता एक ऐसी वास्तविकता है जो निश्चित है और निरपेक्ष है।

यदि किसी ने श्रेष्ठता की स्थिति को प्राप्त कर लिया है तो ऐसे व्यक्ति के प्रति हममें सहज रूप से स्वीकृति होती ही है। श्रेष्ठता की स्वीकृति का भाव ही श्रद्धा है।

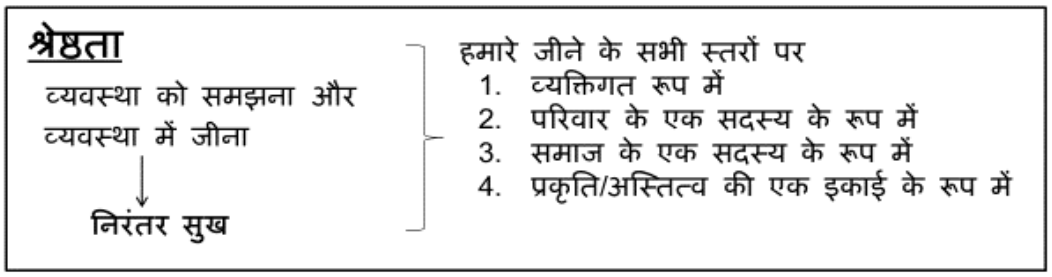

चित्र. 8-10. श्रेष्ठता

हम सब की चाहना निरंतर सुख है। इस दृष्टि से हम सब श्रेष्ठता के आकांक्षी हैं। चूंकि श्रद्धेय व्यक्ति ने श्रेष्ठता प्राप्त कर ली है, अतः सहज रूप से हममें ऐसे व्यक्तियों से प्रेरणा लेने की स्वीकृति रहती ही है और हम उनके जैसा बनने का प्रयास भी करते हैं। यहाँ हम किसी की शक्ल-सूरत, कार्य करने के तरीके और उनकी उपलब्धियों इत्यादि का अनुकरण करने की बात नहीं कर रहे हैं, बल्कि उन्होंने जो स्वयं और बाहरी जगत में व्यवस्था को समझा है और जीया है या जी रहे हैं हम उस ओर ध्यान दिलाने का प्रयास कर रहे हैं। श्रेष्ठता के लिये हम जो प्रयास करते हैं, उसी को पूजा कहा है। वैसे तो हम इस पूजा शब्द का प्रयोग करते ही रहते हैं किन्तु यहाँ पूजा का मूल आशय श्रेष्ठता के लिये प्रयत्न करने से है।

सम्मान के भाव और श्रद्धा के भाव के बीच हमें भ्रम हो सकता है। जैसे कई बार हम किसी व्यक्ति के लिये यह कह देते हैं कि "इनके लिये हममें सम्मान का भाव कैसे हो सकता है जबकि ये तो ऐसा करते हैं....."; ऐसा हम तब कहते हैं, जब सम्मान के भाव को भेद के आधार पर देख रहे होते हैं। चूंकि सम्मान का आशय, सही मूल्यांकन है अतः सही मूल्यांकन तो हम सभी का कर ही सकते हैं अर्थात् सभी का सम्मान कर सकते हैं, जिससे हम प्रत्येक व्यक्ति के साथ अपनी परस्पर-पूरकता का निर्धारण कर सकें। जबकि श्रद्धा का भाव सभी के लिये हो, ऐसा आवश्यक नहीं है क्योंकि किसी ऐसे व्यक्ति के लिये हममें श्रद्धा का भाव नहीं हो सकता, जिन्होंने अभी श्रेष्ठता को प्राप्त नहीं किया हो। अतः सम्मान अर्थात् सही मूल्यांकन तो सभी का हो सकता है, लेकिन श्रद्धा का भाव केवल उन्हीं के लिये हो सकता है, जिन्होंने श्रेष्ठता को प्राप्त कर लिया हो।

अब हम, प्रतिस्पर्धा एवं श्रेष्ठता के बीच मूल अंतर को भी देखने का प्रयत्न कर सकते हैं। यदि आपने श्रेष्ठता प्राप्त कर ली है तो आप दूसरे के लिये क्या करना चाहेंगे? भेद अथवा शासन करेंगे या उसे भी अपनी तरह श्रेष्ठ अर्थात् व्यवस्था को समझने और जीने के योग्य बनाने में सहयोग करेंगे। इसकी जाँच करने पर आप यह देख पायेंगे कि सहज रूप से आप दूसरे का सहयोग ही करना चाहते हैं। क्योंकि जब आप निरंतर सुख की स्थिति में हैं ही तो, आपको अपने सुख के लिये कुछ और करने की आवश्यकता ही नहीं होती इसलिये, आप सहज रूप से दूसरे को श्रेष्ठता प्राप्त करने में सहयोग करने का ही प्रयत्न करते हैं। दूसरी तरफ, प्रतिस्पर्धा की स्थिति में हम दूसरों का कोई सहयोग नहीं करते बल्कि दूसरा हमारे स्तर तक न पहुंच पाये इसके लिये व्यवधान उत्पन्न करने का ही प्रयास करते रहते हैं। याद करिये, हमने आपसे यह पूछा था कि ऐसे कितने बच्चे हो सकते हैं जो कि कक्षा में प्रथम आ सकें और कितने ऐसे बच्चे हो सकते हैं जो कक्षा में पढ़ायी जा रही, पूरी बात समझ सकें? अब आप यह देख सकते हैं कि प्रत्येक बच्चे में श्रेष्ठता पाने की चाहना और क्षमता तो है ही। यदि हम श्रेष्ठता के लिये प्रयास कर रहे हैं या दूसरे को श्रेष्ठता प्राप्त करने में सहयोग करने का प्रयास रहे हैं तो यह सभी के लिये सुखकारी होता है। वहीं जब हम प्रतिस्पर्धा करते हैं जैसे कक्षा में प्रथम आने के लिये या दूसरों से अलग दिखने के लिये तो इससे संबंधित आपके सभी प्रयास अपने लिये और दूसरों के लिये कष्टकारी होते हैं! क्या अब आप यह देख पा रहे हैं?

आप अपने में जाँच सकते हैं कि श्रेष्ठता और श्रद्धा की यह परिभाषा आपको सहज-स्वीकार्य है या नहीं। आप यह भी जाँच कर सकते हैं कि पूजा का अर्थ श्रेष्ठता के लिये, श्रद्धेय व्यक्ति से प्रेरणा लेकर वैसा होने का प्रयत्न करना है या अपनी जिम्मेदारी जिन्हें श्रद्धेय स्वीकारा है, उन्हें सौंप देना है?

गौरव और कृतज्ञता
(Glory and Gratitude)

श्रेष्ठता की स्पष्टता के साथ, अब हम गौरव और कृतज्ञता के भाव को भी परिभाषित कर सकते हैं क्योंकि केवल श्रेष्ठता की समझ के प्रकाश में ही, इन दोनों भावों को समझ पाना संभव है।

जिन्होंने श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया है, उनके प्रति स्वीकृति का भाव 'गौरव' है।

हममें उन व्यक्तियों के लिये गौरव का भाव होता है, जिन्होंने श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया है या प्रयास कर रहे हैं। इसलिये, जिन भी व्यक्तियों को आप महान कहते हैं, उन्हें आप महान व्यक्ति इसलिये स्वीकार पाते हैं क्योंकि उन्होंने स्वयं को श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिये समर्पित किया है। जब हम उनके द्वारा श्रेष्ठता के अर्थ में किये गये प्रयासों को स्वीकार पाते हैं, चाहें वे उसमें पूरी तरह सफल न भी हुये हों, तब भी हममें सहज रूप से उनके लिये गौरव का भाव आता ही है।

गौरव का यही भाव हम अपने अध्यापकों और परिवार के बुजुर्गों के लिये अपने में देख सकते हैं। उनसे हमको यह सहज अपेक्षा भी बनी रहती है कि वे अपने सभी प्रयास सही समझने और सही जीने के अर्थ में लगायें।

जिन्होंने मेरी श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया हैं, उनके प्रति स्वीकृति का भाव 'कृतज्ञता' है।

यह भाव उन सभी के लिये होता है, जिन्होंने किसी भी रूप में मेरी श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया है। हमारे जीवन में ऐसे अनेक व्यक्ति हो सकते हैं, जिन्होंने हमें व्यवस्था को समझने और व्यवस्था में जी पाने के लिये सहयोग किया हो इसलिये हममें उनके प्रति कृतज्ञता का भाव होता है। विशेषकर परिवार में हम ऐसे सदस्यों को देख ही सकते हैं जैसे कि माता-पिता या परिवार के अन्य सदस्यों ने हमें स्नेह पूर्वक बड़ा किया है और हमारे शरीर के पोषण एवं संरक्षण के लिये आवश्यक सुविधाओं को भी उपलब्ध करवाया है।

आप अपने माता-पिता एवं अन्य पारिवारिक सदस्यों के बारे में देख सकते हैं जिन्होंने आपकी देखभाल की, आपको स्कूल और कॉलेज भेजने की व्यवस्था की, आपको आवश्यक सुविधा उपलब्ध कराई जिससे आपमें श्रेष्ठता सुनिश्चित हो सके। हम यह भी देख सकते हैं कि दूसरे ने मेरे 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता पूर्ति के लिये क्या-क्या किया है अर्थात् सही-समझ और सही-भाव विकसित करने में हमारी किस प्रकार से सहायता की है, इसके लिये हमारे में उनके प्रति कृतज्ञता का भाव बहुत लंबे समय तक बना रहता है जैसे आपको अपने माता-पिता और अपने कुछ अध्यापकों से प्राप्त मार्गदर्शन सदैव याद रहता है। इसी प्रकार से हमारे परिवार से बाहर भी बहुत से ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं, जो आपके विकास की प्रक्रिया में सहायक रहे हों। आपमें उनके लिये भी कृतज्ञता का भाव हो सकता है।

जहाँ तक कृतज्ञता के भाव की निरंतरता का प्रश्न है, तो यह केवल उनके प्रति ही हो सकता है जिन्होंने हममें सही-समझ और सही-भाव सुनिश्चित करने के अर्थ में हमारा सहयोग किया है। क्योंकि कृतज्ञता के भाव की निरंतरता दूसरों के द्वारा किये गये केवल उन्हीं प्रयासों के प्रति हो पाती है जिनके परिणाम हममें निरंतरता में बने रह पाते हैं, जैसे कि स्वयं में सही समझ और सही भाव सुनिश्चित करने के अर्थ में किया गया हमारा सहयोग। इसलिये जब किसी का प्रयास हमारे 'स्वयं(मैं)' में सही-समझ और सही-भाव सुनिश्चित करने के अर्थ में होता है, तो कृतज्ञता के भाव की निरंतरता हममें बनी रह पाती है।

दूसरी ओर, जब कोई हमें केवल सुविधा के स्तर पर अर्थात् शरीर के अर्थ में ही सहयोग करता है तो यह कृतज्ञता का भाव उनके प्रति भी हममें आता है, किन्तु इस में निरंतरता की संभावना बहुत कम

रहती है। क्योंकि जब भी केवल भौतिक सुविधा के स्तर पर भागीदारी करते हैं, तो इसके लिये दूसरे में कृतज्ञता का भाव एक सीमित समय के लिये ही रह पाता है। अतः सुविधा या शरीर के लिये किये गये किसी भी सहयोग के प्रति कृतज्ञता के भाव की निरंतरता केवल तभी हो सकती है, जब व्यक्ति में सही-समझ हो अन्यथा नहीं।

संबंधों के विकास में कृतज्ञता एक बहुत महत्वपूर्ण भाव है। जब कोई बालक यह देख पाता है कि उसके माता-पिता व परिवार के अन्य सदस्य उसके स्वास्थ्य की देखभाल करते हैं, उसके सुख का ध्यान रखते हैं, शिक्षा प्रक्रिया में उसकी सहायता करते हैं इत्यादि, तब उसमें इन सभी के लिये कृतज्ञता का भाव आ पाता है। यही कृतज्ञता का भाव जो परिवार से शुरू होता है, उसका फैलाव परिवार से बाहर के सदस्यों जैसे पास-पड़ोस, समाज, राष्ट्र और अंततः संपूर्ण विश्व परिवार तक हो पाने की संभावना रहती है। क्योंकि जब भी हम उन लोगों को खोजने का प्रयास करेंगे, जिन्होंने मेरे 'स्वयं(मैं)' में श्रेष्ठता को सुनिश्चित करने या शरीर की देखभाल करने की प्रक्रिया में सहयोग किया है तो हम पायेंगे कि ऐसे बहुत से लोग है, जिन्होंने हमारा अलग-अलग तरह से सहयोग किया है, यहाँ तक कि इसमें सम्पूर्ण व्यवस्था को ही सम्मिलित पायेंगे। कृतज्ञता का यह भाव स्वयं के विकास के लिये महत्वपूर्ण है।

इस कृतज्ञता के भाव को 'स्वयं(मैं)' में देखने के लिये आप एक अभ्यास कर सकते हैं। इसके लिये आप उन सभी लोगों की सूची बनाइये, जिन्होंने आपके स्वयं में श्रेष्ठता सुनिश्चित करने में आपका सहयोग किया है। आपके उपयोग की प्रत्येक छोटी या बड़ी चीज के बार में जाँच कर देखिये कि वह कहाँ से आ रही हैं और इन वस्तुओं के आप तक पहुँच पाने की प्रक्रिया में कौन-कौन लोग शामिल हैं। जैसे आपके घर में जो दूध का पैकेट आता है उसके बारे में सोचिये कि वह कहाँ से आता है और कौन-कौन लोग हैं जो दूध को एकत्रित करने, वितरित करने एवं इसके उत्पादन में सम्मिलित हैं। ऐसे ही अन्य वस्तुओं के लिये भी देखा जा सकता है। जब आप इसके बारे जानने का प्रयास करेंगे तो आप इसकी एक पूरी श्रृंखला पायेंगे और यह देख पायेंगे कि प्रत्येक छोटी से छोटी वस्तु जिसका आप उपयोग करते हैं उसके उत्पादन, वितरण इत्यादि में बहुत से लोग शामिल हैं और वे सभी मिलकर आपके शरीर के पोषण और संरक्षण को सुगम बना रहे हैं।

स्वयं में कृतज्ञता का भाव इस बात का संकेत है कि दूसरे ने हमारी श्रेष्ठता के लिये क्या सहयोग किया है, यह हमें स्पष्ट है। हम यह भी जानते हैं कि चाहते हुये भी दूसरा हमारा क्या सहयोग नहीं कर सका है। इसलिये दूसरा हमारे लिये जो नहीं कर सका, उस बात को लेकर हम दुखी नहीं होते हैं। वास्तव में ऐसा देख पाना हमें अगली पीढ़ी की जरूरतों और उनकी अपेक्षाओं की एक प्रारम्भिक सूची देता है। इसलिये कृतज्ञता के भाव के साथ हम अपनी योग्यता विकसित करने के लिये प्रयास करते रहते हैं, ताकि उन जरूरतों एवं अपेक्षाओं को पूरा किया जा सके।

जब माता-पिता और परिवार के बड़े सदस्यों में सही-समझ और सही-भाव होता है तो परिवार में एक बालक के विकास के लिये अनुकूल वातावरण बन पाता है। संबंध में जीने के लिये परिवार, एक मॉडल के रूप में रहता है। इसमें, बच्चों के लिये जो कुछ किया जाता है, उसके माध्यम से वे संबंध को स्वाभाविक रूप से स्वीकार पाते हैं। जब परिवार के लोग पहले से ही संबंध पूर्वक जी रहे होते हैं तो बच्चों में कृतज्ञता का यह भाव, संबंध पूर्वक जीने, तत्पश्चात संबंध को समझने के लिये प्रवेश बिन्दु का काम करता है। यदि सम्बंध को, हम एक उम्र के पश्चात समझने का प्रयत्न करते हैं तो सबसे पहले हमें विश्वास के बारे में स्पष्टता विकसित करने की आवश्यकता होती है क्योंकि विश्वास का भाव ही संबंध में आधार मूल्य है।

सम्मान, श्रद्धा, कृतज्ञता और गौरव का पुनरावलोकन
(A Relook at Respect, Reverence, Gratitude and Glory)

क्योंकि ये भाव लगभग एक जैसे हैं, अतः इनमें स्पष्टता के लिये इनकी आपस में तुलना कर लेते हैं। यदि आप मानव लक्ष्य को देखें तो यह लक्ष्य स्वयं में श्रेष्ठता प्राप्त करना है। श्रेष्ठता का आशय मानव के जीने के सभी स्तरों पर व्यवस्था को समझना और जीना है जिससे कि निरंतर सुख सुनिश्चित होता है। श्रेष्ठता के संदर्भ में अब हम इन चारों भावों (सम्मान, श्रद्धा, गौरव और कृतज्ञता) को और स्पष्टता से समझ सकते हैं।

'स्वयं' के सही-मूल्यांकन के आधार पर हममें सभी के लिये सम्मान का भाव हो सकता है। जब हम 'स्वयं' के आधार पर सही-सही मूल्यांकन करते हैं, तो यह जान पाते हैं कि प्रत्येक मानव का लक्ष्य एक जैसा ही है, और वह है श्रेष्ठता प्राप्त करना और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये हमारा कार्यक्रम एवं क्षमता भी एक ही जैसी है। इस दृष्टि से प्रत्येक मानव एक जैसा है, अंतर केवल योग्यता में है; योग्यता अर्थात् अपनी क्षमता के कितने भाग को कार्य रूप में सिद्ध कर लिया गया है। चूंकि हम सभी का लक्ष्य एक जैसा है अतः इसे प्राप्त करने में हम एक दूसरे के सहयोगी भी होंगे एवं एक दूसरे के पूरक भी होंगे। हम अपनी परस्पर-पूरकता को सही-मूल्यांकन के द्वारा ही पहचान सकते हैं और यह सही-मूल्यांकन ही सम्मान है। इस आधार पर सम्मान प्रत्येक व्यक्ति के लिये होगा।

जब बात श्रद्धा की आती है तो निश्चित रूप से सम्मान का भाव इसके आधार में होता ही है। सम्मान के भाव के साथ मैं में उन व्यक्तियों के लिये श्रद्धा का भाव भी होता है जिन्होंने श्रेष्ठता को प्राप्त कर लिया है। हम उनसे प्रेरणा लेते हैं और स्वयं भी श्रेष्ठ होने का प्रयत्न करते हैं। सम्मान और श्रद्धा में यही अंतर है।

जब गौरव की बात आती हैं तो निःसंदेह इसके मूल में भी सम्मान का भाव तो होगा ही और उन व्यक्तियों के लिये गौरव का भाव भी होगा जिन्होंने श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया है भले ही उन्होंने श्रेष्ठता पूर्ण रूप से प्राप्त न कर पायी हो। और यदि उन्होंने श्रेष्ठता को प्राप्त कर लिया है तो हममें उनके लिये सम्मान और गौरव के साथ-साथ श्रद्धा का भाव भी होगा।

अतः अब हम यह देख सकते हैं कि जब हममें सम्मान का भाव होता है तभी गौरव और श्रद्धा का भाव भी आता है। चूंकि सम्मान का भाव सभी के लिये होता है इसलिये यह उनके लिये भी होगा ही जो हमारे लिये श्रद्धेय हैं। गौरव का भाव उनके प्रति होता है, जिन्होंने श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया है अतः यह भाव उनके प्रति भी होगा ही जो हमारे लिये श्रद्धेय हैं। निःसंदेह श्रद्धा का भाव उनके प्रति ही होगा, जिन्होंने श्रेष्ठता को पूर्ण रूप में प्राप्त कर लिया है।

जब बात श्रद्धा के भाव की आती है तो गौरव और सम्मान का भाव इसमें पहले से ही सम्मिलित रहता है। और जब बात गौरव के भाव की आती है तो सम्मान का भाव इसमें पहले ही सम्मिलित रहता है किन्तु गौरव के भाव में श्रद्धा का भाव सम्मिलित नहीं रहता है। किन्तु जब बात सम्मान की आती है तो यह सभी के लिये होगा, इसके लिये किसी पात्रता की आवश्यकता नहीं है।

कृतज्ञता का भाव उनके लिये होता है, जिन्होंने मेरी श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया है, जिन्होंने मेरे को श्रेष्ठता प्राप्त करने में सहयोग किया है या कर रहे हैं। निःसंदेह कृतज्ञता के भाव की पृष्ठभूमि में सम्मान का भाव तो होगा ही साथ ही इस भाव के लिये अतिरिक्त भागीदारी यह है कि उन्होंने मेरे को श्रेष्ठता प्राप्त करने में सहयोग भी किया हो।

प्रारंभ में आप उन लोगों के लिये कृतज्ञता के भाव को महसूस करते हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप से आपकी सहायता की है, लेकिन जब आप विश्लेषण करते हैं, तो उन लोगों को भी पहचान पाते हैं जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से आपका सहयोग किया है, इस तरह कृतज्ञता के भाव को आप बहुत से लोगों के लिये महसूस कर पाते हैं।

अब यदि आप इन चार भावों में अंतर को देखें तो स्वयं के सही-मूल्यांकन के आधार पर सभी के लिये सम्मान, जिन्होंने श्रेष्ठता प्राप्त कर ली है उनके लिये श्रद्धा, जिन्होंने श्रेष्ठता प्राप्त करने का प्रयास किया है

उनके लिये गौरव, जिन्होंने श्रेष्ठता प्राप्त करने में मेरी सहायता की है उनके लिये कृतज्ञता का भाव होता है।

दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि जिनके लिये हममें श्रद्धा का भाव होता है उनके लिये हममें गौरव और सम्मान का भाव भी होगा ही। और जिनके लिये हममें गौरव का भाव होता है उनके लिये सम्मान का भाव तो होगा लेकिन श्रद्धा का भाव हो यह आवश्यक नहीं है। निःसंदेह, कृतज्ञता में सम्मान का भाव तो सम्मिलित होता ही है लेकिन गौरव का भाव भी हो यह आवश्यक नहीं है क्योंकि गौरव का भाव इस बात पर निर्भर करता है कि उन्होंने श्रेष्ठता के लिये प्रयत्न किया है या नहीं। इन चारों भावों में यही प्रमुख अंतर है।

ममता, वात्सल्य, श्रद्धा, गौरव और कृतज्ञता से संबंधित मुख्य बिंदु
(Salient Points regarding Care, Guidance, Reverence, Glory and Gratitude)

- ममता, अपने संबंधियों के शरीर के पोषण एवं संरक्षण के प्रति जिम्मेदारी एवं निष्ठा का भाव है। सीमित मात्रा में भौतिक सुविधा ममता के भाव की पूर्ति के लिये आवश्यक है।
- वात्सल्य, अपने संबंधियों के 'स्वयं(मैं)' में सही-समझ और सही-भाव सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी और निष्ठा का भाव है।
- मानव को सिर्फ शरीर मानने का परिणाम यह होता है कि हमारा अधिकतर ध्यान शरीर के अर्थ में ममता के भाव के निर्वाह पर ही बना रहता है जबकि दूसरे के 'स्वयं(मैं)' के लिये आवश्यक वात्सल्य के भाव के निर्वाह पर कम रहता है।
- श्रद्धा, श्रेष्ठता की स्वीकृति का भाव है। श्रेष्ठता का अर्थ है जीने के सभी स्तरों (मानव, परिवार, समाज, प्रकृति/ अस्तित्व) में व्यवस्था को समझना एवं व्यवस्था में जीना अर्थात् निरंतर सुख पूर्वक जीना।
- गौरव, जिन्होंने श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया उनके प्रति भाव। भले ही ये व्यक्ति पूर्ण रूप में श्रेष्ठता को प्राप्त न कर सकें हों।
- कृतज्ञता, जिन्होंने मेरी श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया है उनके प्रति भाव। इस प्रक्रिया में उन्होंने मेरे साथ सही-समझ का प्रस्ताव साझा किया हो या सही-भाव मुझ तक संचारित किया हो या आवश्यक भौतिक सुविधा उपलब्ध कराई हो।
- यदि आप उन लोगों की सूची बनायें जिन्होंने आपको सही-समझ, सही-भाव और भौतिक सुविधायें उपलब्ध करवाई हो तो यह सूची बहुत लंबी बन सकती है। इस सूची में किसी न किसी रूप में सभी व्यक्ति सम्मिलित होंगे, जो इस धरती पर हैं। इस प्रकार से आप अन्य व्यक्तियों के साथ आपसी-जुड़ाव और आपसी-संबंध को देख पाने के योग्य हो पाते हैं। जिससे धीरे-धीरे संपूर्ण समाज के लिये ही कृतज्ञता का भाव विकसित हो पाता है।

अपनी समझ को जाँचे
(Test your Understanding)

अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न
(Questions for Self-evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. स्नेह को परिभाषित कीजिये। स्नेह परिवार में व्यवस्था को कैसे सुनिश्चित करता है?
2. ममता और वात्सल्य के भाव की व्याख्या कीजिये?
3. श्रेष्ठता क्या है? क्या प्रतिस्पर्धा और श्रेष्ठता के लिये कार्य करना एक ही बात है? उदाहरण की सहायता से समझायें।
4. सम्मान, गौरव और श्रद्धा के बीच अंतर स्पष्ट कीजिये?
5. यदि कोई व्यक्ति आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक है तो उसके लिये आपमें, क्या भाव होंगे? स्वयं की आवश्यकताओं और शरीर की आवश्यकताओं के संदर्भ में व्याख्या करें।

अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास
(Practice Exercises for Self-exploration)

(विषय वस्तु के साथ जुड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही इन अभ्यासों को व्यक्तिगत स्तर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. उन लोगों की सूची बनाइये, जिनके साथ आप नजदीकी रूप से संबंध में जुड़े हुये हैं वे आपके परिवार, बड़े परिवार, समुदाय, गाँव, शहर आदि से हो सकते हैं। उस संबंध का क्या नाम है अर्थात् जिस नाम से आप उन्हें पुकारते हैं जैसे माता-पिता, भाई-बहन, चाचा, अध्यापक इत्यादि। यह भी ज्ञात कीजिये कि इस संबंध में आपको उनसे किस भाव की अपेक्षा है। जैसे आप अपने पिता से विश्वास और वात्सल्य के भाव की अपेक्षा करते हैं और साथ ही यह भी ज्ञात कीजिये कि आपमें उनके लिये क्या-क्या भाव हैं। अब यह भी जाँच करिये कि क्या इन भावों की पूर्ति हो पा रही है या नहीं? यह भी देखिये कि इनकी पूर्ति के लिये आपको स्वयं के विकास के अर्थ में क्या प्रयास करने की आवश्यकता है?

संबंध का नाम (व्यक्ति का नाम)	**भाव जिनकी मैं उनसे अपेक्षा करता हूँ**	**मेरे में उनके प्रति भाव**
मां (उषा देवी)	विश्वास, स्नेह, ममता, इत्यादि	विश्वास, सम्मान, कृतज्ञता, गौरव इत्यादि

2. आपके जीवन में, ऐसे व्यक्ति भी अवश्य होंगे जिन्होंने आप की श्रेष्ठता (व्यवस्था में जीना) के लिये प्रयास किया होगा और इसके लिये आपकी सहायता की होगी। ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के बारे में लिखिये कि उन्होंने आपके लिये क्या-क्या किया है।

व्यक्ति	**योगदान - उन्होंने आपके लिये क्या किया है?**	**प्राथमिक रूप से यह योगदान किस अर्थ में है सही-समझ, सही-भाव या भौतिक-सुविधा?**

   a. ऐसे व्यक्तियों के बारे में आपमें कौन से भाव हैं, आप इन भावों को उनके प्रति किस प्रकार व्यक्त करते हैं।
   b. इनके योगदान को प्राथमिक रूप से सही-समझ, संबंध में सही-भाव या भौतिक-सुविधा के आधार पर श्रेणीबद्ध कीजिये। आप के लिये कौन सी श्रेणी का महत्व अधिक है। और आजकल आप किस श्रेणी के अर्थ में लोगों की अधिक भागीदारी देखते हैं।

अब आप सूची में यह सब भी सम्मिलित करें, कि क्या आपने उन लोगों से कुछ ऐसी भी आशा की जिसको वे पूरा नहीं कर सके। यह एक रफ सूची है जो आपके लिये महत्त्वपूर्ण है।

उन्होंने आपके लिये क्या किया है? आपकी उनसे और क्या-क्या आशा थी जो वे पूरा नहीं कर सके?	**क्या आप में परिवार के अन्य सदस्यों के लिये भी इस प्रकार की आशा को पूरा करने की योग्यता है?**	**प्राथमिक रूप से यह भागीदारी किस से जुड़ी हुई है- सही-समझ, सही-भाव या भौतिक सुविधा?**

जाँच कीजिये कि क्या आप में अपने परिवार के अन्य सदस्यों के लिये भी इस प्रकार की आशा को पूरा करने की योग्यता है?

3. आपके रोल मॉडल कौन हैं? आपको उनके कौन से गुण अच्छे लगते हैं? आप में उनके प्रति क्या भाव हैं? क्या आप चारों स्तरों पर उनके जैसा ही जीना चाहते हैं? (जैसे व्यक्ति, परिवार, समाज एवं प्रकृति के स्तर पर) । उनके जैसा बनने के लिये आप क्या-क्या प्रयास कर रहे हैं? या आपको और किस प्रकार के प्रयास करने की आवश्यकता है?
4. Right here Right Now" फिल्म में से वह दृश्य याद कीजिये जिसमें लड़का अपने हाथ से बनाई हुई ड्राइंग देने के बाद चाँद नाम की लड़की से कहता है कि "मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ" आप को क्या लगता है, क्या यह प्रेम है या मोह? प्रेम और मोह में अंतर स्पष्ट कीजिये। इसको भी स्पष्ट कीजिये कि कैसे कुछ युवा इन दोनों में भ्रमित हो जाते हैं और इसका क्या परिणाम होता है? आपको क्या लगता है क्या प्रेम और मोह के बीच स्पष्टता आवश्यक है? यदि हाँ, तो सुझाव दीजिये कि इस स्पष्टता को किस प्रकार से सुनिश्चित किया जा सकता है।
5. आप श्रेष्ठता के अर्थ से क्या समझ पायें हैं। प्रतिस्पर्धा और श्रेष्ठता के बीच अंतर स्पष्ट कीजिये। आप किस प्रकार का प्रयास करने में सहज रह पाते हैं प्रतिस्पर्धा के लिये प्रयास करने में या श्रेष्ठता के लिये प्रयास करने में?
6. परिवार की दैनिक दिनचर्या में आप परिवार व्यवस्था को बनाने के लिये कौन सी गतिविधियाँ करते है एवं और किन गतिविधियों को जोड़ने की आवश्यकता है? सामूहिक गतिविधि के रूप में आपस में 'परिवार में व्यवस्था' के अर्थ में कौन से विषयों पर चर्चा होती है एवं कौन से विषयों पर और चर्चा करने की आवश्यकता है? अपने परिवार में व्यवस्था को सुनिश्चित करने के लिये आप यदि आवश्यक समझते है तो अपनी दैनिक दिनचर्या का इस अर्थ में पुनः अवलोकन करें एवं इसमें आवश्यक संशोधन भी करें।
   (जैसे एक साथ भोजन करना, सामान्य सुविधाओं को साझा करना, घरेलू कामकाज में एक दूसरे की मदद करना, दिन कैसे बीता इस पर चर्चा करना, विचार और भाव को साझा करना, अगले दिन के लिये एक साथ मिलकर योजना बनाना इत्यादि)

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से)

आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

"क्या केवल संबंध की समझ के साथ ही संबंध पूर्वक जीना संभव है"?

"चाहना पर विश्वास ही संबंध का आधार है"।

"सम्मान अर्थात् सही-मूल्यांकन दूसरे व्यक्ति के साथ परस्पर-पूरकता को सुनिश्चित करने के लिये आवश्यक है"।

“अंततः हम सभी प्रेम (पूर्ण-मूल्य) न्याय और अखंड-समाज ही चाहते हैं”।

“संबंधों में सौहार्दपूर्ण जीने के लिये परिवार एक अभ्यास स्थली के रूप में है”

अनुभाग-4: आपके प्रश्न
(Your Questions)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय 8(ब)
मानव-मानव सम्बंध मे पूर्ण मूल्य-प्रेम

प्रेम- पूर्ण मूल्य
(Love as the Complete Value)

पहले आठ मूल्यों पर चर्चा कर लेने के उपरांत अब हम प्रेम मूल्य की बात कर सकते हैं जिसमें अन्य सभी मूल्य सम्मिलित होते हैं, इसलिये इसे पूर्ण-मूल्य भी कहते हैं।

आप स्वयं में जाँचें कि आपको क्या सहज-स्वीकार्य है- संबंध पूर्वक जीना एक के साथ, अनेक के साथ, हर एक के साथ या किसी के भी साथ नहीं? हम यह देख सकते हैं कि किसी के साथ भी संबंध पूर्वक नहीं जीना हमें सहज-स्वीकार्य नहीं होता है। साथ ही यह भी देख सकते हैं कि हमें एक के साथ, अनेक के साथ और अंततः हर एक के साथ ही संबंध पूर्वक जीना सहज-स्वीकार्य होता है। एक से या अनेक से संबंधित होने के भाव को हम स्नेह का भाव कहते हैं। लेकिन आप में जो हर एक के साथ संबंध पूर्वक जीने की सहज-स्वीकृति है उसी को प्रेम का भाव कहा है।

प्रेम हर एक से संबंधित होने का भाव है। यह भाव स्नेह के भाव से आरम्भ होता है जिसका अध्ययन हम पहले ही कर चुके हैं। जब स्नेह के भाव का विस्तार होता है अर्थात् जब इसमें अन्य सभी भाव सम्मिलित हो जाते हैं तो यही प्रेम का भाव कहलाता है। हम संबंध को स्नेह के भाव के साथ शुरू करते हैं जो कि प्रेम के भाव के साथ पूरा होता है। इसलिये इसे पूर्ण मूल्य कहा गया।

हर एक के साथ संबंध की स्वीकृति का भाव 'प्रेम' है।

हम सभी यहीं पहुँचना चाहते हैं। यह दूसरे मानव के साथ संबंध की स्वीकृति के भाव से आरम्भ होता है, जिसका आशय है कि दूसरे को उसकी यथास्थिति अर्थात् उसकी सहज-स्वीकृति (चाहना) और उसकी वर्तमान योग्यता के साथ स्वीकार करना। धीरे-धीरे इसका विस्तार सम्पूर्ण मानव जाति और फिर प्रकृति की प्रत्येक इकाई तक होता है अर्थात् हर एक मानव के साथ और शेष-प्रकृति की प्रत्येक इकाई के साथ। यह इसी तरह से पूर्णता की ओर अग्रसर होता रहता है। प्रेम का यही अर्थ है: सभी (हर एक मानव के साथ-साथ प्रकृति की प्रत्येक इकाई तक) के साथ संबंध की स्वीकृति का भाव।

प्रेम के भाव की अभिव्यक्ति:

प्रेम का भाव, दया, कृपा और करुणा के रूप में अभिव्यक्त होता है:

- किसी के पास आवश्यक वस्तु नहीं है, लेकिन सदुपयोग की योग्यता है तो उसे वह वस्तु उपलब्ध कर देना ही दया है – दूसरे व्यक्ति को किसी भौतिक सुविधा की,सम्बंध में भाव की या स्वयं में सही समझ की आवश्यकता हो सकती है।
- किसी के पास वस्तु तो है लेकिन सदुपयोग की योग्यता नहीं है अर्थात् वह व्यक्ति उस वस्तु के सदुपयोग की आवश्यकता को ही महसूस नहीं कर पा रहा है, उसमें आवश्यकता महसूस करने हेतु सही-समझ को विकसित कर देना ही कृपा है। उदाहरण के लिये व्यक्ति को सही-समझ की आवश्यकता तो है, लेकिन वह अभी इस आवश्यकता को महसूस नहीं कर पा रहा है। उसे इसकी आवश्यकता को महसूस हो जाये एवं उसमें सही-समझ विकसित हो जाये इसके लिये सहयोग करना ही कृपा है।

- करुणा का आशय है किसी व्यक्ति को बिना किसी शर्त के सहयोग प्रदान करने की तत्परता होना, भले ही उस व्यक्ति के पास वस्तु हो या न हो, वस्तु के सदुपयोग की योग्यता हो या न हो, फिर भी उसके विकास में सहयोग के लिये तत्पर रहना वह भी बिना किसी शर्त के यही करुणा का भाव है।

प्रेम –पूर्ण मूल्य के रूप मे :

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि प्रेम का भाव तो सभी के लिये होगा लेकिन, यह केवल उन्हीं के साथ व्यक्त होता है जो हमारे संपर्क में आते हैं। जब हम प्रेम के भाव की बात करते हैं तो यह केवल परिवार के सदस्यों या मित्रों के लिये ही हो ऐसा आवश्यक नहीं है, बल्कि यह हर एक के लिये होगा, जिनके साथ आप परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप में संपर्क में रहते हैं। यह भाव के रूप में तो सभी के लिये रहता है किन्तु इसकी अभिव्यक्ति तभी होती है जब दूसरा व्यक्ति आपके संपर्क में आता है। अंततोगत्वा, हम सब इस स्थिति में पहुँचना ही चाहते हैं, प्रेम के भाव को स्वयं में सुनिश्चित करना ही चाहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति के साथ-साथ प्रकृति की प्रत्येक इकाई के साथ भी संबंध को महसूस करना ही चाहते हैं। यही पूर्ण मूल्य है।

हम यह देख सकते हैं कि जब हम इस प्रेम के भाव का स्वयं में अनुभव कर पाते हैं, तभी हम इसे दूसरे के साथ साझा कर पाने में अर्थात् व्यक्त कर पाने में सक्षम हो पाते हैं। यह प्रेम का भाव ही है जिसके आधार पर अखंड-समाज के लिये मार्ग प्रशस्त होता है।

जब तक हर एक के साथ संबंध के भाव को मानव महसूस नहीं कर लेता, तब तक समाज खंडित ही रहेगा। क्योंकि जब आप सिर्फ अपने परिवार के लोगों के साथ ही संबंध को देखते हैं, तब समाज दो भाग में विभक्त हो जाता है; पहला भाग जिसे आप अपने परिवार के रूप में देख रहें है और दूसरा भाग जिसे आप परिवार के बाहर के रूप में देखते हैं। इसी प्रकार से, यदि आप उन लोगों के साथ स्नेह का भाव रखते हैं, जो लोग आपके समुदाय के हैं और उन लोगों से नहीं जो आपके समुदाय से बाहर के हैं तो भी आप समाज को दो भागों में विभक्त करके देख रहे हैं-मेरा समुदाय और बाहरी समुदाय।

प्रेम पूर्ण मूल्य है; क्योंकि हम यहीं पहुँचना चाहते हैं। इस भाव में अन्य सभी सहज-स्वीकार्य भाव सम्मिलित ही रहते हैं जिनके बारे में अब तक हमने चर्चा की जैसे विश्वास, सम्मान, स्नेह इत्यादि।

जब हम प्रेम के भाव की बात करते हैं तो निःसंदेह यहाँ पर संवेदना पर आधारित किसी भाव की बात नहीं हो रही है। प्रेम के भाव की यह बात स्वयं की समझ, दूसरे की समझ, समग्र प्रकृति की समझ और अंततः समग्र अस्तित्व की समझ पर आधारित है जहाँ हम प्रत्येक मानव के साथ-साथ शेष-प्रकृति की प्रत्येक इकाई के साथ भी संबंध को देख पाते हैं। वास्तव में प्रेम का यह भाव 'अस्तित्व सह-अस्तित्व है' के अनुभव पर आधारित है, जिसके बारे में हम विस्तार पूर्वक अध्याय-11 में चर्चा प्रेम का यह भाव प्रकृति में जो 'अंतर्निहित व्यवस्था' है, उसकी समझ से आता है, यह भाव एक इकाई की दूसरी इकाई के साथ 'परस्पर-पूरकता' के अर्थ में संबंध के निर्वाह की समझ से आता है जिसके बारे में हम अध्याय-10 में चर्चा करेंगे। इस प्रकार प्रेम का यह भाव समझ से उत्पन्न होता है न कि संवेदना से।

प्रेम का यह भाव हर एक के साथ संबंधित होने की स्पष्टता के साथ-साथ समग्र अस्तित्व की समझ पर आधारित है; अतः हम यह देख सकते हैं, प्रेम पूर्ण मूल्य है, जहाँ हम सब पहुँचना ही चाहते हैं। यद्यपि हम एक के साथ भी संबंध के निर्वाह को निरंतरता में भले ही सुनिश्चित नहीं कर पा रहे हों तो भी हमारी चाहना तो हर एक के साथ संबंध पूर्वक जीने की ही होती है।

प्रेम और आसक्ति के बीच अंतर

(Distinguishing Between Love and Infatuation)

जैसा कि हमने प्रेम के भाव की बात की, कि ये संवेदना आधारित नहीं है। यदि आप संवेदना आधारित किसी भाव को महसूस कर रहे हैं, तो वह आसक्ति (infatuation) है, न कि प्रेम। इस आसक्ति की स्थिति में जो भी आपके इंद्रिय सुख के अर्थ में होता है, वही आपके लिये मूल्यवान हो जाता है; वही आपके जीने का लक्ष्य या मुख्य मुद्दा बन जाता है। वास्तव में यह आसक्ति शर्त आधारित होती है, अर्थात् यह केवल तभी तक रहती है, जब तक आपको वह अपेक्षित संवेदना मिलती रहे। अतः आसक्ति क्षणिक होती है, अस्थायी होती है, यह लम्बे समय तक नहीं रह पाती और एक बार जब इसका प्रभाव समाप्त हो जाता है, तब भावों पर आधारित दीर्घकालिक मुद्दे पुनः आपके लिये प्रमुख हो जाते हैं।

> *यह उदाहरण उन एक अध्यापक का है जो एक बार पागलखाना देखने गये थे। जहाँ एक डॉक्टर ने उन्हें पागलखाने का भ्रमण कराया। जब वे पहले कमरे के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वहाँ एक युवा लड़का बंद था जो बहुत तेज-तेज चिल्ला रहा था और अपने बाल नोच रहा था। अध्यापक ने बहुत भोलेपन से उस डाक्टर से पूछा, "इस लड़के को क्या हुआ है"। डॉक्टर ने बताया कि इसे एक लड़की से प्यार हो गया था (अर्थात् यह एक लड़की पर मुग्ध हो गया था) और यह उससे शादी करना चाहता था परंतु इसकी शादी उससे नहीं हो पायी, जिसकी वजह से यह पूरी तरह टूट गया और इसे पागलखाने लाना पड़ा। अध्यापक को यह सुनकर बहुत बुरा लगा। इसके बाद उन्हें दूसरे कमरे की ओर ले जाया गया। वहाँ एक और युवा चिल्ला रहा था और अपने बाल नोच रहा था। तब अध्यापक ने पूछा, "इसे क्या हुआ है?" तब डॉक्टर ने जवाब दिया कि "इसकी शादी उसी लड़की से हो गई, जिसके साथ रहकर ये पागल हो गया" अर्थात् वही लड़की जिससे साथ शादी न हो पाने के कारण पहले कमरे वाला लड़का पागल हो गया था।*

जब हम अपनेसम्बंध को सिर्फ सुंदरता और संवेदना पर आधारित दृष्टि से देखते हैं, तो एक 'स्वयं' का दूसरे 'स्वयं' से का संबंध नहीं देख पाते अतः ऐसे संबंध बहुत जल्द या कुछ समय पश्चात अस्थिर हो ही जाते हैं। इस तरह की अस्थिरता वालेसम्बंध को झेलते हुये लोग सदैव पागलखाने ही जायें ऐसा आवश्यक नहीं परन्तु उनका घर पागलखाने जैसा अवश्य बन जाता है।

विवाह-विच्छेद जैसी घटनायें अधिकांशतः भाव के स्तर पर होने वाली कमी के कारण ही होती हैं; जिनका मुख्य कारण संबंध में भाव की सही-समझ नहीं होना है। यदि आप में सही-समझ के आधार पर प्रेम का भाव होता है तो यह भाव आपमें निरंतरता में बना रहता है, जबकि आपने यदि संवेदना या सुन्दरता आधारित आसक्ति या मुग्धता को ही प्रेम मान लिया है, तो इसमें निरंतरता नहीं हो पाती है। यदि आपमें सही-समझ आधारित प्रेम का भाव है, तो दूसरे के व्यवहार में होने वाली कमियों के बावजूद आपमें दूसरे के लिये स्वीकृति का भाव बना ही रहेगा क्योंकि अब आप यह देख पाते हैं कि ऐसा उसकी योग्यता के अभाव के कारण हो रहा है चाहना तो उसकी भी आप ही की तरह सुखी होकर सुखी करने की है; इस तरह आप अपनी तरफ से संबंध में बिना किसी शर्त जिम्मेदारी पूर्वक दूसरे के विकास में सहयोग करते हुये जी पाते हैं। कुछ समय पश्चात जब दूसरे में भी योग्यता का विकास हो जाता है, तो वह भी विश्वास से शुरू करके सम्मान, स्नेह आदि भावों को स्वयं में सुनिश्चित करते हुये प्रेम तक पहुँच पाता है। और दोनों एक दूसरे के लिये अपने में प्रेम के भाव को निरंतरता में बनाये रखते हुये, अब अन्य के साथ भी इस प्रेम के भाव का निर्वाह करने में बिना किसी शर्त एक दूसरे का सहयोग करते हैं; तब आपको दूसरे के बारे में लगता है कि वह आपका "उत्तम जीवन साथी" है, "उत्तम मित्र", है इत्यादि। अतः जब हम सही-समझ के साथ स्वयं में सही-भाव को सुनिश्चित करते हुये जीते हैं, तो प्रेम के भाव तक पहुँच पाते हैं, निरंतरता में इसको स्वयं में बनाये रख पाते हैं और एक दूसरे के परस्पर-विकास के लिये सहयोग कर पाते हैं, जिससे संबंध पूर्वक जीने में निरंतरता में सफल हो पाते हैं।

अब आप स्वयं से पूछ सकते हैं कि आप को क्या सहज-स्वीकार्य है? स्वयं में प्रेम का भाव (सही समझ के आधार पर) होना अथवा मुग्ध या आसक्त होना (संवेदना या सुन्दरता के आधार पर)? यह देखने का

भी प्रयत्न कीजिये कि वर्तमान में क्या हो रहा है, एवं उसका परिवार और समाज पर क्या प्रभाव पड़ रहा है?

सही भाव- स्वयं के आधार पर या दूसरे से?
(Right Feeling- Within Myself or from the Other?)

इस पृष्ठभूमि के साथ हम स्वयं से यह पूछ सकते हैं कि किसकी निरंतरता हो सकती है

- स्वयं के आधार पर होने वाले सही-भाव की या
- दूसरे से मिलने वाले सही भाव की

निःसंदेह, जब हम यह प्रश्न पूछते हैं तो उत्तर बहुत स्पष्ट दिखाई देता है कि स्वयं में सही-भाव की निरंतरता तभी हो सकती है, जब यह हमारी सही-समझ पर आधारित हो। केवल तभी ये सही भाव मेरे में निरंतर सुनिश्चित हो पाते हैं। और जब हम दूसरे से सही-भाव पाने की अपेक्षा रखते हैं, तो ये भाव कभी हमें मिल पाते हैं और कभी नहीं अतः दूसरे से मिलने वाले भाव में निश्चितता या निरंतरता नहीं हो पाती है। इसके अलावा, दूसरे से मिलने वाले भाव से स्वयं में आवेश की एक अस्थायी स्थिति भी बनती है जो स्वयं में अव्यवस्था का कारण बनता है।

इसी स्थिति की ओर हम प्रारंभ से ही संकेत कर रहे हैं कि 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता निरंतर सुख है। यही भाव में पूर्णता की स्थिति है, जो हम सब में चाहना के रूप में है। हमने भाव में पूर्णता की इस स्थिति को ही पूर्ण मूल्य अर्थात् प्रेम का भाव कहा। इस अध्याय में हमने जिन अन्य भावों की चर्चा की है, वे इस पूर्ण भाव तक पहुंचने के ही विभिन्न स्तर हैं।

हम इस तरफ भी संकेत करते रहे हैं, कि सही-भाव का आधार सही-समझ है। केवल सही-समझ पर आधारित भाव में ही निरंतरता हो सकती है। घटनाओं पर आधारित भाव अस्थायी होते हैं। विश्वास आधार मूल्य है, जो इस समझ पर आधारित है कि प्रत्येक 'स्वयं(मैं)' संबंध की सहज-स्वीकृति से संपन्न है अर्थात् प्रत्येक 'स्वयं(मैं)' में दूसरे 'स्वयं(मैं)' को सुखी करने की ही चाहता है। अब जहाँ तक दूसरे में आपको सुखी करने की योग्यता का प्रश्न है, तो वह किसी में आपसे कम हो सकती है और किसी में अधिक, क्योंकि दूसरे की योग्यता हमेशा आपकी अपेक्षा के अनुरूप ही हो यह आवश्यक नहीं है। इसे आप बहुत ही स्पष्टता के साथ अपने लिये भी देख सकते हैं, जैसे आप स्वयं को हमेशा सुखी करना चाहते हैं लेकिन अपनी योग्यता की कमी के कारण आप स्वयं को हमेशा सुखी नहीं कर पाते।

क्या आपको यह स्पष्ट है कि आपमें सही-भाव की निरंतरता तभी हो सकती है, जब यह सही-समझ पर आधारित हो?

संबंध के निर्वाह में भौतिक-सुविधाओं की भूमिका
(Role of Physical Facility in Fulfilment of Relationship)

अब आप यह देख सकते हैं कि मानव-मानव संबंध में भाव के निर्वाह के लिये भौतिक सुविधाओं की भूमिका बहुत ही सीमित है। सिर्फ ममता के भाव के निर्वाह के लिये ही भौतिक सुविधा अनिवार्य है क्योंकि आपके या आपके परिवार के सदस्यों के शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के लिये सीमित मात्रा में भौतिक-सुविधाओं की आवश्यकता तो है ही।

ममता के भाव के अतिरिक्त, अन्य भावों के निर्वाह में भौतिक सुविधा की भूमिका केवल प्रतीकात्मक है। उदाहरण के लिये आप स्नेह के भाव को व्यक्त करने के लिये, किसी को चॉकलेट देते हैं। यहाँ पर चॉकलेट स्नेह नहीं है, बल्कि स्नेह के भाव का प्रतीक मात्र है। इसी प्रकार से आप अन्य भावों के निर्वाह के लिये भी भौतिक सुविधा की भूमिका को देख सकते हैं।

व्यवहार में प्रतिक्रिया एवं अनुक्रिया
(Response and Reaction in Behaviour)

संबंध को समझने का महत्वपूर्ण अर्थ यह है कि हमें दूसरे की चाहने पर विश्वास की स्पष्टता है, जो कि हमारे जीने में प्रतिक्रिया या संभावित अनुक्रिया के रूप में दिखाई देता है। अनुक्रिया को समझने के अर्थ में प्रतिक्रिया और अनुक्रिया के बीच के अंतर को निम्नलिखित तालिका के माध्यम से दिखाया गया है।

प्रतिक्रिया (Reaction)	**अनुक्रिया (Response)**
जब आप अपना व्यवहार, दूसरे के आधार पर निर्धारित करते हैं।	जब आप अपना व्यवहार स्वयं की सही-समझ के आधार पर निर्धारित करते हैं।
यह इस पर निर्भर करती है कि आप दूसरे के व्यवहार को पसंद (आस्वादन) करते हैं या नापसंद करते है: • यदि दूसरे के व्यवहार आप के अनुकूल है तो आप भी उससे ठीक व्यवहार करते हैं। • यदि दूसरे का व्यवहार आप के अनुकूल नहीं है तो आप भी उससे ठीक व्यवहार नहीं करते हैं।	आपका व्यवहार सदैव आपकी सही-समझ और सही-भाव पर आधारित होता है, जिसमें निश्चितता होती है और यह उभय-सुख के अर्थ में होता है।
यदि आपका व्यवहार दूसरों के द्वारा निर्धारित किया जा रहा है, तो आपका रिमोट कंट्रोल दूसरों के हाथ में है, अर्थात् आप परतंत्र हैं।	यदि आप अपना व्यवहार स्वयं की सहज-स्वीकृति के आधार पर निर्धारित कर पाते हैं, तो आप स्वतंत्र हैं, अर्थात् स्वयं में व्यवस्थित हैं।
• आप को दूसरे की चाहना पर संदेह है। • आप दूसरे के व्यवहार से उत्तेजित या आहत होते रहते हैं। • आपसम्बंध में परस्पर-विकास एवं उभय-सुख को अपना उत्तरदायित्व नहीं समझते हैं।	• आप को दूसरे की चाहना पर स्पष्टता है। • आप दूसरे के व्यवहार से न तो परेशान होते हैं और न ही उत्तेजित (उनके व्यवहार को उनकी योग्यता के सही मूल्यांकन के लिये आप एक सूचना की तरह लेते हैं)। • आप स्वयं में उभय-सुख और परस्पर-विकास के लिये उत्तरदायित्व को स्वीकारे रहते हैं।
आपके आचरण में अनिश्चितता रहती है।	आपके आचरण में निश्चितता रहती है।

न्याय की समझ
(Understanding Justice)

इस पृष्ठभूमि के साथ अब हमसम्बंध में न्याय के बारे में बात कर सकते हैं। हम में से प्रत्येक व्यक्ति हर क्षण, हर पल संबंध में न्याय चाहता ही है; आपको क्या लगता है, ऐसा है अथवा नहीं? अब हम न्याय के प्रस्ताव पर चर्चा के साथ-साथ परिवार व्यवस्था की इस पूरी चर्चा का भी निष्कर्ष निकलने का प्रयास करेंगे:

न्याय, मानव-मानव संबंध की पहचान, उसका निर्वाह एवं मूल्यांकन है जिससे उभय-सुख सुनिश्चित होता है।

इसे थोड़ा विस्तार से समझते हैं:

- संबंध की पहचान का अर्थ है, कि संबंध को बिना किसी शर्त के स्वीकार करना। दूसरे को उसकी पूरी संभावनाओं अर्थात् उसकी क्षमता और उसकी योग्यता के साथ स्वीकार करना।
- संबंधों के निर्वाह का अर्थ है:
    - स्वयं में सहज-स्वीकार्य भावों को सुनिश्चित करना और इन्हीं भावों के साथ दूसरों के प्रति व्यवहार में व्यक्त होना।
    - बिना किसी शर्त दूसरों के साथ, जिम्मेदारी पूर्वक जीना। यह दूसरों को सहज बनाता है और आश्वस्त भी करता है।
    - परस्पर-विकास के लिये प्रयत्न करना अर्थात् अपनी स्वयं की योग्यता में विकास के लिये प्रयास करना और दूसरे की योग्यता के विकास में सहयोगी होना।
- मूल्यांकन का आशय, यह सत्यापित करने से है कि हमारा सही-भाव दूसरे तक पहुँचा या नहीं और दूसरा इस सही भाव को देख पा रहा है या नहीं।

व्यक्ति कोसम्बंध में निरंतर न्याय पूर्वक जीने के लिये स्वयं में इसकी योग्यता सुनिश्चित करनी पड़ती है। जब मेरी तरफ से संबंध की पहचान, निर्वाह और मूल्यांकन सही होता है, तो मैं सुखी होता हूँ। और जब दूसरा व्यक्ति मेरे भाव की अभिव्यक्ति का सही मूल्यांकन कर पाता है तो वह भी सुखी होता है। परन्तु इसके लिये योग्यता विकसित होने में समय लग सकता है।

अतः कभी-कभी उभय-सुख तुरंत सुनिश्चित हो पाता है अर्थात् संबंध में न्याय हो पाता है विशेषकर जब दोनों ने संबंध में जीने की योग्यता को स्वयं में सुनिश्चित कर ली है और कभी-कभी कुछ समय भी लग सकता हैं, यदि दोनों में से किसी एक ने भी संबंध में जीने की आवश्यक योग्यता को स्वयं में सुनिश्चित नहीं किया है, अर्थात् यदि दोनों में से किसी एक में भी संबंध में जीने की आवश्यक योग्यता नहीं है, तो न्याय पूरा नहीं हो पाता है। यदि कोई व्यक्ति मान्यताओं में फंसा हुआ है या संवेदना से ही सुख पाना चाहता है तो न तो वह स्वयं में निरंतर सुख सुनिश्चित कर पाता है और न ही दूसरे के लिये सहयोगी हो पाता है। जब आप न्याय को इतनी सटीकता से देख पायेंगे, तभी आप यह भी समझ पायेंगे कि आजसम्बंध में इतनी समस्यायें क्यों हैं। कई बार जब हम भाव की गलत पहचान से ही शुरू करते हैं, तो न्याय सुनिश्चित हो पाने की संभावना बहुत कम हो जाती है।

उदाहरण के लिये यदि हमने यह मान लिया है कि अस्तित्व में जीने के लिये संघर्ष है तो हम विरोध के भाव (ईर्ष्या) से ही शुरू करते हैं। इस गलत भाव के साथ चाहें जितना भी प्रयत्न कर लें अंततः हम प्रतिस्पर्धा, विरोध, झगड़ा यहाँ तक कि युद्ध जैसी स्थिति में भी पड़ जाते हैं। हममें ऐसी अनेक गलत मान्यतायें हो सकती हैं जिनके आधार पर गलत भाव आते हैं जो न्याय के सुनिश्चित होने की संभावना में बाधा बनते हैं।

परंतु अच्छी बात यह है कि, यदि एक बार हमने न्याय के अर्थ में जीने की अपनी योग्यता विकसित कर ली, तोसम्बंध को पहचानना अर्थात् उनमें भावों को पहचानना और उनको स्वयं में सुनिश्चित करना एक आसान प्रक्रिया बन जाती है, जिससे अंततः उभय-सुख होता है, जो अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है, क्या आप यह देख पा रहे हैं?

इस प्रकार, उभय-सुख सुनिश्चित हो पाता है। संक्षेप में देखें तो न्याय का यही अर्थ है। क्या न्याय की यह परिभाषा आपको सहज-स्वीकार्य है? क्या न्याय वांछनीय है? जाँच करके देखें।

> *यह उदाहरण एक वकील का है जो न्याय की इस परिभाषा को मूल्य शिक्षा की एक कार्यशाला में समझ पाये थे जो कि उस समय एक प्रतिष्ठित संस्थान में चल रही थी। कार्यशाला में न्याय पर हुई चर्चा से वे बहुत प्रभावित हुये और उन्होंने इसे अपनी वकालत में प्रयोग करने का निर्णय*

लिया। उस समय वे एक युवा दम्पति के विवाह-विच्छेद (तलाक) से संबंधित केस को देख रहे थे, लड़का उसी संस्थान में पीएचडी का छात्र था। अब वकील ने उस लड़के को और उसकी पत्नी को बुलाया और उन दोनों से इस कार्यशाला में भाग लेने का आग्रह किया। उन्होंने कहा कि हम आपके केस को बाद में आगे बढ़ायेंगे पहले आप दोनों इस कार्यशाला में भाग लीजिये और जो कुछ भी कार्यशाला में बताया जाता है, उसकी जाँच परख कीजिए। । इसके लिये लड़की तो तुरंत तैयार हो गयी किन्तु लड़के ने थोड़ी असमर्थता जताई परन्तु उनके अधिक जोर देने पर वह लड़का अनमने ढंग से कार्यशाला में भाग लेने के लिये तैयार हो गया। फिर उन दोनों ने कार्यशाला में प्रतिभाग किया।

लड़की ने इस कार्यशाला को बहुत जिम्मेदारी से सुना, तो उसका ध्यान चाहना और योग्यता के अंतर पर गया वह यह देख पायी कि पति-पत्नी संबंध में उसने कई बार पति की चाहना पर शंका की है जबकि समस्या तो योग्यता की है; एक बार यह अंतर ध्यान में आते ही वही संबंध उसे अब अलग तरह से दिखने लगा। लड़की ने कार्यशाला समाप्त होने के बाद वकील से इच्छा जाहिर की किसम्बंध की इस समझ के आधार पर मैं अपने बिगड़े हुये संबंध को फिर से जी कर देखना चाहती हूँ। अभी तक मुझे लगता था कि मैं सही हूँ और सारी गलती मेरे पति की है परन्तु अब मुझे लग रहा है कि बहुत सी गलतियाँ मेरे पति ने अपनी योग्यता की कमी के कारण की थी, जबकि उनकी चाहना ऐसा करने की नहीं थी। मैं यह देख पा रही हूँ कि इससे मिलती जुलती बहुत सी कमियाँ मेरी योग्यता में भी हैं ही। यदि ऐसा संभव हो पाये तो मैं अपनी जिम्मेदारी पर, संबंध में इन भावों की समझ के आधार पर अपने वैवाहिक संबंध को पुनः जीकर देखना चाहती हूँ। इस प्रकार उसने विवाह-विच्छेद का प्रार्थना पत्र वापस लेने की इच्छा जाहिर की। जिस पर वकील साहब ने तुरंत सहमति दे दी।

वकील साहब काफी खुश थे कि उनका प्रयास सफल हो रहा है। फिर एक दिन लड़का भी उनसे मिलने आया तब वकील साहब ने काफी अपेक्षा से उससे पूछा कि कार्यशाला कैसी रही; लड़के ने कहा बस हो गयी अब आप मेरा केस आगे बढ़ायें; वकील साहब ने कहा "लगता है तुमने कार्यशाला में ध्यान नहीं दिया, तुम्हें इस कार्यशाला में दुबारा भाग लेना चाहिये"। इस पर लड़का नाराज होकर बोला "मैं केस के लिये आपको भुगतान कर रहा हूँ, अगर आप मेरा केस आगे नहीं बढ़ा सकते तो मेरे पेपर्स मुझे वापस दे दीजिये, मैं किसी दूसरे वकील से बात कर लूँगा"। वकील ने लड़के से कहा, ठीक है मैं आपके सारे पेपर्स वापस कर देता हूँ परन्तु एक पेपर नहीं दूंगा जिस पर आपकी पत्नी ने विवाह-विच्छेद के लिये सहमति दी थी; क्योंकि अब आपको उनसे पुनः सहमति लेनी होगी और आपकी जानकारी के लिये बता दूं कि अब आपकी पत्नी विवाह विच्छेद के लिये तैयार नहीं है। अतः अच्छा यही रहेगा कि आप एक बार और उस कार्यशाला में भाग लें और जब आप वापस आयेंगे तब हम इस विषय पर चर्चा करेंगे फिर जैसी आप लोगों की सहमति होगी वैसा करेंगे"।

परेशान होकर लड़का दूसरी बार कार्यशाला में पहुंचा। इस बार उसने सजग होकर प्रतिभाग किया, उसका ध्यान इस बात पर गया कि यदि हम अपनी कल्पनाशीलता के प्रति सजग नहीं रहते हैं, तो अपने कार्य स्थल पर पड़ने वाले दबाव को घर ले आते हैं; कहीं और का क्रोध किसी और पर निकाल देते हैं, जिसका प्रभाव संबंध पर भी पड़ता है; यदि हम अपनी कल्पनाशीलता के प्रति सजग हैं तो विपरीत परिस्थितियों में भी स्वयं को व्यवस्थित रख पाते हैं या कम से कम अपने व्यवहार में होने वाली प्रतिक्रिया को रोक पाते हैं जिसके कारण संबंध और बेहतर हो पाते हैं। अतः उसने भी वकील से अपनी पत्नी के साथ संबंध में पुनः जी कर देखने की इच्छा जताई। दोनों ने आपस में इसे एक प्रयोग की तरह शुरू किया था और इस प्रकार उनका संबंध अब तक चल रहा है। निःसंदेह यह एहसास होना भी आवश्यक है कि इन भावों को स्वयं में सुनिश्चित करना और परस्परता में उभय-सुख को सुनिश्चित करना एक लम्बी प्रक्रिया है, जिसमें

एक लंबा सफर तय करना होता है इसलिये ऐसा समझने और जीने के लिये एक दूसरे की योग्यता बढ़ाने में सहयोग करते रहना आवश्यक है बजाय इसके कि एक दूसरे की कमियों की शिकायत करते रहें।

आपको क्या लगता है उन वकील का क्या हुआ होगा? उन वकील की छवि अब संबंध सुनिश्चित करने में सहयोग करने वाले वकील के रूप में विकसित होने लगी और इस तरह के अन्य केस भी उनके पास आने लगे क्योंकि वास्तव में संबंध तोड़ना तो किसी को भी सहज स्वीकार होता नहीं, मजबूरी अवश्य हो सकती है। लोगसम्बंध में न्याय पूर्वक जीने में सफल हो पायें वास्तव में वकालत और न्यायालय की सफलता भी इसी में है।

जाँच कर देखें कि क्या आपको अपने परिवार में न्याय सहज-स्वीकार्य है? यह भी जाँच कर देखिये कि आप अपने परिवार में अपनी तरफ से कितनेसम्बंध में न्याय सुनिश्चित कर पाते हैं? याद रखिये न्याय सुनिश्चित होने की पहचान उभय-सुख है।

जब हम इस बात पर विचार करते हैं, तो आसानी से यह देख पाते हैं कि हमें परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य लोगों से भी न्याय की अपेक्षा है। हम यह अपेक्षा करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति हमारे साथ सही व्यवहार करे और हम भी सामान्य रूप से दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार ही करना चाहते हैं। हमारी सहज-स्वीकृति परिवार से लेकर विश्व-परिवार तक न्याय पूर्वक जीने की है अर्थात् परिवार में न्याय के साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति के साथ न्याय पूर्वक जीना। वास्तव में हम इसी प्रकार से जीना ही चाहते हैं।

हमारी सहज-स्वीकृति अखंड मानवीय परिवार अर्थात् अखंड-समाज के लिये है। परिवार में व्यवस्था का यही अर्थ है।

मेरे परिवार में मेरी भागीदारी (मूल्य)
(My Participation (Value) in My Family)

(परिवार में व्यवस्था के लिये प्रयास करना)

परिवारों में महत्वपूर्ण समस्या भावों की है। यह भाव एक स्वयं में दूसरे स्वयं के प्रति हैं।

परिवार में मेरी भागीदारी (मूल्य), परिवार में व्यवस्था सुनिश्चित करना, उभय-सुख सुनिश्चित करना, परिवार में न्याय सुनिश्चित करना है जो निम्नलिखित आधार पर होता है:

- स्वयं में सही-भाव (विश्वास, सम्मान, स्नेह, ममता, वात्सल्य, गौरव, कृतज्ञता एवं प्रेम) सुनिश्चित करना - इससे मेरे में सुख सुनिश्चित होता है।
- दूसरे के साथ इन भावों को व्यक्त करना, साझा करना- जब दूसरा व्यक्ति इन भावों का सही-मूल्यांकन कर पाता है तो वह भी सुखी होता है, परिणाम स्वरूप उभय-सुख सुनिश्चित हो पाता है। मेरी भागीदारी दूसरों के स्व-विकास में सहयोग करना है।

परिवार में इस तैयारी के साथ, हम बड़े समाज अर्थात् अपने पड़ोसी, अपने समुदाय इत्यादि में अर्थपूर्ण भागीदारी की योग्यता सुनिश्चित कर पाते हैं। जब हम संबंध को पूर्णता के अर्थ में पहचानने और स्वीकार करने के योग्य हो पाते हैं, तो हम प्रत्येक मानव को परिवार के सदस्य के रूप में देख पाते हैं। हर एक को संबंधी स्वीकारने का यही भाव प्रेम कहलाता है जो कि करुणा के रूप में व्यक्त होता है। मेरे परिवार में यही मेरी भागीदारी (मूल्य) है।

प्रेम से संबंधित मुख्य बिंदु
(Salient Points regarding Love)

- प्रेम, सभी के लिये संबंध की स्वीकृति का भाव है। यह एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से जुड़े होने की पहचान से और उनके बीच संबंध की स्वीकृति से प्रारंभ होता है, जो धीरे-धीरे सभी मानव तक और फिर प्रकृति की प्रत्येक इकाई तक विस्तारित होता चला जाता है। प्रेम का भाव सभी के लिये स्वयं में बना रहता है और करुणा के रूप में उन सभी के साथ व्यक्त होता है जो हमारे संपर्क में आते हैं। यह बिना किसी शर्त के निरंतरता में बना रहता है। प्रेम का भाव वह अंतिम बिंदु है जहाँ प्रत्येक मानव पहुँचना ही चाहता है और वहाँ पहुँच कर निरंतरता में बने रहना चाहता है। इस दृष्टि से, प्रेम पूर्ण मूल्य है।
- प्रेम के बारे में सामान्य भ्रम यह है कि ये संवेदना अर्थात् इंद्रिय सुख पर आधारित है; और वास्तव में यह केवल मोह अर्थात् आसक्ति है।
- प्रेम का भाव अखंड-समाज का आधार है। प्रेम के भाव के साथ ही परिवार में न्याय सुनिश्चित हो पाता है एवं यही न्याय परिवार से शुरू होकर विश्व परिवार तक जाता है जो अखंड समाज के रूप में अभिव्यक्त होता है।

अपनी समझ को जाँचे

(Test your Understanding)

अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न
(Questions for Self-evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. प्रेम को परिभाषित कीजिये? प्रेम, पूर्ण मूल्य किस प्रकार से है?
2. कोई व्यक्ति सही-भाव कैसे विकसित कर सकता है? यह सही-समझ के आधार पर विकसित होगा या घटनाओं के आधार पर? विस्तार पूर्वक बताइये।
3. संबंधों के निर्वाह में भौतिक सुविधाओं की क्या भूमिका है?
4. न्याय क्या है? क्या इसकी आवश्यकता निरंतरता में है या सामयिक?
5. अखंड समाज अर्थात् विश्व परिवार का क्या आधार है?

अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास
(Practice Exercises for Self-Exploration)

(विषय वस्तु के साथ जुड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही इन अभ्यासों को व्यक्तिगत स्तर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. आप न्याय के बारे में क्या समझ पायें हैं? अपने परिवार में न्याय की स्थिति की जाँच कीजिये; क्या परिवार में न्याय सुनिश्चित करने के लिये कोई कदम उठाये जाने की आवश्यकता है? आप इस न्याय को अपने पास-पड़ोस एवं समाज में किस प्रकार से विस्तारित करेंगे?
2. अपने भविष्य के बायोडाटा का नवीनीकरण कीजिये जिसे आपने अध्याय-2 में शुरू किया था और अध्याय-5 में जिसका नवीनीकरण किया था। अपने परिवार के लक्ष्यों और परिवार में अपनी जिम्मेदारियों (माता-पिता, अन्य

बुजुर्गों, साथियों एवं बच्चों के संबंध में) की पूर्ति के लिये आप में और किस प्रकार के कौशल होने की आवश्यकता है इसे अपने बायोडाटा में जोड़िये।

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग (blog), सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें ।

"क्या केवल संबंध की समझ के साथ ही संबंध पूर्वक जीना संभव है"?

"चाहना पर विश्वास ही संबंध का आधार है"।

"सम्मान अर्थात् सही-मूल्यांकन दूसरे व्यक्ति के साथ परस्पर-पूरकता को सुनिश्चित करने के लिये आवश्यक है"।

"अंततः हम सभी प्रेम (पूर्ण-मूल्य) न्याय और अखंड-समाज ही चाहते हैं"।

"संबंधों में सौहार्दपूर्ण जीने के लिये परिवार एक प्रयोगशाला के रूप में है"

अनुभाग-4: आपके प्रश्न
(Your Questions)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-9

समाज में व्यवस्था - सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था को समझना

Harmony in the Society – Understanding Universal Human Order

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7 ✓
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8 ✓
☞ **समाज में व्यवस्था**	**अध्याय 9**
प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

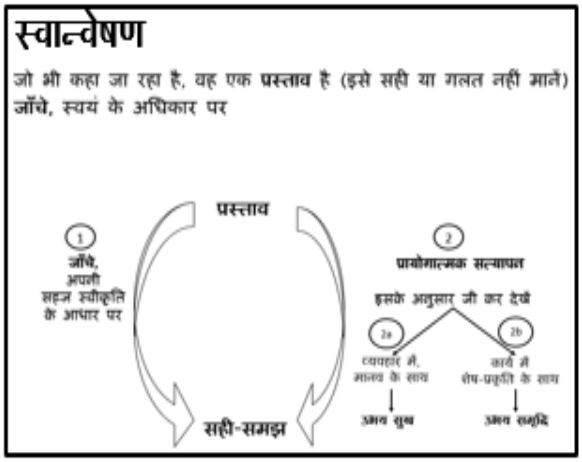

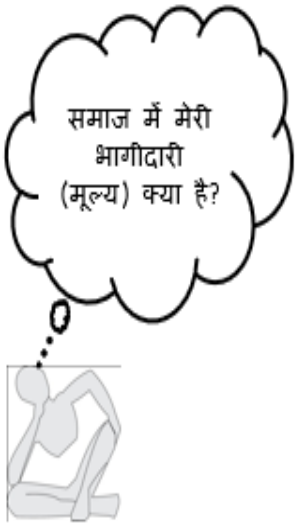

पुनरावृत्ति
(Recap)

अभी तक हमने मानव में व्यवस्था और परिवार में व्यवस्था का अध्ययन किया है। पिछले अध्याय में हमने परिवार में व्यवस्था के बारे में विस्तार पूर्वक अध्ययन किया। परिवार में व्यवस्था का आशय, संबंध में निहित भाव को समझने, उनको 'स्वयं(मैं)' में सुनिश्चित करने और उनके निर्वाह से है।सम्बंध के मूल में भाव हैं - एक 'स्वयं(मैं)' का दूसरे 'स्वयं(मैं)' के लिये। परिवार व्यवस्था के मूल में भी भाव हैं। ममता के भाव के अतिरिक्त शेष भावों को व्यक्त करने में भौतिक सुविधा की भूमिका मात्र प्रतीक रूप में है। हमने मानव-मानवसम्बंध में निहित भावों को उनके अर्थ की स्पष्टता के साथ सूचीबद्ध किया। हमने यह भी देखा किसम्बंध में विश्वास, आधार मूल्य है और प्रेम पूर्ण मूल्य है।

इस श्रृंखला में मानव के जीने का अगला स्तर समाज है। इस अध्याय में हम समाज में व्यवस्था के स्वरूप के प्रस्ताव का अध्ययन करेंगे। 'स्वयं(मैं)' में जाँच कर देखिये कि क्या यह प्रस्ताव आपके लिये सहज-स्वीकार्य है; क्या यह आपके लिये और अन्य सभी के लिये उभय-तृप्ति को भी सुनिश्चित करेगा।

हम यह भली-भाँति जानते हैं कि परिवार का अलग से कोई अस्तित्व नहीं होता है; इसका अस्तित्व सदैव परिवार समूह के अन्य परिवारों के साथ सह-अस्तित्व में होता है। परिवार के संबंध सहज रूप से दूर-दूर तक फैले रहते हैं। सामान्यतः हम अपने आस-पास के लोगों के साथ परस्परता में जीते ही हैं, यही सब मिलकर समाज का निर्माण करते हैं। आइये हम लोग अब समाज में व्यवस्था को समझने का प्रयास करते हैं। निःसंदेह समाज में व्यवस्था का आधार, परिवार में व्यवस्था है और परिवार में व्यवस्था का आधार मानव में व्यवस्था है। इसलिये हम श्रृंखलाबद्ध तरीके से इसका अध्ययन कर रहे हैं। पहले हमने मानव में व्यवस्था का अध्ययन किया, जो कि परिवार में व्यवस्था को समझने में सहयोगी है; अंततः ये दोनों समाज में व्यवस्था को समझने में सहयोगी हैं। हम इनको एक-एक करके समझने का प्रयास कर रहे हैं। केवल वही व्यक्ति, परिवार में व्यवस्था को सुनिश्चित कर सकेगा जिसने 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था को समझा है और 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्थित है। जिन परिवारों में व्यवस्था है, संगीत है, वही एक ऐसे समाज को स्थापित करने में सहयोग कर सकते हैं जिसमें व्यवस्था हो, संगीत हो।

हम समाज के इन तीनों पहलुओं का अध्ययन करेंगे:

- समाज में व्यवस्था के लिये मानव का लक्ष्य (मानव लक्ष्य)
- इस मानव लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये आवश्यक प्रणाली (systems) या आयाम (dimensions)
- इस प्रणाली या आयाम का फैलाव (Scope)

मानव लक्ष्य को समझना
(Understanding Human Goal)

समाज में, मानव के लक्ष्यों को चित्र. *9-1.* के अनुसार व्यक्त किया जा सकता है।

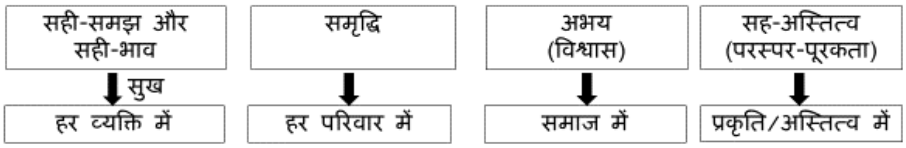

चित्र. 9-1. मानव लक्ष्य

जाँच कर देखिये कि क्या आपकी भी यही चाहना है। क्या ये सब आपको भी सहज-स्वीकार्य हैं*?*

- सही-समझ, समाज के प्रत्येक व्यक्ति में हो या ऐसा हो कि सही-समझ केवल कुछ व्यक्तियों में हो और शेष उनका अनुपालन करें?
- समृद्धि, समाज के प्रत्येक परिवार में हो या ऐसा हो कि संग्रह केवल कुछ परिवारों में हो और शेष उन पर निर्भर रहें?
- समाज में अभय (fearlessness) हो, जो विश्वास और स्नेह पर आधारित हो, या भय हो जो अविश्वास और ईर्ष्या पर आधारित हो।
- प्रकृति में सह-अस्तित्व (परस्पर-पूरकता) हो या ऐसा हो कि प्रकृति का शोषण हो और उस पर शासन हो।

इन्हें देखिये, और यह भी जाँच कर देखिये कि क्या इन चारों लक्ष्यों में से किसी को छोड़ सकते हैं या ये सभी आवश्यक हैं? और यह भी जाँचिये कि यदि ये चारों सुनिश्चित हो जायें तो शेष और क्या चाहिये*?*

थोड़ा सा ध्यान देने पर पता चलता है कि ये चारों ही लक्ष्य वांछनीय हैं और आवश्यक भी, हम किसी को भी नहीं छोड़ सकते और यह भी देख सकते हैं कि शेष कुछ छूटा भी नहीं है। अतः हम निश्चित मानवीय लक्ष्य को पहचान सकते हैं और यह समाज में रहने वाले हर व्यक्ति को एक जैसा स्वीकार्य भी होगा। क्या आप इसको देख पा रहे हैं?

अब अगला प्रश्न यह है कि यदि ये चारों आवश्यक हैं, तो हमें कहाँ से शुरू करने की आवश्यकता है? 'स्वयं(मैं)' में सही-समझ और सही-भाव से या सभी परिवारों में समृद्धि से या समाज में अभय से या प्रकृति/अस्तित्व में सह-अस्तित्व से?

चूंकि व्यक्ति से परिवार और परिवार से समाज बनता है इसलिये हर मानव में सही-समझ और सही-भाव सुनिश्चित करना पहला कार्य है। इसी तरह से मानव अपने परिवार के लिये आवश्यक सुविधा को पहचान कर, आवश्यकता से अधिक का उत्पादन करके, परिवार में समृद्धि को सुनिश्चित करता है; अतः हर परिवार में समृद्धि दूसरा लक्ष्य होगा। समृद्ध परिवार ही एक दूसरे के साथ परस्पर-पूरकता और विश्वास के साथ जीते हुये, समाज में अभय को सुनिश्चित करते हैं; अतः अभय तीसरा लक्ष्य होगा। इस तरह से जीता हुआ समाज ही शेष-प्रकृति के साथ परस्पर-पूरकता को सुनिश्चित करता है, जो कि अंततः प्रकृति/अस्तित्व में सह-अस्तित्व को सुनिश्चित करता है, अतः यह चौथा लक्ष्य होगा। इसी तरह का समाज हम चाहते हैं, आगे अब इसी का अध्ययन करेंगे।

वर्तमान स्थिति का अवलोकन
(Appraisal of the Current Status)

इस अध्याय में, हम समाज, सामाजिक व्यवस्था, और ऐसा जीना जो पीढ़ी दर पीढ़ी सभी के लिये पूरक हो, का अध्ययन कर रहे हैं। यदि इसके मूल में देखें तो हम पाते हैं कि अभी तक मानव के सभी प्रयास

सामान्यतः इसी दिशा में रहे हैं। अगर हम अभी की स्थिति देखें तो अभी तक की कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ निम्न हैं:

- भौतिक सुविधाओं की पर्याप्त उपलब्धता है, जैसे कि भोजन, वस्त्र, आवास, गैजेट्स, यंत्र एवं उपकरण इत्यादि।
- भौतिक रूप में यातायात के साधनों के द्वारा एवं वैचारिक रूप में टेलीविजन और दूरसंचार के साधनों के द्वारा पूरा विश्व परस्पर जुड़ चुका है।
- लोकतान्त्रिक व्यवस्था के द्वारा समानता की भावना और अधिक जाग्रत हुई है। जनता के मतदान के माध्यम से सरकार को हर बार और अधिक योग्य लोगों के हाथों में सौंपने की व्यवस्था है।
- शिशु मृत्यु दर में कमी आई है और जीवन काल बढ़ा है।
- शिक्षा अब मानव का मूल अधिकार है और साक्षरता दर भी बढ़ी है।

आज, किसी भी कार्य को पहले की तुलना में बहुत अधिक गति से किया जा सकता है। लेकिन एक समग्र लक्ष्य और कार्यक्रम के अभाव में समग्र विकास की जगह समस्यायें ज्यादा बढ़ गई हैं। जैसे आतंकवाद, जलवायु परिवर्तन एवं ग्लोबल वार्मिंग इत्यादि।

हम यह देख सकते हैं कि इन समस्याओं के मूल में हमारी गलत मान्यतायें ही हैं जो हमने अपने बारे में, प्रकृति के बारे में, अस्तित्व के बारे में, अपने लक्ष्य और समाज के लक्ष्यों के बारे में बना रखी हैं। इन मान्यताओं की वजह से हमारे प्रयासों में भी अंतर्विरोध आता रहता है। यही हमें समस्याओं के रूप में दिखाई देता है। ये हमारी गलत मान्यताओं के सूचक या लक्षण मात्र हैं।

जब हम वर्तमान स्थिति की चर्चा कर रहे हैं तो यह चर्चा सही-समझ की आवश्यकता और इसके प्रकाश में समग्र समाधान को देख पाने की योग्यता से परिपूर्ण होने; एवं इसमें अपनी भागीदारी को परिभाषित करने में सक्षम होने और इसके लिये निष्ठा (commitment) विकसित कर पाने की दृष्टि से कर रहे हैं। अस्तित्व की व्यवस्था को समझना, हमारी मूल चाहना को समझने एवं इसकी पूर्ति के लिये और समाज के लक्ष्यों को समझने एवं उनके आधार पर जीने के लिये आवश्यक है। यदि हम व्यक्तिगत स्तर पर और समाज के स्तर पर सही दिशा में ईमानदारी से प्रयास करेंगे, तो समाज के स्तर पर समाधान के अभाव में होने वाली समस्यायें धीरे-धीरे दूर हो पायेंगी। इसी पृष्ठभूमि के साथ हम वर्तमान स्थिति की चर्चा कर रहे हैं।

चित्र. 9-2. में सबसे ऊपर, समग्र मानव लक्ष्यों का उल्लेख किया गया है। क्या हमारा प्रयास इन चारों लक्ष्यों के लिये ही है या उनमें से कुछ के लिये ही या उनमें से किसी के लिये भी नहीं? सामाजिक लक्ष्यों की प्रमुख प्रचलित धारणाओं का उल्लेख चित्र. 9-2. के निचले हिस्से में किया गया है। क्या हमने भी ऐसी ही धारणायें बना रखी हैं और उन्हीं के लिये प्रयास भी कर रहे हैं? आइये देखने की कोशिश करते हैं कि आजकल समाज में क्या प्रयास हो रहे हैं।

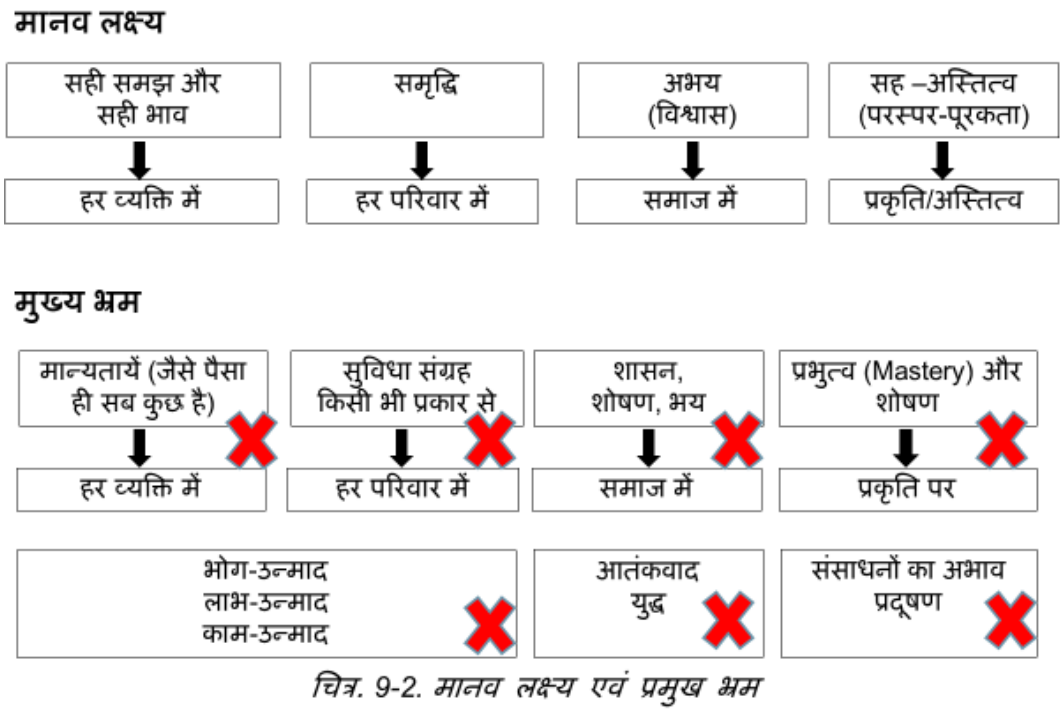

चित्र. 9-2. मानव लक्ष्य एवं प्रमुख भ्रम

मानवीय समाज का पहला लक्ष्य, प्रत्येक व्यक्ति में सही-समझ और सही-भाव सुनिश्चित करना है; जिससे प्रत्येक मानव में सुख सुनिश्चित होगा। जैसे कि हमने अध्याय-4 में चर्चा की थी कि सुख के बारे में प्रचलित मान्यता दी गयी परिभाषा से अलग है, इसलिये मानव का अधिकतम प्रयास किसी भी तरह से सुविधा (धन) के संग्रह और दूसरों से भाव पाने के लिये है। यही गलत मान्यतायें जाने अनजाने में शिक्षा के माध्यम से, माता-पिता, स्कूलों, शिक्षकों, मित्रों, मीडिया और पूरे समाज के माध्यम से प्रचारित भी की जा रही हैं।

मानवीय समाज का दूसरा लक्ष्य समृद्धि है, जो सही-समझ के अभाव में सुविधा की आवश्यकता की पहचान न कर पाने के कारण, अधिक से अधिक सुविधा संग्रह करना हो गया है। ऐसा माना जाता है कि जिसके पास धन है, वही समृद्ध है। जबकि अपने लिये सुविधा की आवश्यकता की स्पष्टता के बिना हम किसी भी तरीके से अधिक से अधिक सुविधा (असीमित) जुटाने के प्रयास में लगे रहते हैं। ऐसा कहा जाता है कि ज्यादातर धन तो कुछ ही लोगों के हाथों में ही है।

इन मान्यताओं के आधार पर चलने वाले समाज में, व्यक्ति तीन प्रकार के उन्माद (obsessions) की मानसिकता से ग्रसित दिखाई देते हैं:

1. भोग उन्माद
2. लाभ उन्माद
3. काम उन्माद

किसी वस्तु के प्रति उन्माद का अर्थ उस वस्तु का अधिमूल्यन (over-evaluation) है, अर्थात् उस वस्तु को ही जीवन का अंतिम उद्देश्य मान लेना और उसी वस्तु को अपने लिये सर्वाधिक मूल्यवान मान लेना। भोग उन्माद का अर्थ है कि सुख के लिये अधिक से अधिक भोग करना चाहे वो भोजन का हो, कपड़ों का हो, घर का हो, या उपकरण (gadgets) इत्यादि का हो। लाभ उन्माद का अर्थ दूसरों को कम से कम देकर अधिक से अधिक लेने की प्रवृति है और यह मानना कि जितना ज्यादा लाभ होगा उतना ज्यादा सुख और समृद्धि होगी। काम उन्माद का अर्थ शरीर की संवेदनाओ से सुख प्राप्त करने

का प्रयास है; उदाहरण के लिये, मोटापा, काफी हद तक काम उन्माद के कारण ही है। ऐसा ही बाकी संवेदनाओ के लिये भी है। आज समाज में अधिकतर अपराध इन्ही उन्मादों के कारण ही हो रहे हैं, चाहे वो भ्रष्टाचार हो, बलात्कार हो या हत्यायें हों। हम इन सभी से निपटने की कोशिश समाज के स्तर पर ही कर रहे हैं, लेकिन इनकी जड़ें परिवार में और व्यक्तिगत मान्यताओं में गहराई से जमीं हुई हैं।

इसी तरह मानवीय समाज के तीसरे लक्ष्य अभय (विश्वास) के स्थान पर समाज में शासन, शोषण और भय है। जब हम यह समझ पाते हैं कि दूसरा व्यक्ति भी हमारी तरह मानव है और उसका लक्ष्य, कार्यक्रम, क्षमता, सहज-स्वीकृति इत्यादि भी सब हमारी ही तरह है, अतः इसी आधार पर कि दूसरा मेरे जैसा है, हमसम्बंध में परस्पर-पूरकता के साथ जीने की सोच पायेंगे और इस तरह जी पाने से समाज में अभय (विश्वास) होगा। सही-समझ के अभाव में, विश्वास का अभाव होता हैं इसलिये समाज में अभय के स्थान पर शासन, शोषण, और भय होता है। जब हम किसी पर शासन करते हैं, तो क्या यह उसे सहज-स्वीकार्य होता है? आज व्यापार के नाम पर क्या हो रहा है, अर्थव्यवस्था के नाम पर क्या हो रहा है- सभी अपना प्रसार *(*लाभ और वृद्धि*)* कर रहे हैं अर्थात् अपने क्षेत्र का विस्तार करने का प्रयत्न कर रहे हैं। जब हम विस्तार करने का प्रयास करते हैं तो दो संभावनायें बनती हैं- या तो हम शासन के आधार पर विस्तार करने का प्रयास करते रहते हैं यासम्बंध के आधार पर हमारा सहज फैलाव होता रहता है। यही दो संभावनायें हमारे पास हैं। हम सब यह जानते हैं कि यदि हम शासन के आधार पर चलते हैं, तो निश्चित रूप से दूसरे से बलपूर्वक कार्य करवाना आसान दिखाई पढ़ता है। लेकिन शासन और शोषण किसी भी व्यक्ति को सहज-स्वीकार्य नहीं होता है, इसलिये दूसरा व्यक्ति इस शासन और शोषण के विरोध का हर संभावित प्रयास करता है, अंततः इसका परिणाम विरोध और आपसी दुख होता है। इसके विपरीत यदि आप शासन की जगह संबंध के भाव से आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं, तो आपका व्यवहार दूसरे लोगों को प्रभावित करता है, और वह आपको स्वीकार करते हैं; आप पर विश्वास करते हैं। और इसका परिणाम निश्चित तौर पर पारस्परिक सौहार्द के रूप में होता है। आजकल समाज में विश्वास के स्थान पर, शासन और शोषण है; जिसके परिणाम स्वरूप विरोध, संघर्ष, आतंकवाद और युद्ध जैसी समस्यायें हैं, जिनसे आज पूरा विश्व जूझ रहा है।

मानवीय समाज का चौथा लक्ष्य प्रकृति और अस्तित्व में सह-अस्तित्व है। लेकिन आज हम क्या कर रहे हैं, प्रकृति पर शासन करने की कोशिश कर रहे हैं या उसका दोहन कर रहे हैं। जब हम प्रकृति का दोहन करते हैं, तो इसका परिणाम संसाधनों की कमी और पर्यावरण में प्रदूषण के रूप में आता है। और आज पूरी दुनिया में इसे लेकर काफी चीख-पुकार मची हुई है। ऐसा नहीं है कि पहले हम प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल नहीं कर रहे थे या एक हजार साल पहले कोई भी प्रदूषण नहीं कर रहे थे। आज अंतर यह है कि प्रकृति में जिस दर से संसाधनों का उत्पादन हो रहा है, उसकी तुलना में हम बहुत अधिक दर से संसाधनों का उपयोग कर रहे हैं। हम इतनी अधिक गति से, इतना अधिक अपशिष्ट और प्रदूषण पैदा कर रहे हैं, जो प्रकृति की अवशोषित करने की क्षमता से बहुत अधिक है। यही कारण है कि हम संसाधनों की कमी और प्रदूषण की समस्या का सामना कर रहे हैं। परिणामस्वरूप ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन का संकट है।

सामाजिक प्रशासन के लोग इस चिंता से जूझ रहे हैं कि हमारे उपलब्ध संसाधनों का एक बड़ा हिस्सा मोटापा, अवसाद, आत्महत्या और जीवन शैली के विकारों से लड़ने में, और दूसरा बड़ा हिस्सा रक्षा, कानून प्रभावीकरण औरसम्बंध की समस्याओं से निपटने के लिये कानूनी प्रणाली में; और न सुलझाये जा सकने वाले संकट के रूप में दिखने वाले ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने में खर्च हो रहा है। ऐसा लगता है कि वे स्वयं ही कुंठा, अवसाद और अनेक प्रकार के जीवनशैली संबंधी विकारों से ग्रस्त हैं,सम्बंध के स्तर पर पारिवारिक कलह, विवाह-विच्छेद और अलगाव का सामना कर रहे हैं। यद्यपि सभी प्रकार की शक्ति और धन होने के बावजूद भी उनको सुख

एक छलावा जैसा लगता है। वे भी अन्य सभी की तरह ही समाधान के लिये किसी मार्ग की खोज कर रहे हैं। और देखने में ऐसा लगता है कि हम सभी एक ही डूबती हुई नाव में सवार हैं।

यह उन समस्याओं में से कुछ हैं जिसका सामना आजकल समाज कर रहा है। ये समस्यायें प्रकृति में किसी अड़चन, किन्हीं कमियों या उसमें अंतर्निहित विरोधाभासों से नहीं आ रही हैं, बल्कि यह व्यक्तियों में सही-समझ के अभाव में गलत मान्यताओं के आधार पर जीने के कारण आ रही हैं।

आजकल हम इनका और ऐसी ही कुछ अन्य समस्याओं का समाधान छोटे-छोटे टुकड़ों में करने की कोशिश कर रहे हैं। इस तरह के प्रयासों के परिणामस्वरूप ही अधिक नियंत्रण, अधिक निगरानी, अधिक नियम और कानून, अधिक न्यायालय, अधिक पुलिस और रक्षा, और अधिक जेलों की आवश्यकता बढ़ती जा रही है।

यहाँ पर जो प्रस्ताव दिया जा रहा है; वह एक समग्र समाधान है जिसमें मानव और शेष-प्रकृति दोनों से संबंधित सभी पहलुओं को ध्यान में रखा गया है। यह पुस्तक इस समग्र समाधान के प्रस्ताव का वर्णन करने का प्रयास है जो प्रकृति/अस्तित्व की व्यवस्था के अनुरूप है।

आगे का मार्ग
(The Way Ahead)

हमें अपनी मूल चाहना और समाज के सामूहिक लक्ष्य की पहचान कर उसके अनुरूप जीने के लिये, अस्तित्व में निहित व्यवस्था को समझने की आवश्यकता है। आइये ऐसे मानवीय समाज के बारे में प्रस्तावों को एक-एक करके चरणबद्ध ढंग से समझना प्रारंभ करते हैं।

मानवीय व्यवस्था: मानव लक्ष्य और इनकी पूर्ति के आयाम
(Human Goal and Systems for its Fulfilment – Human Order)

हम पहले ही देख चुके हैं कि ये सभी चारों लक्ष्य महत्वपूर्ण हैं और इनमें से किसी एक को भी छोड़ा नहीं जा सकता है। हमें इन चारों को ही समझना होगा।

अब, यदि हमें चारों को समझना है, तो हम शुरू कहाँ से करें*?* और इनका क्रम क्या होगा जिससे ये चारों लक्ष्य पूरे किये जा सकें*?*

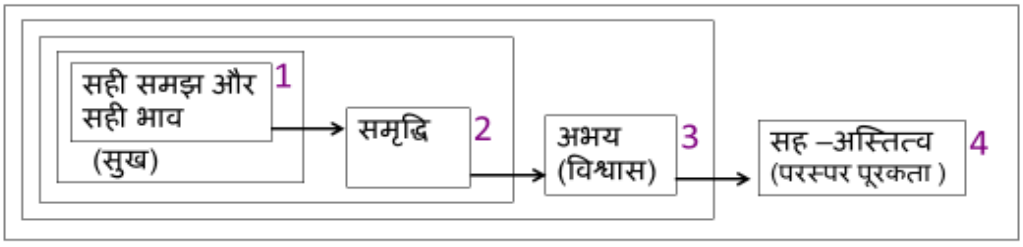

चित्र. 9-3. मानव लक्ष्यों में वरीयता क्रम

चित्र. *9-3.* का संदर्भ लीजिये। सबसे पहला और सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य सही-समझ और सही-भाव है, क्योंकि यह व्यक्ति में सुख सुनिश्चित करता है और अन्य तीनों के लिये आधार भी तैयार करता है। सही-समझ और सही-भाव के बिना, भौतिक सुविधा की आवश्यकता की पहचान करना संभव नहीं है, इसलिये समृद्धि से पहले सही-समझ और सही-भाव का होना आवश्यक है। इसी तरह अभय,सम्बंध की स्वीकृति,सम्बंध में सही-भाव और प्रत्येक परिवार में समृद्धि होने से ही आ सकता है। चौथा लक्ष्य

पहले तीनों लक्ष्यों का एक स्वाभाविक परिणाम है। केवल सही-समझ के साथ ही परस्पर-पूरकता को साकार किया जा सकता है।

अब अगला प्रश्न यह है कि इन मानव लक्ष्यों को पूरा करने का कार्यक्रम क्या होगा*?* कौन-कौन सी सामाजिक व्यवस्थाओं की आवश्यकता होगी*?* हमारे अध्ययन का विषय यह है कि ऐसी कौन-कौन सी सामाजिक व्यवस्थायें होंगी; जो सभी मानवों के साथ-साथ शेष-प्रकृति के लिये भी पूरक हों?

इसी को हम मानवीय व्यवस्था या सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था कह रहे हैं कक्षा 11 में हम विस्तार में इसका अध्ययन करेंगे ।

अपनी समझ को जाँचे

(Test your Understanding)

अनुभाग-1 स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न

(Questions for Self-evaluation)

*(*क्या आपने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है*?)*

1. समाज में व्यवस्था के लिये क्या आधार हैं*?* उदाहरण सहित समझायें।
2. मानव लक्ष्यों की व्याख्या करें। समझायें कि यह सभी लक्ष्य निरंतर सुख और समृद्धि के लिये किस प्रकार अनुकूल हैं?
3. वर्तमान समय में समाज के लक्ष्यों की मानव लक्ष्य के संदर्भ में विवेचना कीजिये। इसके क्या परिणाम होंगे यह भी स्पष्ट करें*?*
4. समाज में व्यवस्था के बारे में पांच वाक्य लिखें *।*

अनुभाग- 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Practice Exercises for Self-exploration)

(विषय-वस्तु के साथ जुड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही इन अभ्यासों को व्यक्तिगत तौर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. आपके व्यक्तिगत लक्ष्य या मूल्य कौन से हैं जिनके लिये आप प्रयास करना चाहते हैं? अपने परिवार में विचार-विमर्श करें और परिवार के अन्य सदस्यों के लक्ष्यों को जानने का प्रयत्न करें। क्या कोई एक समान पारिवारिक लक्ष्य हैं? आपके कार्यस्थल या शैक्षणिक संस्थान में किस प्रकार के उद्देश्यों को महत्व दिया जा रहा है। उद्देश्यों के यह तीनों समूह (व्यक्तिगत, पारिवारिक, कार्यस्थल) किसी भी प्रकार से एक दूसरे से मेल खाते हैं क्या? उद्देश्यों के इन तीनों समूहों के निर्वाह में आपकी क्या भूमिका है?
2. कल्पना कीजिये कि आप अपने छात्रावास या कार्यस्थल या शैक्षणिक संस्थान को मानवीय समाज के एक मॉडल के रूप में देखना चाहते हैं तो लिखिये:
    a. इनके लक्ष्य- इन्हें अपने मानव लक्ष्य से जोड़ कर देखिये और व्याख्या करने का प्रयत्न कीजिये कि प्रत्येक लक्ष्य का क्या अर्थ है। कुछ प्रमुख सूचकों या उपायों को विकसित करिये जिनसे यह देखा जा सके कि उद्देश्यों को पूरा कर लिया गया है।

b. इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये व्यवस्था- प्रत्येक उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक समग्र योजना बनाइये और इसे मानवीय व्यवस्था के आयाम के साथ भी जोड़िये।

यदि और बड़े रूप में सोचना चाहते हैं, तो आप मोहल्ला/कॉलोनी/गाँव/जिला/प्रदेश/देश या विश्व को भी सम्मिलित कर सकते हैं। आप इंटरनेट पर बहुत सी प्रेरणादायक सामग्री पायेंगे जैसे कि एक छोटी सी फिल्म है, जो महाराष्ट्र के एक प्रगतिशील गाँव 'हिवरे बाजार' की है। यह इस बारे में है कि कैसे कुछ लोगों के द्वारा सुशासन से, समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया जा सकता है। निःसंदेह, कृपया सभी लक्ष्यों और आयामों को मानवीय समाज के लिये अपने अभ्यास में सम्मिलित करें। आपकी दृष्टि और योजना समग्र होनी चाहिये भले ही आप बहुत छोटे स्तर पर प्रारंभ करें। समग्र दृष्टि और योजना एक निश्चित दिशा देती है।

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का 'स्वयं(मैं)' में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

"मानव लक्ष्य, मानवीय व्यवस्था के आयाम और सार्वभौम मानवीय व्यवस्था का दायरा (परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक)

मानवीय शिक्षा-संस्कार→ मानवीय आचरण → मानवीय मूल्य → अखंड समाज और सार्वभौम मानवीय व्यवस्था"

अनुभाग-4 आपके प्रश्न
(Your Questions)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है, तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को 'स्वयं(मैं)' के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-10
प्रकृति में व्यवस्था–अंर्तसंबंध, स्व-नियंत्रण और परस्पर-पूरकता को समझना

Harmony in Nature – Understanding the Interconnectedness, Self-regulation and Mutual Fulfilment

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7 ✓
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8 ✓
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9 ✓
☞ प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

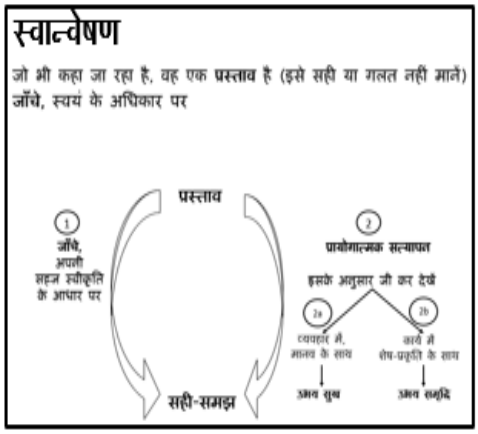

पुनरावृत्ति
(Recap)

हमने स्व-अन्वेषण , मानव की मूल चाहनाओं और इनकी पूर्ति के कार्यक्रम को समझने से प्रारंभ किया था। हमने देखा था कि मानव की मूल चाहना- सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता है। हमने अपनी सहज स्वीकृति का अध्ययन किया और यह भी समझा कि सुख का अर्थ स्वयं में व्यवस्था है। इसलिये सुख की निरंतरता अर्थात् व्यवस्था की निरंतरता को सुनिश्चित करने के लिये हमें न केवल स्वयं में व्यवस्था को समझना होगा, बल्कि अपने जीने के सभी स्तरों अर्थात् मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/ अस्तित्व में व्यवस्था को भी समझना होगा। एक बार जब हम इन सभी स्तरों पर व्यवस्था को समझ लेते हैं तो, हम इन चारों स्तरों पर व्यवस्था में जी भी पाते हैं। अभी तक हमने पहले तीन स्तरों अर्थात् मानव, परिवार और समाज में ही व्यवस्था का अध्ययन किया है।

हमने यह भी देखा है कि मानव के रूप में हमारी सहज-स्वीकृति परिवार में और समाज में व्यवस्था पूर्वक जीने के लिये ही है। अब प्रश्न यह है कि "क्या इन तीनों स्तरों पर व्यवस्था में जीना संभव है?" निःसंदेह हमारी इच्छा यही है। लेकिन क्या ऐसा जी पाना संभव है? क्या प्रकृति में ऐसा जी पाने का अवसर और संभावनायें हैं? आपको क्या लगता है- प्रकृति और अस्तित्व में संबंध, व्यवस्था और परस्पर-पूरकता अंतर्निहित है? या विरोध, संघर्ष और "ताकतवर का अस्तित्व बने रहना (struggle and survival of the fittest)" ही प्रकृति/ अस्तित्व की बनावट है?

यदि प्रकृति और अस्तित्व में संबंध और परस्पर-पूरकता है, तभी मानव का चारों स्तरों पर व्यवस्था में जीना संभव हो पायेगा। इस अध्याय में हम प्रकृति की मूल संरचना (basic underlying design) का अध्ययन करेंगे। हम यह भी अध्ययन करेंगे कि प्रकृति में व्यवस्था है या अव्यवस्था।

इकाइयों के समूह के रूप में प्रकृति
(Nature as Collection of Units)

जब आप 'प्रकृति' के बारे में सुनते हैं तो सामान्यतः आप पर्वतों, जंगलों, समुद्रों या पठारों के बारे में सोचते हैं।

प्रकृति इन सभी इकाइयों का समूह है; जैसे मिट्टी, वायु, जल, पौधे-पेड़, पशु-पक्षी, मानव और जो हम से कुछ दूरी पर हैं अर्थात् सूर्य, चंद्रमा, अन्य ग्रह इत्यादि। जब हम अपने आस-पास देखते हैं तो इन सभी इकाइयों को देख पाते हैं; उदाहरण के लिये एक कक्षा में कुछ इकाइयाँ जैसे कुर्सियाँ, मेज, कॉपी, पेन, ब्लैक-बोर्ड, प्रोजेक्टर, लैपटॉप इत्यादि होते हैं। कक्षा के बाहर बाग या जंगल या अन्य प्रकार की इकाइयाँ जैसे पेड़, झाड़ियाँ, तितलियाँ, कीट-पतंगे, चिड़िया, पशु, तालाब, पत्थर इत्यादि होते हैं। यदि हम और आगे देखें तो सूर्य, चंद्रमा, तारे, पृथ्वी इत्यादि दिखते हैं। ये सभी इकाइयाँ हैं और इन सभी इकाइयों के समूह को ही प्रकृति कहते हैं।

कुछ इकाइयां जैसे परमाणु व अणु; ये आकार में बहुत छोटे होते हैं; इतने छोटे कि हम इन्हें अपनी आँखों से नहीं देख सकते। दूसरी तरफ, कुछ इकाइयाँ बहुत बड़ी होती हैं जैसे पृथ्वी बहुत बड़ी इकाई है, इसका द्रव्यमान 5.97×10^{24} किलोग्राम है, और इसका व्यास लगभग 12,700 किलोमीटर है। सूर्य भी एक बहुत बड़ी इकाई है, जिसका द्रव्यमान पृथ्वी से लगभग 3,30,000 गुना अधिक है। रात में हम जो तारे आसमान में देखते हैं, वह सूर्य से भी कई गुना बड़े हैं। ये सभी इकाइयाँ ही हैं, चाहे ये छोटी हों या बड़ी हों। इन सभी को सामूहिक रूप में प्रकृति कहा जाता है। (चित्र. 10-1. देखें)

अस्तित्व में हर इकाई एक-एक के रूप अलग-अलग हैं। ये एक निश्चित आयतन घेरती हैं और इनका आकार और आकृति निश्चित होता है। इकाइयों को एक, दो, तीन इत्यादि के रूप में गिना जा सकता है। और ये सभी इकाइयाँ, जो कि बहुत बड़ी संख्या में हैं मिलकर प्रकृति कहलाती हैं।

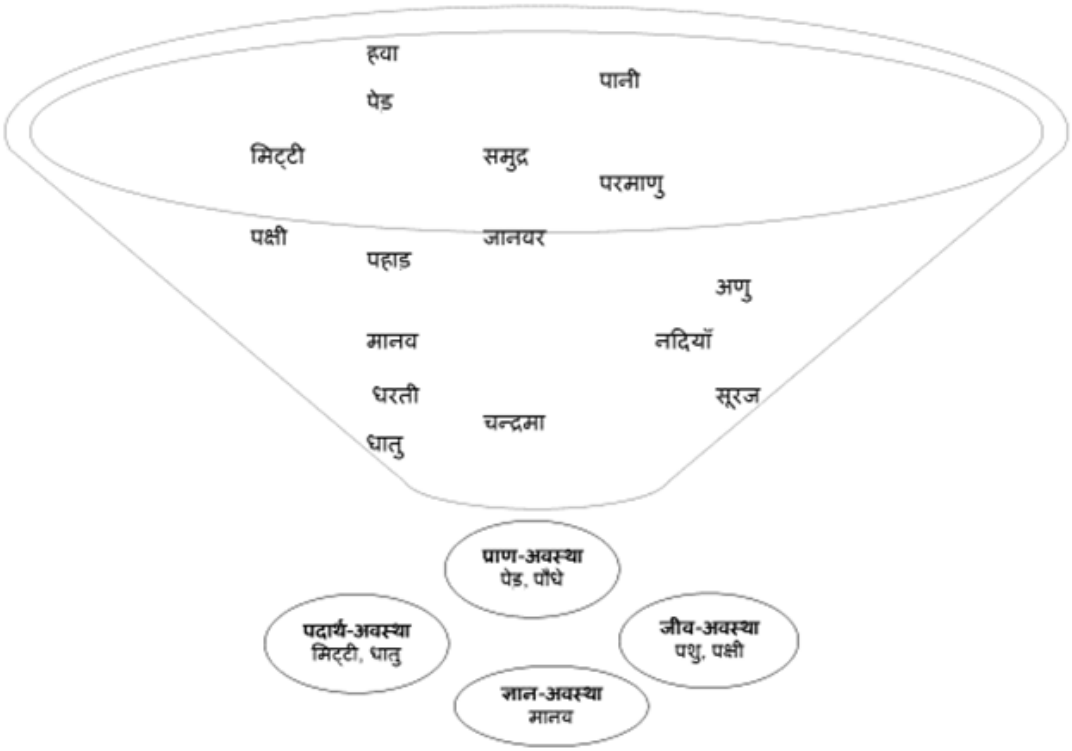

चित्र. 10-1. प्रकृति = इकाइयों का समूह (चार अवस्थाओं में)

इकाइयों का चार अवस्थाओं में वर्गीकरण
(Classification of Units into Four Orders)

यद्यपि इकाइयाँ असंख्य हैं, फिर भी समझने के लिये इन्हें चार श्रेणियों में या अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता है:

1. पदार्थ-अवस्था - इसमें वायु, जल, लोहा, मिट्टी इत्यादि सम्मिलित हैं।
2. प्राण-अवस्था - इसमें घास, पेड़, पौधे, इत्यादि सम्मिलित हैं।
3. जीव-अवस्था - इसमें पशु और पक्षी सम्मिलित हैं।
4. ज्ञान-अवस्था - इसमें मानव सम्मिलित है।

इन इकाइयों का वर्गीकरण, इनके सामान्य आंतरिक गुणों (common intrinsic properties) के आधार पर करना तर्कसंगत होगा। इन असंख्य इकाइयों को इनके गुणों के आधार पर चार निश्चित अवस्थाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण बिंदु है, क्योंकि यदि हम प्रत्येक अवस्था के मूल गुणों को समझ लेते हैं तो प्रकृति की सभी इकाइयों के गुणों को समझ सकते हैं। इसी प्रकार से यदि हम हर अवस्था की कुछ इकाइयों के बीच परस्परता को भी समझ लें तो इनके बीच आपसी अंर्तसंबंध को भी समझ पायेंगे। और हम यही समझना भी चाहते हैं।

चारों अवस्थाओं के बीच अंर्तसंबंध और परस्पर-पूरकता
(Interconnectedness and Mutual Fulfilment among the Four Orders)

समाज में व्यवस्था के अध्याय में हमने उत्पादन-कार्य पर चर्चा करते हुये प्रकृति में चक्रीय और परस्पर-पूरक विधि का अध्ययन किया। यह अध्ययन हमने पर्यावरण के अनुकूल उत्पादन प्रक्रिया को समझने की दृष्टि से किया था। यहाँ पर भी विषय-वस्तु वही है, लेकिन यहाँ हमारा मुख्य ध्यान चारों अवस्थाओं में अंतर्निहित अंर्तसंबंध और परस्पर-पूरकता को समझने पर है। पूर्णता के लिये हमने उस विवरण को आवश्यकता अनुसार अगले कुछ पृष्ठों में पुनः वर्णित किया है।

चित्र. 10-2. का संदर्भ लीजिये। जैसा कि हमने अध्याय-9 में चर्चा किया है कि पदार्थ अवस्था की इकाइयां जैसे मिट्टी, पानी और वायु इत्यादि पेड़-पौधों के विकास एवं उनकी वृद्धि के लिये मूल पदार्थ उपलब्ध करवाते हैं। जहाँ भी मिट्टी उपजाऊ होती है और पर्याप्त जल उपलब्ध होता है, उसमें बीज अंकुरित होते हैं और पौधे के रूप में उग जाते हैं। इस प्रकार से पदार्थ अवस्था की इकाइयां प्राण अवस्था की इकाइयों को पोषित करती हैं। इसी प्रकार से पेड़-पौधों की पत्तियाँ, फल और फूल जब पृथ्वी पर गिरकर सड़-गल जाते हैं, तो पुनः मिट्टी में परिवर्तित हो जाते हैं। पेड़-पौधों के अवशेष मिट्टी के लिये उर्वरक हैं, जो इसे और अधिक उपजाऊ बनाते हैं। पेड़-पौधे, आक्सीजन के स्तर को बनाये रखते हैं, और पृथ्वी के जल चक्र में भी भागीदारी करते हैं। इस प्रकार से हम यह देख पाते हैं कि प्राण अवस्था की इकाइयां पदार्थ अवस्था की इकाइयों के लिये परस्पर-पूरक हैं। हम यह भी देख पाते हैं कि मिट्टी पेड़-पौधों में परिवर्तित हो रही है और पेड़-पौधे वापस मिट्टी में परिवर्तित हो रहे हैं।

चित्र. 10-2. पदार्थ-अवस्था और प्राण-अवस्था के बीच परस्पर पूरकता

इससे दो निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं:

1. प्रकृति की यह प्रक्रिया चक्रीय है (मिट्टी पेड़-पौधों में परिवर्तित हो रही है और पेड़-पौधे वापस मिट्टी में परिवर्तित हो रहे हैं)।
2. प्रकृति की यह प्रक्रिया परस्पर-पूरक है (इस प्रक्रिया में पेड़-पौधे, मिट्टी का संवर्धन (enrichment) करते हैं और मिट्टी भी पेड़-पौधों का संवर्धन करती है)।

मिट्टी और पेड़-पौधों की यह परस्परता पदार्थ-अवस्था एवं प्राण-अवस्था के बीच संबंध और परस्पर-पूरकता का एक उदाहरण है। इन दोनों अवस्थाओं के बीच इस प्रकार के परस्परता को देखने का प्रयास कीजिये।

अब यदि जीव-अवस्था को पदार्थ-अवस्था व प्राण-अवस्था के साथ देखें (चित्र. 10-3. देखिये) तो हम इन तीनों के बीच वैसा ही अंर्तसंबंध और परस्पर-पूरकता देख सकते हैं।

पशु-पक्षी (जीव-अवस्था की इकाइयाँ) अपने भोजन के लिये पेड़-पौधों (प्राण-अवस्था की इकाइयों) पर निर्भर हैं; उदाहरण के लिये एक गाय (जीव-अवस्था की एक इकाई) भोजन के रूप में घास (प्राण-अवस्था की इकाई) खाती है, बदले में गाय भी पौधे के लिये परस्पर-पूरकता का निर्वाह करती है जैसे पशु-पक्षी, पेड़-पौधों के बीजों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक फैलाने का कार्य करते हैं, वे पेड़-पौधों को हानिकारक जीव और जानवरों से संरक्षण भी प्रदान करते हैं। इसी प्रकार से पदार्थ-अवस्था की इकाइयाँ जैसे वायु और पानी, पशुओं के जीने के लिये आवश्यक हैं। बदले में पशु, मिट्टी का संवर्धन करते हैं; उनका गोबर और मृत 'शरीर' मिट्टी के लिये अच्छी खाद के रूप में कार्य करता है और मिट्टी को उपजाऊ बनाता है।

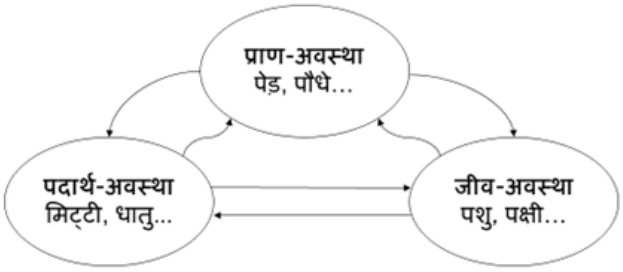

चित्र. 10-3. पदार्थ-अवस्था, प्राण-अवस्था और जीव-अवस्था के बीच परस्पर-पूरकता

जंगल में हम यह देख सकते हैं कि ये तीनों अवस्थायें साथ-साथ हैं। मिट्टी, तालाब, नदियाँ, वायु, चट्टानें और धातुओं के रूप में पदार्थ-अवस्था की इकाइयाँ, अनेक प्रकार के हरे-भरे घास और पेड़-पौधे (प्राण-अवस्था की इकाइयाँ) एवं विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी (जीव-अवस्था की इकाइयाँ) साथ-साथ हैं। वे परस्पर जुड़े हुये हैं और वे एक दुसरे पर आश्रित (interconnected and interdependent) भी हैं। वे परस्पर-पूरक विधि से एक दूसरे के साथ जुड़े हुये हैं और एक दूसरे का संवर्धन और परस्पर-पूरकता का निर्वाह करते हैं। जंगल में ऐसा ही होता है।

यहाँ पर यह ध्यान देना भी महत्वपूर्ण है कि जंगल में चलने वाली यह प्रक्रिया मानव के हस्तक्षेप के बिना ही चल रही है। यह देख सकते हैं कि हमें बाहर से इन अवस्थाओं के लिये कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है, अर्थात् जंगल में किसी भी प्रकार का उर्वरक डालने या सिंचाई करने की आवश्यकता नहीं होती है, यह सब कुछ स्वतः ही होता है। प्रकृति के होने का यही विधान है। वास्तव में जैसे-जैसे समय गुजरता है, मिट्टी और अधिक उपजाऊ होती जाती है, जल संचय भी और अधिक होता जाता है और वर्ष भर के लिये यह उपलब्ध रहता है। विभिन्न प्रकार की लकड़ियाँ, फल-फूल इत्यादि होते रहते हैं। विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों, पशु-पक्षी सभी का संवर्धन होता रहता है। प्रकृति में होने वाली यह क्रियाकलाप, प्रकृति की संरचना पर आधारित है।

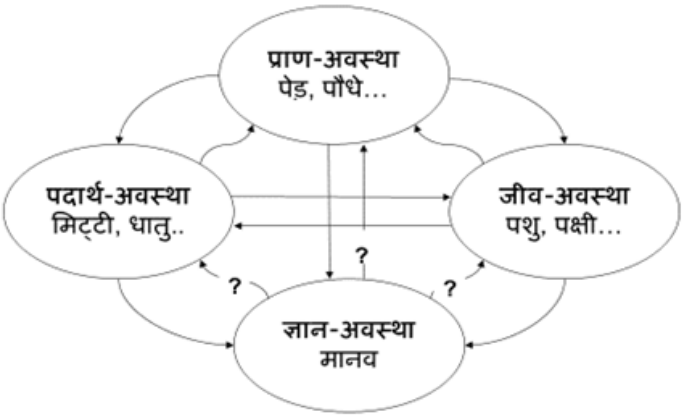

चित्र. 10-4. वर्तमान स्थिति- मानव अन्य अवस्थाओं के साथ परस्पर-पूरक नहीं

शेष-प्रकृति के साथ मानव का क्या संबंध है? अब यदि हम इसमें (चित्र. 10-4. को देखें) मानव को रखें तो यह देख सकते हैं कि शेष तीनों अवस्थायें मानव का संवर्धन कर रही हैं। पदार्थ, प्राण एवं जीव-अवस्थायें, सभी ज्ञान-अवस्था का पोषण कर रही हैं।

जैसे, हवा जिससे हम सांस लेते हैं, जल जो हम पीते हैं, घर जिसमें हम रहते हैं, ये सभी इकाइयाँ पदार्थ-अवस्था की हैं जो 'शरीर' के निर्वाह के लिये आवश्यक हैं। यंत्र और उपकरण जैसे मोबाइल फोन, लेपटॉप, प्रोजेक्टर, रेडियो, टेलीविजन, ट्रेन, हवाई जहाज जो भी हम प्रयोग करते हैं यह सभी पदार्थ-अवस्था से ही बने हैं।

हम विविध प्रकार के कृषि उत्पाद जैसे फल, फूल, सब्जी, अनाज इत्यादि पेड़, पौधों और झाड़ियों से ही प्राप्त करते हैं, जो कि प्राण-अवस्था की इकाइयाँ हैं। भोजन का अधिकांश भाग जो हम ग्रहण करते हैं, वह प्राण-अवस्था से ही प्राप्त होता है। वास्तव में हमारे भोजन की आवश्यकता इतनी अधिक है कि उपलब्ध भूमि का अधिकांश भाग केवल कृषि के लिये ही प्रयोग होता है।

हम दूध, ऊन इत्यादि पशुओं से ही प्राप्त करते हैं। पुराने समय से ही बैल, खेत जोतने के लिये सहायक हैं, जबकि घोड़े और गधे, सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने में सहायक हैं। आपने बैलगाड़ी या पशुओं द्वारा चलने वाले तांगे तो देखे ही होंगे। जब डाकघर, इंटरनेट या ईमेल नहीं थे तो उन दिनों मानव, लंबी दूरी तक संदेश भेजने और प्राप्त करने के लिये कबूतरों का प्रयोग करता था। कुत्ते अपनी स्वामी-भक्ति के लिये जाने जाते हैं और घर की रक्षा के लिये रखे जाते हैं। वर्तमान समय में पुलिस और सेना भी कुत्तों का प्रयोग अपराधियों की खोजबीन करने में सहायता के लिये करते हैं। इन सभी कार्यों में पशु और पक्षी मानव के लिये पूरक हैं।

आप अपने दैनिक जीवन में भी इस प्रकार के अनेक उदाहरण देख सकते हैं, जहाँ ये तीनों अवस्थायें, मानव के लिये पूरकता का निर्वाह कर रही हैं। इस प्रकार से हम यह देख सकते हैं कि ये तीनों अवस्थायें मानव का संवर्धन कर रही हैं।

अब यह देखते हैं कि क्या मानव भी इन तीनों अवस्थाओं के लिये परस्पर-पूरकता का निर्वाह कर रहा है? यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है। मानव अन्य तीन अवस्थाओं के लिये परस्पर-पूरक नहीं दिखता है, बल्कि ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन की हद तक वह उन पर शासन करने और उनका शोषण करने में लगा हुआ है।

मानव की कुछ गतिविधियाँ जिनसे प्रकृति की व्यवस्था भंग हो रही है:

- वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर जो पिछले कई हजार वर्ष से 250-350 पीपीएम पर स्थिर था यह पिछले कुछ वर्षों में बहुत तेजी के साथ बढ़ा है।
- नदियों, झीलों और भूमिगत जल का सूखना।
- ध्रुव और ग्लेशियर का तेजी से पिघलना और समुद्र का जल स्तर भी बढ़ना।
- जंगल के क्षेत्रफल में कमी।
- कृषि योग्य भूमि का मानव के आवास और औद्योगिकरण के लिये अधिग्रहण।
- जीव-जन्तुओं का तेजी से लुप्त होना और जैव-विविधता में तीव्रता से कमी आना।

जबकि हमारी सहज-स्वीकृति इन सभी चारों अवस्थाओं के साथ परस्पर-पूरकता का निर्वाह करने की है। स्वयं से यह प्रश्न पूछ कर देखिये कि "आप को क्या सहज-स्वीकार्य है - इन चारों अवस्थाओं का पोषण करना या इनका शोषण करना"?

उत्तर तो स्पष्ट ही है- चारों अवस्थाओं का पोषण। जब भी हम इन चारों में से किसी का शोषण करने का भाव रखते हैं तो यह भाव ही स्वयं को सहज-स्वीकार्य नहीं होता है। यह स्वयं में अंतर्विरोध की स्थिति उत्पन्न करता है, परिणामस्वरूप स्वयं में दुख की स्थिति बनती है अर्थात् जब भी हममें शोषण का विचार या भाव आता है तो हम दुखी होते हैं। बहुत अधिक मात्रा में भौतिक सुविधा संग्रह करने के बावजूद भी यह दुःख बना ही रहता है। यह दुःख, मानव को एहसास दिलाता रहता है कि कुछ तो गलत हो रहा है। यदि हम इसके प्रति जागरूक हो जायें कि दुख अंतर्विरोध या अव्यवस्था का सूचक है तो हमारा ध्यान व्यवस्था को समझने और उसके अनुसार जीने की आवश्यकता पर जाता है फिर हम व्यवस्था को समझते हुये और उसके अनुसार जीते हुये व्यवस्थित अर्थात् सुखी हो पाते हैं।

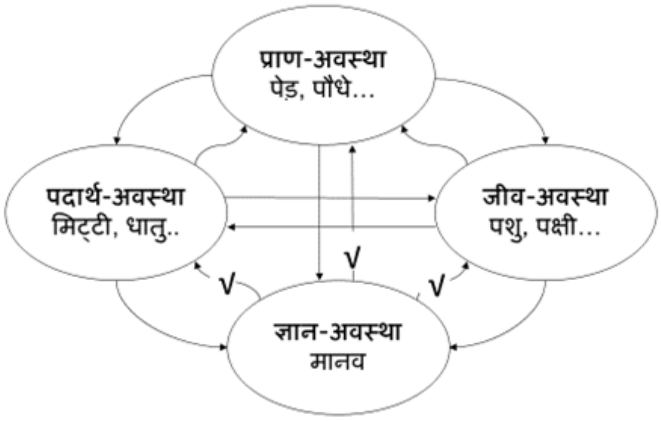

चित्र. 10-5. वांछित स्थिति- मानव का अन्य अवस्थाओं के साथ पूरक होना

मानव में व्यवस्था का अध्ययन करते हुये, हमने देखा कि मानव का पहचानना और निर्वाह-करना, उसके जानने और मानने पर निर्भर करता है। यदि जानने के अभाव में मानव केवल मानने के आधार पर ही जीता है तो वह अपने व्यवहार और कार्य में परस्पर-पूरकता को सुनिश्चित नहीं कर पाता है। हालांकि मानव में परस्पर-पूरकता के निर्वाह की ही सहज स्वीकार्यता है किन्तु सही-समझ के अभाव में वह परस्पर-पूरकता का निर्वाह नहीं कर पाता है। एक बार जब वह चारों अवस्थाओं में परस्पर-पूरकता को समझ लेता है, तो शेष-प्रकृति एवं दूसरे मानव के साथ इसका निर्वाह भी कर पाता है और जब वह

ऐसा जी पाता है तो अन्य तीनों अवस्थाओं के साथ निर्वाह में लगा हुआ प्रश्नवाचक चिन्ह, सही के चिह्न में परिवर्तित हो जाता है, यही चित्र. 10-5. में दिखाया गया है।

प्रकृति में व्यवस्था का यह चित्र, ज्ञान-अवस्था का अपनी सहज-स्वीकृति के अनुसार जीते हुये अन्य अवस्थाओं के साथ परस्पर-पूरकता के निर्वाह को सुनिश्चित करता हुआ दर्शा रहा है।

प्रकृति में व्यवस्था का आधार इसकी संरचना ही है अर्थात् प्रकृति में संघर्ष, ताकतवर का ही अस्तित्व, विरोध या अव्यवस्था की जगह अंतर्संबंध और परस्पर-पूरकता अंतर्निहित है। यह आरंभिक तीन अवस्थाओं में पहले से ही सुनिश्चित हो चुका है। मानव में भी परस्पर-पूरकता के लिये सहज स्वीकृति है। अतः मानव के व्यवस्थापूर्वक जीने के लिये और शेष-प्रकृति के साथ परस्पर-पूरकता के निर्वाह के लिये प्रकृति में स्व-नियंत्रण हैं। हमें सिर्फ प्रकृति में व्यवस्था को समझना है और उसके अनुसार जीना है।

प्रकृति में स्व-नियंत्रण
(Self-regulation in Nature)

प्रकृति में स्व-नियंत्रण है। प्रकृति में व्यवस्था बने रहने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि मानव उसको नियंत्रित करे। सही-समझ के साथ मानव भी स्व-नियंत्रित हो सकता है और व्यवस्था में रहते हुये बड़ी-व्यवस्था में भागीदारी कर सकता है।

यहाँ तक कि अब हम यह भी देख सकते हैं कि जल, समुद्र से वाष्पीकृत होता है, बादल बनते हैं, वे कहीं दूर जाकर धरती की सतह पर बरसते हैं, धाराये बहती हैं, नदियाँ, भूमिगत जल स्रोत इत्यादि ये सभी जल-चक्र में भागीदारी करते हैं। वर्षों से निश्चित मौसम को आते-जाते देखा जा सकता है। जल के वितरण को भी देखा जा सकता है। क्या इसके लिये मानव का कोई हस्तक्षेप आवश्यक है? हम देख सकते हैं कि यह चक्रीय और परस्पर-संवर्धन प्रक्रिया प्रकृति में स्व-नियंत्रित है।

जंगल में, मिट्टी, पानी, हवा, पेड़-पौधे एवं विभिन्न प्रजाति के पशुओं का अनुपात स्व-नियंत्रित रहता है। ऐसा कभी नहीं होता कि शेर सभी हिरणों को खा जाये या हिरण सारी घास खा जायें या पेड़-पौधे इतनी अधिक संख्या में उग जायें कि हिरण के चलने के लिये स्थान ही न रहे और नये पौधों के उगने के लिये धरती ही कम पड़ जाये।

मानव-शरीर का तापमान लगभग 37 डिग्री सेंटीग्रेड (98.4 डिग्री फॉरेनहाइट) होता है, हालाँकि पूरी धरती पर लोग अधिकांशतः 45 डिग्री सेल्सियस से -10 डिग्री सेंटीग्रेड के परिवर्तनीय तापमान वाले वातावरण में रहते हैं, फिर भी मानव-शरीर का तापमान स्वतः ही लगभग निश्चित बना रहता है। यह प्रकृति में स्व- नियंत्रित है।

कोई भी व्यक्ति इस तरह के अनेक उदाहरण देख सकता है, जैसे पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप से तापमान की एक निश्चित सीमा बनी रहती है; महिला-पुरुष का लिंग अनुपात भी लगभग 1:1 पर स्थिर रहता है एवं चिड़िया भी अंडे उसी समय देती है, जब कीड़े मकोड़े काफी ज़्यादा होते हैं।

अतः सही-समझ के साथ मानव भी प्रकृति में पूरक इकाई हो सकता है। हम इसके कुछ उदाहरण ले सकते हैं; जैसे कि हम सूर्य की ऊर्जा एवं वनस्पति आधारित ईंधन का उपयोग पेट्रोलियम और कोयले के स्थान पर कर सकते हैं और इस दिशा में अनेक प्रयास हो भी रहे हैं। अध्याय-9 में हमने यह चर्चा की थी कि चार बड़े पेड़ों की लकड़ी एक मनुष्य की जीवन पर्यंत लकड़ी सम्बंधित सभी आवश्यकताओं के लिये पर्याप्त है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं कि एक व्यक्ति के द्वारा ही बड़ा जंगल तैयार कर

दिया गया! हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में चार वृक्षों से अधिक का रोपण तो कर ही सकता है, क्या ऐसा नहीं है? पर्याप्त हरित-क्षेत्र और जंगल को बनाये रखते हुये, हम पशु-पक्षियों के लिये समुचित वातावरण सुनिश्चित कर सकते हैं। इसी प्रकार से हम सभी अवस्थाओं के साथ परस्पर-पूरकता के निर्वाह में अपनी भूमिका निभा सकते हैं।

इसके लिये हमें प्रकृति को समझना होगा, चारों अवस्थाओं को समझना होगा एवं इनमें निहित अंतर्संबंध समझना होगा ।चारों अवस्थाओं की क्रियाओं, धारणाओं, स्वभाव और अनुषंगीयता की समझ हमें इनके साथ परस्पर-पूरकता का निर्वाह करने के लिये, मूल दिशानिर्देश प्रदान करती है। प्रकृति में प्रचुरता है अर्थात् किसी भी अवस्था के लिये जो भी आवश्यक है, वह प्रकृति में पर्याप्त उपलब्ध है। आगे की कक्षाओं में हम इन्हीं का अध्ययन करेंगे।

मुख्य बिंदु
(Salient Points)

- प्रकृति, इकाईयों का समूह है- चैतन्य इकाईयाँ एवं जड़ इकाईयाँ।
- यद्यपि ये इकाइयाँ असंख्य हैं, फिर भी इनको चार अवस्थाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है-
    1. पदार्थ-अवस्था
    2. प्राण-अवस्था
    3. जीव-अवस्था
    4. ज्ञान-अवस्था
- पहले तीन अवस्थाएं एक दूसरे के लिए पूरक है तथा ज्ञान अवस्था (मानव) के लिए भी पूरक है। मानव की सहज स्वीकृति भी परस्पर पूरकता में है तथा वह सही समझ के साथ इस को सुनिश्चित कर पाता है ।

अपनी समझ को जाँचे
(Test your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न
(Questions for Self-evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. प्रकृति का अध्ययन क्यों आवश्यक है, समझाइये?
2. प्रकृति की चारों अवस्थाओं की सूची बनाइये एवं इनसे संबंधित इकाइयों के उदाहरण भी बताइये। और यह भी स्पष्ट करिये की इनके वर्गीकरण का क्या आधार है?

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास
(Practice Exercises for Self-exploration)

(विषय-वस्तु के साथ जुड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही, इन अभ्यासों को व्यक्तिगत तौर पर या समूह में विशेष कर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. अपने पड़ोस से कोई भी एक पर्यावरण से सम्बंधित समस्या को लीजिये और इसका मूल कारण ढूंढने का प्रयत्न कीजिये। उदाहरण के लिये पानी की कमी, वायु प्रदूषण, भोज्य पदार्थों में मिलावट इत्यादि। व्यक्तिगत आधार पर आप इस समस्या के समाधान में क्या योगदान दे सकते हैं लिखिये।

(पर्यावरण की स्थिति पर अनेक लघु फिल्में है। इस प्रकार की एक लघु फिल्म भूतपूर्व अमेरिकी उपराष्ट्रपति अल गोर ने 2006 में प्रस्तुत की थी, जिसे उन्होंने "An Inconvenient Truth" नाम दिया था, जो यूट्यूब से डाउनलोड की जा सकती है (http://an-inconvenient-truth.com/)।

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग (clay modelling), मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

"प्रकृति पहले से ही व्यवस्था में है (बिना सही-समझ के मानव को छोड़कर), इसलिये मानव में व्यवस्था की संभावना या प्रावधान है"

अनुभाग-4: आपके प्रश्न
(Your Questions)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है, तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-11
अस्तित्व में व्यवस्था - विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व को समझना

Harmony in Existence – Understanding Co-existence at Various Levels

आगे की कक्षा में:

'प्रकृति में व्यवस्था' के बारे में चर्चा करते समय, हम यह पातें है कि प्रकृति में चार अवस्थायें हैं: पदार्थ-अवस्था, प्राण-अवस्था, जीव-अवस्था और ज्ञान-अवस्था। पहली तीन अवस्थायें व्यवस्था में हैं और एक दूसरे के लिये परस्पर-पूरकता का निर्वाह कर रही हैं। मानव को अभी भी व्यवस्था और व्यवस्था में जीने को समझना है, तभी संपूर्ण प्रकृति व्यवस्था में हो पायेगी।

आगे की कक्षाओं में हम अस्तित्व में व्यवस्था के बारे में अध्ययन करेंगे; और अस्तित्व में व्यवस्था (सह-अस्तित्व) को समझने के आधार पर विभिन्न स्तरों पर व्यवस्था को देखने का प्रयास करेंगे। हम यह भी अध्ययन करेंगे कि अस्तित्व शून्य में संपृक्त (submerged) इकाइयों के रूप में है। इकाइयाँ दो प्रकार की हैं- जड़ इकाइयाँ और चैतन्य इकाइयाँ। इकाइयाँ शून्य के सह-अस्तित्व में ऊर्जित (energized) हैं, स्व-व्यवस्थित हैं । अस्तित्व में मानव की भागीदारी, सह-अस्तित्व को अनुभव करना और सह-अस्तित्व में जीना है।

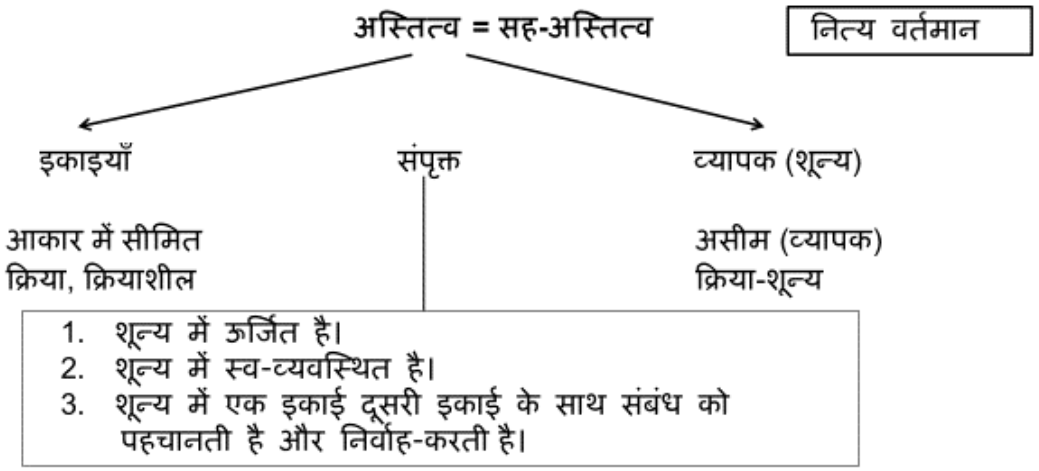

चित्र. 11-2. संपृक्तता

आगे की कक्षाओं में हम, विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व को समझने का प्रयास करेंगे।

परिशिष्ट A3-1: मूल चाहना क्या है?

Appendix A3-1: What is Basic Aspiration?

हम में से हर व्यक्ति कुछ न कुछ प्रयास तो कर ही रहा है। जैसे कि हम कुछ सोचते रहते हैं, कुछ करते रहते हैं इत्यादि। इस प्रकार हम सब कुछ न कुछ प्रयास कर ही रहे हैं। हम मूलतः ये सभी प्रयास क्यों कर रहे हैं? पहले हम इसी का अध्ययन करना चाहते हैं।

करना (प्रयास करना) ⇨ बनना ⇨ पाना ⇨ होना

पहली दृष्टि में हमारे सभी प्रयास कुछ बनने के अर्थ में दिखते हैं जैसे इंजीनियर, डॉक्टर, किसान, IAS अधिकारी, वकील, वैज्ञानिक, कलाकार, संगीतकार, फिल्म निर्माता, या चार्टर्ड अकाउंटेंट इत्यादि। अब अगर स्वयं से पूछें कि हम यह बनना क्यों चाहते हैं तो कुछ और बुनियादी, मूलभूत वास्तविकताओं के करीब पहुँच सकते हैं।

हम इंजीनियर, डॉक्टर, किसान इत्यादि बनने का प्रयास इसलिये कर रहे हैं, क्योंकि हम यह सब बनकर कुछ पाना चाहते हैं। आप अपने में ही जाँचकर देखें कि आप इंजीनियर, डॉक्टर या किसान इत्यादि क्यों बनना चाहते हैं? तो इसका उत्तर नई-नई इमारतों को डिजाइन करने, हानिकारक रसायनों से मुक्त भोजन उगाने इत्यादि के अर्थ में हो सकता है। स्वयं के लिये जाँचकर देखें कि क्या सिर्फ नई इमारत के लिये डिजाइन बनाना अथवा जैविक प्राकृतिक भोजन उगाना ही आपका अंतिम लक्ष्य है या आप इन्हें करने के बाद इनसे कुछ और पाना चाहते हैं। जैसे एक इंजीनियर बनने और नई इमारतों को डिजाइन करने के बाद आप इससे बहुत सारा धन पाना चाह सकते हैं। एक किसान के रूप में आप प्राकृतिक भोजन उगाकर अच्छे स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने में सफलता पाना चाहते हैं। इन लक्ष्यों को पाना इसलिये चाह सकते हैं कि इनके आधार पर आपके आस-पास के लोग आपको सम्मान दें; समाज में आपका बहुत नाम हो, प्रसिद्धि हो इत्यादि। क्या आप यह देख सकते हैं?

अब हम उस मूल चाहना के लगभग करीब हैं जिसके लिये हम कुछ बनने का, करने का या पाने का यह प्रयास कर रहे हैं। इंजीनियर या किसान बनना तो धन और सम्मान पाने का एक साधन मात्र है। हम वकील बनकर या संगीतकार बनकर या अन्य और व्यवसायों के माध्यम से भी ये धन और सम्मान प्राप्त कर सकते हैं। अब, हम दोबारा वही प्रश्न पूछते हैं कि, "क्या पैसा और सम्मान ही हमारी वह मूल चाहना है जो वास्तव में हम चाहते हैं या हमारी मूल चाहना कुछ और है?" कृपया चित्र A3-1-1 का संदर्भ लें।

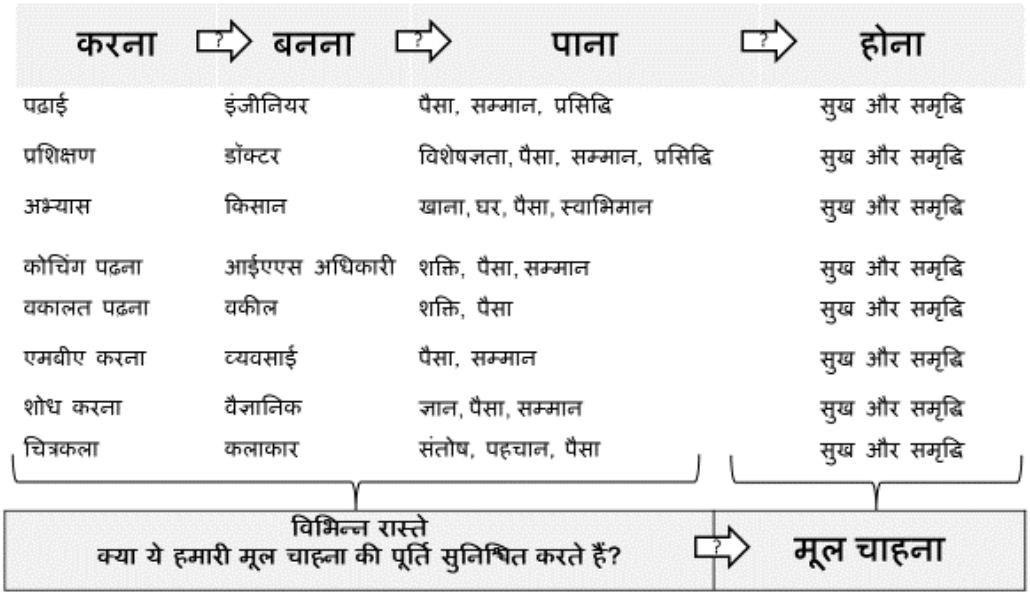

चित्र. A-3-1-1. जीने के विभिन्न रास्ते (मूल चाहना से जुड़े बिना ही)

हम कुछ न कुछ करते हैं क्योंकि हम कुछ बनना चाहते हैं और बनकर कुछ न कुछ पाना चाहते हैं; किन्तु यह करना, बनना और पाना किसके लिये है? ये सब हमारे 'सुखी और समृद्ध' होने के लिये है।

यह वही मौलिक वस्तु है, जो हम होना चाहते हैं, जिसकी निरंतरता चाहते हैं। अतः हमारी मूल चाहना निरंतर सुखी और समृद्ध होना है।

मानव की मूल चाहना- निरंतर सुख और समृद्धि

Continuous Happiness and Prosperity as Basic Human Aspirations

अपने में जाँच कर देखिये कि क्या आप सुखी होना चाहते हैं या दुखी? या आप कभी सुखी होना चाहते हैं और कभी दुखी? या आप हर समय, निरंतरता में सुखी रहना चाहते हैं? इसी तरह अपने में यह भी जाँचिये कि आप समृद्ध होना चाहते हैं या नहीं। इसके अलावा, यह भी जाँचिये कि आप केवल कभी-कभी समृद्ध होना चाहते हैं या निरंतरता में?

आप अपने विचारों और कार्यों को देखें एवं स्वयं से बार-बार पूछें कि यह विचार क्यों, यह कार्य क्यों? तो थोड़ी जाँच से यह पता चलेगा कि अंततः आप सुखी होना चाहते हैं, समृद्ध होना चाहते हैं और सुख, समृद्धि की निरंतरता चाहते हैं। आपकी इच्छा, विचार और आशा सहित आपके सभी प्रयास इसी अर्थ में हैं, क्योंकि वास्तव में आप यही होना चाहते हैं। यह आप में स्वाभाविक रूप से है ही जो कि निरंतरता में आप में बनी रहती है। यही आपकी मूल चाहना है। जब आप जाँच करेंगे तो देखेंगे कि आपकी यह चाहना कभी बदलती नहीं है; यह उम्र, करियर प्लान, व्यापार, स्थान इत्यादि में बदलाव के बावजूद भी आपमें एक समान बनी रहती है; आपके जीने की स्थिति कोई भी क्यों न हो आपमें 'निरंतर सुखी और समृद्ध होने की यह मूल चाहना' हमेशा एक जैसी बनी रहती है। इसे अपने लिये स्व-सत्यापित करें।

यदि हमें यह स्पष्ट है, तो हम अपने प्रयासों का नियोजन इसी चाहना को पूरा करने के अर्थ में करेंगे। हम इसी की पूर्ति के अर्थ में कार्यक्रम बनायेंगे और कार्यक्रम के प्रत्येक पायदान (Step) को इस तरह से संयोजित करेंगे कि यह हमें हमारी मूल चाहना की पूर्ति के करीब ले जाये। हालांकि हम अपनी मूल चाहना स्पष्ट न होने के बावजूद भी कार्यक्रम तो बनाते ही हैं, लेकिन तब हम यह देखने में सक्षम नहीं हो पाते कि क्या यह कार्यक्रम हमें हमारी मूल चाहना की पूर्ति की ओर ले जा पायेगा या नहीं! हम यह मान लेते हैं कि ये कार्यक्रम हमें बेहतर स्थिति में ले जायेंगे बिना इस बात की स्पष्टता के कि वह बेहतर स्थिति क्या है या हम किसी न किसी पायदान (Step) को ही अंतिम पड़ाव मान लेते हैं।

उदाहरण के लिये हम स्कूल की पढ़ाई को पूरा करने, स्नातक स्तर की पढ़ाई को पूरा करने, नौकरी प्राप्त करने इत्यादि को अपने लक्ष्य के रूप में मान सकते हैं। किन्तु जब इस तरह कोई एक योजना पूरी हो जाती है, तो भी स्वयं में अपूर्णता ही लगती रहती है, यानी हममें कुछ अधूरापन, असंतोष की भावना बनी ही रहती है, जिसके कारण हम किसी अन्य योजना के बारे में पुनः सोचने लगते हैं और यही चक्र चलता रहता है, ऐसा लगता है कि जिंदगी एक ऐसी दौड़ बन गयी है जिसमें कोई अंतिम बिंदु है ही नहीं। हम ऐसा कोई बिंदु तय नहीं कर पाते कि हम यह कह सकें कि यही वह अंतिम लक्ष्य है, जहाँ हम पहुँचना चाहते हैं जिसकी निरंतरता को बनाये रखना चाहते हैं।

जब आप पढ़ते हैं तो क्या आप को यह स्पष्ट रहता है कि आप इस पढ़ाई को अपने सुख और समृद्धि के लिये कर रहे हैं या इसे केवल आप एक असाइनमेंट मानकर पूरा करने की दृष्टि से कर रहे हैं या मात्र एक परीक्षा पास करने के लिये या मात्र एक डिग्री प्राप्त करने के लिये या मात्र एक नौकरी प्राप्त करने के लिये? इत्यादि। ऐसे ही जब आप गेहूँ के बीज की बुआई कर रहे होते हैं तो उस समय आपके विचार किस अर्थ में चलते हैं, क्या आपके विचारों में इससे होने वाला लाभ चलता रहता है या यह चलता है कि इससे प्रकृति के साथ परस्पर-पूरकता के संबंध का निर्वाह होगा साथ ही साथ हमारी समृद्धि भी सुनिश्चित होगी?

इस प्रकार अपने सभी विचार और कार्यों के लिये यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि ये किन चरणों (steps) के माध्यम से आपके अंतिम लक्ष्य अर्थात् मूल चाहना से जुड़े हुये हैं? यह भी जाँच करें कि क्या यह मान लेना ठीक है कि 'आप अपना प्रयास करते रहो आपकी मूल चाहना तो स्वतः पूरी हो ही जायेगी' जैसे कि 'मेहनत करते रहो बाकी सब तो स्वतः ही ठीक हो जायेगा' अथवा 'अधिकाधिक लाभ कमाते रहो समृद्धि तो स्वतः आ ही जायेगी' इत्यादि। वास्तव में इस प्रकार की बातों के बारे में यह जाँच आवश्यक है कि ये कैसे आपकी मूल चाहना से जुड़ी हुई हैं?

इसी तरह अपने किसी कार्यक्रम या चरण (step) के बारे में ऐसा मान लेना ठीक है क्या कि यही वह अंतिम चरण (step) है जो एक बार पूरा हो गया तो बाकी सब कुछ स्वतः ठीक हो ही जायेगा? जैसे कि एक अच्छा इंजीनियर या डॉक्टर बन जाना ही वह अंतिम चरण (step) है एक बार आप इसमें सफल हो गये तो जीने की बाकी समस्यायें तो स्वतः ही हल हो जायेंगी; और क्या यह आपको सही लगता है?

एक बार जब हममें यह स्पष्टता हो पाती है कि हमारी मूल चाहना निरंतर सुख और समृद्धि है तब हम अच्छी तरह से आपस में जुड़े हुये एक चरणबद्ध कार्यक्रम के द्वारा अपनी इस मूल चाहना को पूरा करने के अर्थ में अपने सभी प्रयासों को कदम दर कदम नियोजित करने में सक्षम हो पाते हैं। मूल चाहना स्पष्ट होने से हम यह तय कर पाते हैं कि हमें क्या बनना है, क्या पाना है, क्या होना है और इन सब के लिये हमें करना क्या है जैसा कि चित्र A3-1-2 में दिखाया गया है।

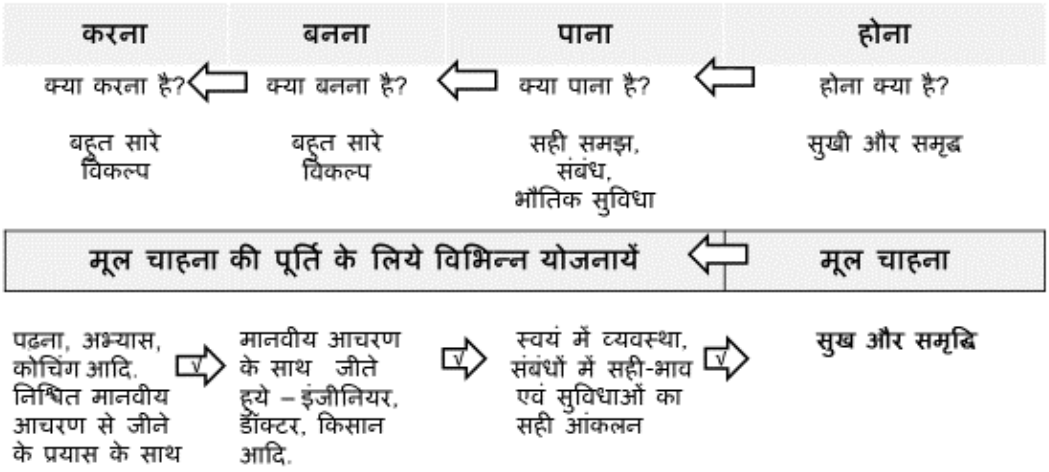

चित्र. A3-1-2. मानव की मूल चाहना की स्पष्टता के साथ जीने की योजना

इस प्रकार हमारा हर प्रयास एक विशिष्ट दिशा में होगा अर्थात् हमारी मूल चाहना की ओर होगा। यह प्रयास मौलिक रूप से निश्चित मानवीय आचरण के विकास के लिये होगा; हम मानव लक्ष्य की स्पष्टता सहित एक सार्थक व्यवसायी बनने के साथ-साथ मानव-चेतना से युक्त एक अच्छा इंसान बनने की योजना भी बनायेंगे; हम स्वयं में व्यवस्था सुनिश्चित करने के अर्थ में अन्य लोगों के साथ संबंध में सही भाव एवं परिवार में समृद्धि के लिये आवश्यक भौतिक सुविधा जुटाने के लिये योजना भी बनायेंगे। जहाँ तक भौतिक सुविधा का संबंध है, हम शेष-प्रकृति के साथ चक्रीय और परस्पर-संवर्धन विधि से इसके उत्पादन को सुनिश्चित करेंगे। दूसरी ओर, यदि हम इस मूल चाहना की स्पष्टता के बिना ही केवल कुछ चरणों के अर्थ में ही कार्य कर रहे हैं तो हमारे प्रयास किसी विशेष दिशा में हो भी सकते हैं या नहीं भी; ये तृप्ति दायक हो भी सकते हैं या नहीं भी। ये प्रयास मूल लक्ष्य के विपरीत दिशा में भी हो सकते हैं

जिसके परिणामस्वरूप ये परस्पर विरोध (उदाहरण के लिये युद्ध) का कारण भी बन सकते हैं। इन दोनों संभावनाओं को चित्र A3-1-3 में दिखाया गया है।

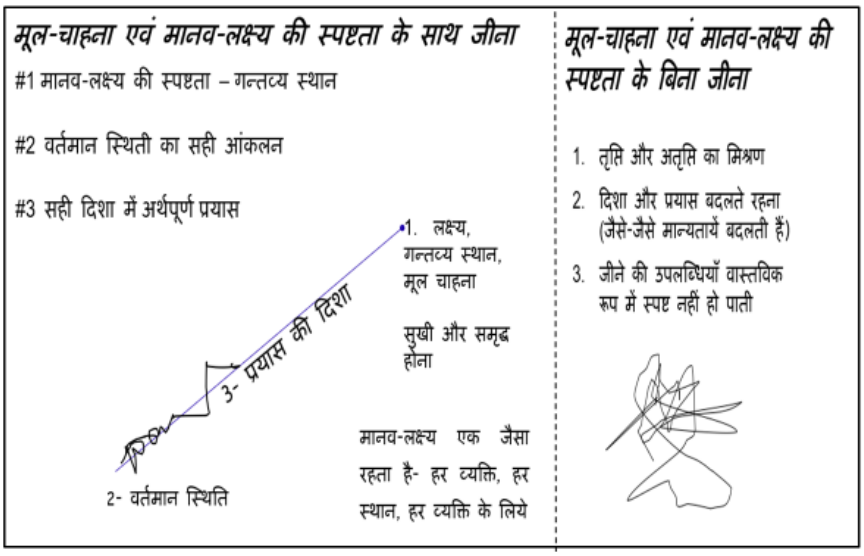

चित्र. A3-1-3. मूल-चाहना की स्पष्टता अथवा स्पष्टता के बिना जीना

प्रयोग के लिये महत्वपूर्ण बिन्दु (Takeaways):

- हम जो करते हैं (करना), हम जो बनते हैं (बनना) और हमें जो प्राप्त होता है (पाना) ये सभी कदम निरंतर सुख और समृद्धि की स्थिति (होना) को सुनिश्चित करने के अर्थ में हैं। इन क़दमों में बहुत विविधता हो सकती है किन्तु हमारा 'होना' निश्चित है।
- हमारी मूल चाहना की स्पष्टता के साथ, हमारे जीने की योजना के सभी कदम अच्छी तरह एक दूसरे से जुड़े हुये एक निश्चित दिशा में होते हैं। हमारी मूल चाहना की स्पष्टता के बिना यदि हम योजना बनाते हैं तो सामान्यतः इन कदमों को ही लक्ष्य मान लेते हैं या कभी-कभी तो ये कदम एक दूसरे के विरोध में भी हो सकते हैं।

परिशिष्ट A6-1: 'स्वयं(मैं)' की क्रियायें

Appendix A6-1: Activities of the Self

'स्वयं(मैं)' की दस क्रियाओं को चित्र A6-1 में उल्लेखित किया गया है।

गति क्रिया	स्थिति क्रिया
1. प्रामाणिकता	अनुभव
2. संकल्प	बोध
3. चित्रण ←	चिंतन
4. विश्लेषण	तुलन
5. चयन	आस्वादन

चित्र. A6-1. 'स्वयं(मैं)' की क्रियायें

अध्याय-6 में, हमने 'स्वयं(मैं)' की क्रियाओं के बारे में संक्षेप में चर्चा की थी। अब, हम 'स्वयं(मैं)' की सभी दसों क्रियाओं के बारे में विस्तृत चर्चा कर रहे हैं [ए नागराज १९९९]।

'स्वयं(मैं)' पाँच स्थिति-क्रियाओं और पाँच गति-क्रियाओं का एक अविभाज्य चैतन्य इकाई है।

अनुभव, बोध, चिंतन, तुलन और आस्वादन स्थिति-क्रियायें हैं।

प्रमाण, संकल्प, चित्रण, विश्लेषण और चयन गति-क्रियायें हैं।

स्थिति और गति क्रियायें साथ-साथ हैं।

'अस्तित्व' सह-अस्तित्व के रूप में है। अस्तित्व जैसा है उसे वैसा जानना ही अनुभव-क्रिया है अर्थात् सह-अस्तित्व का अनुभव। यह सह-अस्तित्व के अर्थ में जीने के प्रमाण के रूप में अभिव्यक्त होता है अर्थात् सार्वभौम मानवीय व्यवस्था के रूप में।

प्रकृति में एक अंतर्निहित व्यवस्था है। प्रकृति की इस अंतर्निहित व्यवस्था को समझना ही बोध-क्रिया है। यह समझ प्रकृति की व्यवस्था में जीने के संकल्प के रूप में अभिव्यक्त होती है।

अस्तित्व में प्रत्येक इकाई का एक निश्चित स्वभाव है अर्थात् उसकी बड़ी-व्यवस्था में एक निश्चित भागीदारी है। इस भागीदारी को जानना ही चिंतन-क्रिया है। यह भागीदारी संबंध में परस्पर-पूरकता के अर्थ में जीने की इच्छा के रूप में अभिव्यक्त होती है।

विश्लेषण-क्रिया का आशय इच्छा की पूर्ति के लिये विभिन्न विधियों एवं आवश्यक संसाधनों के विवरणों से संबंधित विभिन्न विकल्पों की तुलना करना है। तुलन के छह आधार(दृष्टि) हैं:

1. इंद्रियों के अनुकूल (प्रिय)
2. स्वास्थ्य के अनुकूल (हित)
3. सुविधा संग्रह के अनुकूल (लाभ)
4. मानव-मानव संबंध में उभय-सुख के अर्थ में (न्याय)
5. प्रकृति में व्यवस्था (परस्पर-पूरकता) के अर्थ में (व्यवस्था)
6. सह-अस्तित्व के अर्थ में (सह-अस्तित्व)

वह 'स्वयं(मैं)', जिसने अनुभव, बोध और चिंतन की अपनी क्षमता को साकार कर लिया है (जिसका उल्लेख हमने सही-समझ के रूप में किया है), वह 'स्वयं(मैं)' अपनी तुलन-क्रिया में बिन्दु 6, 5, 4 के आधार पर बिन्दु 3, 2, 1 को निर्देशित कर पाता है। दूसरे शब्दों में सह-अस्तित्व, परस्पर-पूरकता, और न्याय हमारी तुलन की दृष्टि में प्राथमिक आधार होते हैं। ये तीनों दृष्टियाँ (सह-अस्तित्व, व्यवस्था, और न्याय) शेष तीनों दृष्टियों (प्रिय हित लाभ) को संवेदना, शरीर और भौतिक सुविधा के सदुपयोग के अर्थ में मार्गदर्शन कर पाती हैं। ये निर्देशित विकल्प हमें शरीर के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिये पोषण और संरक्षण के अर्थ में उपयुक्त भौतिक सुविधाओं के चयन हेतु संवेदना का उपयोग करने, स्वयं के विकास और सामाजिक विकास (व्यापक मानव लक्ष्य) के अर्थ में शरीर का उपयोग करने; एवं उभय-समृद्धि सुनिश्चित करने के अर्थ में भौतिक सुविधाओं का उपयोग करने के योग्य बनाती हैं।

वह 'स्वयं(मैं)' जिसने अपनी पूरी क्षमता को अभी साकार नहीं किया है ('स्वयं(मैं)' जिसमें सही समझ का अभाव है), एक सीमित तरीके से केवल बिन्दु 3, 2, 1 की दृष्टि के आधार पर तुलन करता है। चूंकि यह तुलन सही-समझ से निर्देशित नहीं है अतः प्राथमिकता केवल संवेदना, भौतिक-अनुकूलता या लाभ की ही होती है।

इस प्रकार की सभी अभिव्यक्तियाँ जिनमें बाहरी दुनिया भी शामिल हो, वह 'स्वयं(मैं)' में चयन-क्रिया के माध्यम से होती हैं जो कि आस्वादन पर आधारित होती हैं अर्थात् संवेदना, संबंधों में मूल्य और मानवीय लक्ष्य के आस्वादन पर आधारित होती हैं।

शब्दकोष
(Glossary)

शब्द (वास्तविकता की ओर संकेत)	अर्थ (वास्तविकता का संक्षिप्त विवरण)
क्रिया	समय के साथ किसी इकाई में होने वाला परिवर्तन। 1) इकाइयाँ शून्य में ऊर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं और क्रियाशील हैं (अपने स्वभाव के अनुसार दूसरी इकाइयों के साथ संबंध का निर्वाह कर रही हैं)। 2) क्रियायें- भौतिक क्रिया, रासायनिक क्रिया और चैतन्य क्रिया के रूप में हो सकती हैं।
क्रियापूर्णता	'स्वयं(मैं)' की वह स्थिति, जिसमें 'स्वयं(मैं)' अपनी सारी क्रियाओं में जागृत होता है।
पशु-चेतना	वह व्यक्ति जो अपने आप को सिर्फ शरीर मानकर, अपनी सभी आवश्यकताओं को केवल भौतिक सुविधाओं से ही पूरा करने का प्रयास करता है (वह स्वयं में सही-समझ और संबंधों में सही-भाव के लिये प्रयास नहीं करता)।
मानना	स्वयं और दूसरों के प्रति स्वीकृति। इसकी दो संभावनायें हैं: • जानना के आधार पर मानना - स्वीकृति निश्चित होती है। मैं मानव हूँ; दूसरा भी मेरे जैसा ही है; और मैं संबंध में परस्पर-पूरकता के निर्वाह का भाव रखता हूँ। • जानना के बिना मानना – स्वीकृतियाँ, मान्यताओं और संवेदनाओं पर आधारित होती हैं, जिनमें अनिश्चितता रहती है; संबंधों में भाव शर्त आधारित होते हैं।
व्यवहार	एक मानव की दूसरे मानव के साथ परस्परता। यह परस्परता मुख्यतः भावों के आदान-प्रदान के रूप में होती है।
शरीर	'स्वयं' (चैतन्य-इकाई) के सह-अस्तित्व में एक जड़-इकाई।
चरित्र	मानव द्वारा किया गया व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी।
सह-अस्तित्व	शून्य के संपृक्तता में परस्पर जुड़ी हुई, अंतर्संबंधित इकाइयां।
आचरण	मानव का संपूर्ण जीना; मानव का अपनी समझ और विचार के साथ व्यवहार, कार्य एवं बड़ी व्यवस्था में भागीदारी।
आचरण-पूर्णता	मानव का ऐसा आचरण जिसमें 'स्वयं(मैं)' अपनी सभी क्रियाओं (चिंतन बोध और अनुभव सहित) में जागृति पूर्वक व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी करता हो।
चैतन्यता	इकाइयाँ जिनमें जानना, मानना, पहचानना और निर्वाह-करने की क्रियायें हैं। वर्तमान में मानव में मानने की क्रिया तो जागृत है किन्तु जानने की क्रिया जागृत हो भी सकती है और नहीं भी।
चेतना विकास	स्व-विकास ('स्वयं' का विकास); जानने के बिना सिर्फ मानने के आधार पर जीने के बजाय जानने और मानने के आधार पर जीने की उच्च क्षमता को जागृत करना। इसी को पशु-चेतना से मानव-चेतना में संक्रमण के रूप में भी देखा जाता है।
चक्रीय और परस्पर संवर्धन	एक ऐसी प्रक्रिया, जिसमें भाग लेने वाली सभी इकाइयाँ एक स्थिति से दूसरी स्थिति में परिवर्तित होती रहती हैं; और इस प्रक्रिया में भाग लेने वाली सभी इकाइयों का संवर्धन भी होता रहता है।
निश्चित मानवीय	मानवीय-चेतना पर आधारित आचरण। ऐसे आचरण में मानव का व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी, संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व की समझ के आधार पर होती

आचरण	है; प्रत्येक मानव में इसके लिये सहज-स्वीकृति भी है।
दासता	यह निम्न में से किसी भी प्रकार की हो सकती है: a. शारीरिक विवशता के रूप में b. स्वयं में ऐसी अपेक्षाओं के रूप में जो कि व्यवस्था के अर्थ में नहीं हैं c. विरोधाभासी विचारों के रूप में d. स्वयं में ऐसी इच्छाओं के रूप में जो कि सह-अस्तित्व के अनुरूप नहीं हैं
परतंत्रता	दूसरे के द्वारा निर्देशित होना अथवा अपनी अंतर्विरोधी आशा, विचार या इच्छा के द्वारा निर्देशित होना
नैतिकता	निश्चित मानवीय आचरण की अभिव्यक्ति (व्यवहार, कार्य और बड़ी व्यवस्था में भागीदारी) के मूलभूत नियम/सिद्धांत ही नैतिकता है।
नैतिक	नैतिकता के अनुरूप (ऊपर परिभाषित)।
नैतिक आचरण	नैतिकता के अनुरूप आचरण (ऊपर परिभाषित)।
नैतिक मानवीय आचरण	सही-समझ, सही-भाव के साथ बड़ी व्यवस्था (बाहरी संसार) में मानव की भागीदारी - जो कि नैतिकता (ऊपर परिभाषित) के अनुरूप हो।
अस्तित्व	जो कुछ भी है / जो कुछ भी होना है।
प्रयोगात्मक-सत्यापन	जीने में सत्यापन - मानव के `साथ व्यवहार में और शेष-प्रकृति के साथ कार्य में।
परिवार	एक दूसरे के लिये स्वीकृति का भाव रखने वाले व्यक्तियों का समूह, जो कि परस्पर-पूरकता के अर्थ में जीते हों।
अभय	परस्परता में विश्वास और परस्पर-पूरकता।
निर्वाह	जो इकाई की निश्चित आवश्यकता को पूरा कर रहा हो।
सुख	व्यवस्था में होना।
संगीत	व्यवस्था, सामंजस्य
स्वास्थ्य	(1) 'शरीर', 'स्वयं(मैं)' के अनुसार कार्य करता है। (2) 'शरीर' के अंग-प्रत्यंग में व्यवस्था बनी हुई है।
मानव	'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' का सह-अस्तित्व।
मानव चेतना	मानव, जो अपने आप को 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के सह-अस्तित्व के रूप में समझता हो; जो 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकताओं को सही-समझ एवं सही-भाव से तथा 'शरीर' की आवश्यकताओं को सुविधाओं से पूरा करता हो। जो धीरता पूर्वक संबंधों में न्याय, व्यवस्था और सह-अस्तित्व (परस्पर-पूरकता) का निर्वाह करता हो।
मानव लक्ष्य	सही-समझ और सही-भाव (सुख), समृद्धि, अभय (विश्वास), और सह-अस्तित्व (परस्पर-पूरकता)।
मानवीय मूल्य	अस्तित्व के सभी स्तरों पर मानव की स्वाभाविक भागीदारी- धीरता, वीरता, उदारता, दया , कृपा, करुणा।
मानवीय आचरण	मानव का अपने स्वभाव के अनुसार आचरण।
मानवीय समाज	एक ऐसा समाज जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी मानव-लक्ष्य की पूर्ति हो पाये।
मानवीय परंपरा	1. पीढ़ी दर पीढ़ी समग्र मानवीय लक्ष्य की पूर्ति के साथ जीने वाले लोगों का समूह। 2. मानवीय आचरण, शिक्षा, संविधान और सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था, और

	इनकी निरंतरता।
प्रकृति सहज धारणा	इकाई के होने की प्रकृति सहज व्यवस्था जो कि इकाई से अविभाज्य है।
अंतर्संयोजनात्मकता	साथ-साथ होना और एक दूसरे से संबंधित होना।
परस्पर-निर्भरता	परस्परता में एक-दूसरे से जुड़े होना और एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
जानना	वास्तविकता जैसी है उसे सीधे-सीधे वैसा ही देखना, उसकी संपूर्णता में देखना।
ज्ञान	1. वास्तविकता की सही-समझ। वास्तविकता जैसी है उसे वैसा ही देखना, उसे संपूर्णता में देखना। 2. स्वयं का ज्ञान, अस्तित्व का ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण का ज्ञान।
बड़ी व्यवस्था	इकाई जिस व्यवस्था का भाग है, वह व्यवस्था उस इकाई की बड़ी व्यवस्था है।
जड़	इकाइयाँ जिनमें सिर्फ पहचानना और निर्वाह-करना होता है (जिनमें जानने या मानने की क्रिया नहीं होती है)। जिनकी आवश्यकतायें और क्रियायें सामयिक हैं।
परस्पर	साथ-साथ, एक दूसरे के साथ।
परस्पर-पूरकता	एक इकाई का दूसरी इकाई के साथ संबंध में रहते हुये, एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
सहज स्वीकृति	स्वीकृति का सहज भाव, जो कि संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के अर्थ में हो।
स्वभाव	किसी इकाई की बड़ी व्यवस्था में उसकी प्रकृति सहज भागीदारी।
प्रकृति	इकाइयों (जड़ और चैतन्य) का समूह।
भागीदारी	व्यवहार, कार्य या दूसरी इकाई के साथ किसी अन्य रूप में निर्वाह।
मान्यता	मानना जो कि अभी स्व-सत्यापित नहीं हुआ है। मानना सही भी हो सकता है और नहीं भी।
व्यवसाय	बड़ी व्यवस्था में भागीदारी जैसे उत्पादन, स्वास्थ्य, विनिमय इत्यादि व्यवस्थाओं में भागीदारी। मानवीय चेतना के अर्थ में सही-समझ के साथ जो भी सीखा है और अभ्यास किया है, उसे स्वीकृति के साथ करना।
व्यावसायिक नैतिकता	निश्चित मानवीय आचरण के मूल सिद्धांतों की अभिव्यक्ति (व्यवहार कार्य और बड़ी व्यवस्था में भागीदारी) विशेष रूप से व्यवसाय के संबंध में जो भी हम करते हैं।
समृद्धि	आवश्यकता से अधिक भौतिक सुविधाओं के उपलब्ध होने का भाव या उत्पादन या कर पाने का भाव।
उद्देश्य	इकाई का स्वभाव।
वास्तविकता	जो भी है। वास्तविकतायें मूलतः तीन प्रकार की हैं – जड़, चैतन्य और शून्य
अनुभव	संपूर्ण वास्तविकता के सार को प्रत्यक्ष देखना। स्वयं में अस्तित्व को सह-अस्तित्व के रूप में देखना।
पहचानना	संबंध को देख पाना।
सही-भाव	सह-अस्तित्व, व्यवस्था और संबंध का भाव। विश्वास का भाव (आधार मूल्य) से लेकर प्रेम का भाव (पूर्ण मूल्य) तक [सभी नौ मूल्य]।
सही-समझ	जीने के चारों स्तरों पर व्यवस्था को समझना- स्वयं से लेकर संपूर्ण-अस्तित्व तक। ज्ञान संपन्नता।

सदुपयोग	1. मानवीय लक्ष्य की पूर्ति के अर्थ में सुविधाओं का उपयोग। 2. मानवीय मूल्यों की पूर्ति के अर्थ में धन ('शरीर', 'स्वयं(मैं)' और सुविधाओं) को अर्पित करने की क्रिया।
संस्कार	अभी तक की 'स्वयं(मैं)' में संग्रहित सभी इच्छा, विचार और आशा से प्राप्त स्वीकृतियां।
लक्ष्य	गंतव्य। जैसा हम होना चाहते हैं और जिसकी निरंतरता चाहते हैं हम सुखी होना चाहते हैं और सुख की निरंतरता चाहते हैं
'स्वयं(मैं)'	चैतन्य इकाई।
स्वान्वेषण	स्वयं में अध्ययन। अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर स्वयं में जाँच के उपरांत अपने व्यवहार और कार्य में प्रायोगिक सत्यापन।
स्व-राज्य	स्वयं में व्यवस्था का बाहरी संसार तक फैलाव।
स्व-व्यवस्थित	अपनी प्रकृति सहज धारणा के अनुसार होना; अर्थात् स्व-व्यवस्था में होना, निश्चित क्रम में होना, अपने स्वभाव के अनुसार बड़ी व्यवस्था में भागीदारी करना।
स्व-व्यवस्थित संगठन	किसी इकाई की आतंरिक स्व-व्यवस्था या इकाई के होने का क्रम।
संयम	1. शरीर के संदर्भ में - शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग की जिम्मेदारी का भाव। 2. प्रकृति के संदर्भ में – चारों अवस्थाओं में नियमन।
स्व-सत्यापन	स्वयं के द्वारा, अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर स्वयं में सत्यापन के साथ-साथ संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के अर्थ में अपने जीने का प्रायोगिक सत्यापन करना।
संवेदना	शरीर के पाँचों संवेदी अंगों से मिलने वाली सूचना जिसे 'स्वयं(मैं)' पढ़ता है – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।
कौशल	प्रक्रियाओं को सीखना (तरीका या तकनीक) a. शेष-प्रकृति के साथ कार्य b. मानव के साथ व्यवहार में भावों को व्यक्त करना।
समाज	परिवारों का ऐसा समूह जो एक दूसरे के साथ परस्पर पूरकता के अर्थ में जीते हों।
शून्य	एक सर्वव्यापी वास्तविकता, जिसमें प्रत्येक जड़ और चैतन्य इकाई सम्पृक्त है, साम्य ऊर्जा है, पारदर्शी है।
सत्य	सार, जो नित्य वर्तमान है।
अखंड समाज	एक ऐसा समाज जिसके प्रत्येक व्यक्ति में दूसरे के लिये संबंध की स्वीकृति हो।
दुःख	अंतर्विरोध की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना।
सार्वभौम मानवीय व्यवस्था	एक ऐसा समाज जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी मानव लक्ष्य की पूर्ति होती हो।
मूल्य	किसी इकाई की बड़ी व्यवस्था में प्रकृति सहज भागीदारी।
विवेक	मानव लक्ष्य की स्पष्टता।
कार्य	मानव का शेष-प्रकृति पर किया गया श्रम जिसमें सुविधा का उत्पादन होता है।

संदर्भ

1. ए नागराज, 1999, जीवन विद्या एक परिचय, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
2. ए नागराज, 1999, व्यवहारवादी समाजशास्त्र, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
3. ए नागराज, 2001, आवर्तनशील अर्थशास्त्र, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
4. ए नागराज, 2003, मानव व्यवहार दर्शन, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
5. ए नागराज, 2003, समाधानात्मक भौतिकवाद, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
6. एन त्रिपाठी, 2003, मानव-मूल्य, न्यू ऐज इंटरनेशनल प्रकाशक।
7. बी एल बाजपेई, 2004, इंडियन एथोस एंड मॉडर्न मैनेजमेंट, न्यू रॉयल क्लास नोट्स कं, लखनऊ। 2008 पुनर्मुद्रण।
8. बी पी बनर्जी, 2005, फाउंडेशन ऑफ़ एथिक्स एंड मैनेजमेंट, एक्सेल बुक्स।
9. डी एच मीडोज, डेनिस एल मीडोज, जोर्गेन रैंडर्स, विलियम डब्ल्यू बेहरेंस III, 1972, लिमिट्स टू ग्रोथ - क्लब ऑफ रोम की रिपोर्ट, यूनिवर्स बुक्स।
10. ई एफ शूमाकर, 1973, स्मॉल इज ब्यूटीफुल: ए स्टडी ऑफ इकोनॉमिक्स ऐज इफ पीपुल मैटरेड, ब्लॉन्ड एंड ब्रिग्स, ब्रिटेन।
11. ई जी सेबॉएर और रॉबर्ट एल बेरी, 2000, फंडामेंटल ऑफ एथिक्स फॉर साइंटिस्ट्स एंड इंजीनियर्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. एफएओ, 2011, ग्लोबल फूड लॉसेस एंड फूड वेस्ट - एक्सटेंड, कॉज एंड प्रिवेंशन, आईएसबीएन 978-92-5-107205-9, रोम।
13. एम फुकुओका, 1984, द वन-स्ट्रॉ रिवोल्यूशन: एन इंट्रोडक्शन टू नेचुरल फार्मिंग, प्रकाशित (भारत में) फ्रेंड्स रूरल सेंटर, रसूलिया
14. इलिच, 1974, एनर्जी एंड इक्विटी, द ट्रिनिटी प्रेस, वॉर्सेस्टर, और हार्पर कॉलिन्स, यूएसए।
15. भूटान के राजा जिग्मे खेसर, 2010, कोलकाता विश्वविद्यालय दीक्षांत समारोह में रॉयल एड्रेस, कोलकाता (5 अक्टूबर, 2010)।
16. एम गोविंदराजन, एस नटराजन और वी। एस। सेंथिल कुमार, 2004, इंजीनियरिंग एथिक्स (मानव मूल्यों सहित), पूर्वी अर्थव्यवस्था संस्करण, प्रेंटिस हॉल ऑफ इंडिया लि।
17. एम के गांधी, 1939, हिंद स्वराज, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद।
18. पी एल धर, आर गौड़, 1990, साइंस एंड हुमेनिज़्म, राष्ट्रमंडल प्रकाशक।
19. एस पालेकर, 2000, नेचुरल फार्मिंग का अभ्यास कैसे करें, प्रवीण (वैदिक) कृषि तंत्र शोध, अमरावती।
20. एस जॉर्ज, 1976, हाउ द अदर हाफ डाइस, पेंगुइन प्रेस। 1986, 1991 को पुनः प्रकाशित किया गया।

प्रासंगिक वेबसाइट, सीडी और वृत्तचित्र

1. यूनिवर्सल ह्यूमन वैल्यूज़ वेबसाइट, http://www.uhv.org.in/
2. AKTU वैल्यू एजुकेशन वेबसाइट, http://aktu.uhv.org.in/
3. स्टोरी ऑफ़ स्टफ, http://www.storyofstuff.com/
4. अल गोर, एन इनकनवीनिएंट ट्रुथ, 2006, पैरामाउंट क्लासिक्स, यूएसए
5. चार्ली चैपलिन, मॉडर्न टाइम्स, यूनाइटेड आर्टिस्ट्स, यूएसए
6. आईआईटी दिल्ली, मॉडर्न टेक्नोलॉजी - द अनटोल्ड स्टोरी
7. आनंद गांधी, राइट हियर राइट नाउ, 2003, साइकिलवाला प्रोडक्शन

(नोट: इस पाठ्यक्रम को पढ़ाने के लिये एक शिक्षक-मैनुअल भी उपलब्ध है)

विद्यार्थियों को ऐसी तालीम दी जानी चाहिए जिससे वे संसार के महान धर्मों को आदर के साथ सीख सकें।

—महात्मा गांधी

राष्ट्र-गीत

वन्दे मातरम्

श्री बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय : आनन्दमठ

वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम्।
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्।
शस्य श्यामलाम् मातरम्। वन्दे मातरम्।।
शुभ्रज्योत्स्नाम् पुलकित यामिनीम्।
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्।।
सुहासिनीम् सुमधुरभाषिणीम्।
सुखदाम् वरदाम् मातरम्। वन्दे मातरम्।।

भारत का संविधान

अध्याय IV A

मूल कर्तव्य

Article 51A

मूल कर्तव्य--भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह--

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्र्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले;

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।